स्वरोदय विज्ञान

ले० पंडित हीरालाल दूगड़

[illegible] | 501

JF
236

Ranbir Kendriya Sanskrit Vidiya peeth
LIBRARY
Book No 1900
Dated ....
Price ....

MOTILAL BANARSIDAS
BUNGALOW
ROAD

श्री शांतिनाथाय नमः

अष्टांग निमित्त

(चौथा विभाग स्वरांग)

Kendriya Sanskrit Vidya Peeth, Shri Ranbir JAMMU.
LIBRARY
Book No 1900
Dated ......
Price ......
JF
236

योगीराज

श्री चिदानन्द [कपूरचन्द] जी महाराज कृत

स्वरोदय-सार तथा अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश

[सार्थ-सविवेचन]

स्वरोदय विज्ञान

विवेचनादि कर्त्ता

व्याख्यान दिवाकर, विद्याभूषण

जैन श्रावक पंडित हीरालाल दुग्गड़ जैन

न्यायतीर्थ, न्यायमनीषी, स्नातक

जैन साहित्य प्रकाशन मन्दिर-दिल्ली

पुस्तक
स्वरोदय सार तथा अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश
[महायोगी चिदानन्द जी कृत]

© सर्वाधिकार सुरक्षित

संकलन विवेचन अर्थ आदि कर्त्ता
व्याख्यान दिवाकर, विद्याभूषण
पंडित हीरालाल दुग्गड़ जैन
न्यायतीर्थ, न्यायमनीषी, स्नातक

विषय
स्वर-विज्ञान
[श्वासोश्वास द्वारा भविष्य ज्ञान]

पुस्तक पृष्ठ
३२+३२०=३५२

प्रथम प्रकाशन
सन् १९७३ ई०

प्रकाशक
एम. के. जैन
अध्यक्ष: जैन प्राचीन साहित्य प्रकाशन मन्दिर
५७ अहाता बलबीर, मोतीराम मार्ग, लोनी रोड,
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

मूल्य—८·००

मुद्रक—वार्ष्णेय प्रिंटिंग प्रेस, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

JF 236

महायोगीराज जैन संत चिदानन्द जी (कपूरचन्द) जी महाराज

स्वर्गवास—वि॰सं॰ १९५९ पोषवदि ९ चन्द्रवार

समर्पण

पूज्य पिता श्री सर्वश्री लाला दीनानाथ जी साहब दुग्गड़

जन्म—गुजरांवाला [पंजाब] स्वर्गवास—आगरा [उ०प्र०]

चैत्र कृष्णा १४ वि०सं० १९४३ चैत्र कृष्णा ५ वि०सं० २०१०

परम गुरुभक्त ज्योतिर्विद श्री श्रेष्ठिवर्य चौधरी साहब सर्वश्री लाला दीनानाथ जी दुग्गड़ जिन्हें जिनशासन की आनरेरी मन्त्री पद सेवाओं के उपलक्ष में श्रीसंघ गुजरांवाला ने स्वर्ण पदक से सम्मानित किया एवं स्मृति में श्री संघ ने अपने कार्यालय में आपका तैल चित्र लगाया। आप श्री जी की ही अमर कृपा के परिणाम स्वरूप मैं श्री जिन शासन की सेवा के योग्य बन पाया। अतः कृतज्ञभावसे श्रद्धांजली रूप यह स्वरोदय विज्ञान आप की पुण्य स्मृति में विद्वदजन के करकमलों में समर्पित करता हूं। हीरालाल दुग्गड़

लेखक

पंडित श्री हीरालाल दूगड़ जैन

१. स्वरोदय सार

१. मंगलाचरण १
२. स्वर ज्ञान ३
३. स्वरों का कार्य ५
४. स्वरों के गुण ८
५. स्वरों में लग्न, राशि, मास ९
६. प्रश्न दिशा निर्णय १०
७. कार्य के अक्षरों का निर्णय १२
८. स्वरोदय सिद्धि १२
९. निश्चय प्राणायाम १३
१०. व्यवहार प्राणायाम १४
११. अष्टांग योग प्राणायाम १५
१२. प्राणायाम के भेद १५
१३. वायु के भेद और बीज १८
१४. अनहद ध्वनि १९
१५. अजपा जाप योग २१
१६. समाधि २३
१७. कुंडलिनी-बंकनाल २४
१८. मुद्राबन्ध-आसन २५
१९. पद्म तथा मूलासन [चित्र] २६
२०. षट कर्म २८
२१. जैन अष्ट योग दृष्टि २९
२२. साधक की योग्यता ३१
२३. ध्यान के भेद ३४
२४. स्वरोदय सिद्धि ३७
२५. सिद्धचक्र चित्र ३९
२६. तत्त्वोंकी पहचान और लाभ ४०
२७. तत्त्वों से वर्ष फल ४३
२८. कुटुम्ब शरीर धन विचार ५०
२९. तत्त्व और कार्य प्रश्न ५१
३०. रोगी प्रश्न ५३
३१. खाली और भरा स्वर में प्रश्न ५७
३२. वार और स्वर तत्त्व ५७
३३. तत्त्व ज्ञान रीति ७३
३४. चार्ट (१) ७६
३५. हानि लाभ विचार ७८
३६: चार्ट (२) ७८
३७. तत्त्वों की आवश्यक बातें ७९
३८. स्वर और प्रश्न कर्ता ८१
३९. तत्त्व और पदार्थ चिंता ८३
४०. तत्त्वों के स्वामी, ग्रह, वार ८३
४१. चन्द्र स्वर की अवस्थाएं ८४
४२. रसों से तत्त्व की पहचान ८४
४३. तत्त्वों में नक्षत्र ८५
४४. तत्त्व क्रम ८५
४५. तत्त्वों के गुण ८६
४६. तत्त्वों के द्वार ८६
४७. युद्ध के प्रश्न ८६
४८. गर्भ प्रश्न ९२
४९. परदेश गमन प्रश्न ९९
५०. तत्त्व और आरोग्य १०७
५१. स्वरों का समय १०८
५२. लाभालाभ प्रश्न ११०
५३. कालज्ञान ११३
५४. चार पुरुषार्थ १४१
५५. धर्माधर्म विवेक १४२
५६. समाधि का स्वरूप १४५
५७. श्वासोश्वास गति १४७
५८. ध्यान की विधि १५२
५९. शरीर में नाड़ियां १५४

६०. नाड़ियों के स्थान १५६
६१. वायु का वासस्थान १५७

२. परिशिष्ट १

६२. योग शब्द का अर्थ १६१
६३. योग के भेद १६२
६४. हठ योग का अधिकारी १६६
६५. साधक की आहार विधि १६७
६६. हेयोपादेय वस्तु १६८
६७. काम में आने वाली वस्तुएं १६९
६८. योगी के लिये स्थान १७०
६९. आसन १७०
७०. आसन [चित्र] १७२
७१. स्वरोदय स्वरूप १७६
७२. स्वरोत्थान १७९
७३. तत्त्वों का स्वरूप १८०
७४. जैन रीति से तत्त्व १८१
७५. तत्त्व साधन रीति १८७
७६. तत्त्वों की पहचान १८८
७७. क्रियाएं १९१
७८. बन्ध के प्रकार १९७
७९. कुम्भकों के नाम १९९
८०. मुद्राओं का वर्णन २०४
८१. प्राणायाम के तीन भेद २१९
८२. प्राणायामका काल नियम २२०
८३. बन्ध लगाने की रीति २२२
८४. चक्रों के नाम २२४
८५. मूलाधार चक्र का वर्णन २२५
८६. कुंडलिनी नाड़ी २२५
८७. चक्रों का वर्णन २२६
८८. नाड़ियां २२८
८९. कुंडली चलाने का उपाय २३०
९०. मन ठहराने का दृष्टांत २३३
९१. मानसी पूजा की रीति २४१
९२. समाधि के भेद २४७
९३. अजपा जाप के शब्दों के अर्थ २५६
९४ योगी का स्वरूप २६०
९५. ध्यान और समाधि २६४
९६. पदार्थ निरूपण २७८
९७. जीवसिद्ध ५७ प्रकार से २७९
९८. आर्त ध्येय चार भेद २८३
९९. रौद्र ध्येय चार भेद २८४
१००. धर्म ध्येय चार भेद २८६
१०१. शुक्लध्येय चार भेद २८८
१०२. सविकल्प निर्विकल्प का दृष्टांत २८९
१०३. ध्येय आदि आठ भेद २९३

३-परिशिष्ट-२ २९४

१०४. ध्यान क्रम
१०५. ध्यानी का लक्षण २९४
१०६. मन के भेद, लक्षण २९५
१०७. बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप २९६
१०८. स्थिरता का क्रम २९७
१०९. एकाग्रता लयावस्था २९९
११०. अपने पर विश्वास ३००
१११. मानसी पूजा ३०४
११२. रूपस्थ ध्यान फल ३०९
११३. वृत्ति अवलोकन ३०९
११४. विकास, जागृति ३१४
११५. भूगर्भ ३१४
११६. ध्यान का स्थान ३१५
११७. वृत्ति निरीक्षण ३१६
११८. रूपातीत ध्यान ३१९
११९. निरालम्बन ध्यान ३१९
१२०. ग्रन्थ कर्त्ता का परिचय ३२०

टिप्पणी

५. निर्गुण-सगुण स्वर ८
६. सूर्य सक्रान्ति महीने १०
७. १४ गुणस्थान १४
१२. दस नाद १८
१३-१४. सिद्धियां और लब्धियां २०
१६. अजपाजाप २१
१८. समाधि भेद २३
२०. से २२. मुद्राबंध, आसन २५
२५. षट्कर्म २८
२६. जैन अष्टांग से योग दृष्टि २९
२९. ध्यान स्वरूप और स्थान ३३
४२. रोग विशेष निर्णय ५७
४६. कार्य की सफलता ६५
४६. (ङ) स्वरोदय से अग्नि शांत ६६
४६. (झ) रोग प्रतिकार ६८
४६. (ट) स्वरों से शक्ति प्राप्ति ७२
४६. (ड) स्वर और देवता राधना ७३
४७. तत्त्वों की पहचान का उपाय ७४
६२. गर्भ पहचान ९२
६३. पुत्र प्राप्ति उपाय ९६
६४. वर्षा प्रश्न ९९
६४. (२) फसल उपज का प्रश्न ९९
६४. (७) वशीकरण १०१
६४. (१०) छिपी वस्तु का प्रश्न १०१
६७. स्वरोदय का वचन अटल १०५
६८. (६) वैरी मिलाप उपाय १०९
६९. वशीकरण ११०
७०. स्वर द्वारा आयु ज्ञान ११३
७०. (२) पौष्णकाल से मृत्यु निर्णय ११५
७०. (३) नेत्र लक्षण से कालज्ञान ११६
७०. (४) कान से आयु ज्ञान ११७
७०. [५] मस्तक से आयुज्ञान ११८
७०. [६] हाथों से मृत्यु ज्ञान ११८
७०. [१०] स्वप्न से मृत्यु ज्ञान १२०
७०. [११-१९] अन्य उपायों से मृत्यु ज्ञान १२० से १२३
७०. [२०] छाया पुरुष से मृत्यु ज्ञान १२३
७० [२३ से २४] शकुन से काल ज्ञान १२५
७०. [२८] यंत्र से कालज्ञान १२८
७०. [ख] अन्य आचार्यों का मत १२९
७०. [ट] मंत्र से कालज्ञान १३१
७०. [ढ] मंत्र द्वारा कालज्ञान १३२
७०. [थ] प्रश्न द्वारा कालज्ञान १३४
७०. [प] आयुर्वेद के कालज्ञान १३५
७०. [फ] शरीर लक्षणों से काल ज्ञान १३८
७१. केवली अठारह दोष रहित १४६
७२. आयु के प्रकार १४८
७३. कुंडलिनी शक्ति १४९
७४. समाधि में प्रलोभन १५१
७५. योगी की योगातीत अवस्था १५१
७६. अजपाजाप १५३
७७. कुंडलिनी १५४
७९. स्वर बल के कार्य १५८
८०. विपरीत स्वरों का फल १५९
८२. तीन बातें १६१
८३. स्त्री स्वरोदय शास्त्र १६६
८५. समय और तत्त्व २२०
८६. समय तालिका २२२
८७. परकास प्रवेश विधि २३८
८९. ॐ की उत्पत्ति २५६
९०. ॐ का रहस्य २६३

प्रकाशकीय

हर्षका विषय है कि आज हम अष्टांग निमित्तका चौथा विभाग स्वर विज्ञान पुस्तक पाठकों के कर कमलों में समर्पित कर रहे हैं। इसके पहले तीन विभाग—१—शकुन विज्ञान, २—स्वप्न विज्ञान तथा ३—प्रश्न पृच्छा विज्ञान प्रकाशित हो चुके हैं। ४—स्वर विज्ञान भी पाठकों के हाथ में है।

अष्टांग निमित्त के ये सभी विभागों के प्रस्तुत कर्ता व्याख्यान दिवाकर, विद्याभूषण, न्यायतीर्थ, न्यायमनीषी, स्नातक, चतुर्थ व्रतधारी जैन श्रावक श्रद्धेय पंडित श्री हीरालाल जी साहब दूगड़ एक प्रतिभाशाली विद्वान हैं। आपने तीस वर्षों के सतत-अनथक तथा कठोर परिश्रम से अनेक प्राचीन ग्रंथ भंडारों में जाकर वहां सुरक्षित हस्तलिखित पांडूलिपियों से दोहकर इस ग्रंथरत्न का संकलन किया है और इसको अर्थ-विवेचन-टिप्पणियों से सरल एवं सुरुचिकर बनाने में कोई कसर नहीं उठा रखी। सच पूछो तो अष्टांग निमित्त के ये चारों विभाग अपने विषय के अनूठे एवं अनूपम संग्रह हैं। इन विभागों में कितना वृहत संग्रह हैं पाठक इन ग्रंथों की विषयानुक्रमणिका से ही जान लेंगे और इनके पठन पाठन से इस विषय की महानतातथा गंभीरता उपयोगिता का परिचय पा लेंगे। सच बात तो यह है कि अनेक पूर्वचार्यों द्वारा रचित अनेक प्राचीन ग्रन्थों के दोहन रूप नवनीत को विद्वान लेखक ने सागर को गागर में बन्द कर हिन्दी जगत की महान सेबा की है। हम सब आपका जितना भी आभार मानें उतना ही थोड़ा है।

मात्र इतना ही नहीं अपितु विद्वान् लेखक ने सत्तर वर्ष की वृद्धावस्था में लगातार सात-आठ महीने दक्षिण भारत में कठिन परिश्रम पूर्वक भ्रमण करके इन ग्रन्थों के अग्रिम ग्राहक बनाने के लिए भगीरथ प्रयत्न भी किया है। मान-अपमान की परवाह किये बिना घर-घर, दुकान-दुकान (door to door) नगर-नगर में जा-जाकर जैन साहित्य के प्रचार में वीर सेनानी की तरह कटिबद्ध हो रात-दिन एक करके जैन शासन की पूरी लगन से सेवा की है। यदि सच पूछा जाय तो कृषगात्र में एक कर्मठ युवक की आत्मा काम

कर रही है । आपके उत्साह और परिश्रम को देख कर हम गद्‌गद् हो जाते हैं । इतने उच्चकोटि के विद्वान होते हुए भी आपको अभिमान छू नहीं पाया । जैन साहित्य के प्रचार की लगन आप के रोम-रोम में समाई हुई है ।

अष्टांग निमित्त में १—अंग विद्या, २—स्वर विद्या, ३—लक्षण विद्या, ४—व्यंजन विद्या, ५—स्वप्न विद्या, ६—उत्पात विद्या, ७—भौम-विद्या ८—अन्तरीक्षत विद्या । (ज्योतिष विद्या) इन आठ विद्याओं का समावेश है । इनकी विषय सारिणी को संक्षिप्त परिचय में दुग्गड़ जी ने स्वयं स्वप्न विज्ञान में अपने विशेष वक्तव्य में दे दिया है उससे पाठक महोदय इसकी उपयोगिता का महत्त्व समझ जावेंगे ।

अष्टांग निमित्त के आठ अंगों में से इन प्रकाशित चार विभागों में पांच अंगों का समावेश हो जाता है । बाकी के तीन अंगों में से सामुद्रिक-हस्तरेखा, स्त्री-पुरुषों के शारीरिक लक्षणों द्वारा तत्सम्बन्धी परिचय का वृहत्संग्रह भी तैयार हो चुका है । तथा अन्तरिक्ष, व्यंजन, उत्पात विद्याओं पर अभी लिखना बाकी है । दुग्गड़ जी से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि इन बाकी विद्याओं को भी शीघ्र लिखने की कृपा करें जिससे अष्टांग निमित्त के आठों अंग प्रकाशित होकर जन समाज को लाभ प्राप्त हो सके ।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि

हम चाहते थे कि ये तीनों विभाग शीघ्राति-शीघ्र प्रकाशित हो जाते, परन्तु जिस प्रेस में पुस्तकें छपने के लिये दी थीं उसमें अचानक आग लग जाने से छपने के लिये दिया हुआ सब कागज स्वप्न विज्ञान की प्रेस कापी तथा छपे हुए फर्मे जलकर राख हो गए ।

१—श्री दूगड़ जी की आंखों का आपरेशन ठीक हो गया, चश्मा लग जाने के बाद श्री दूगड़ जी ने स्वप्न विज्ञान पर लिखे हुए रफ नोट्स से बड़े परिश्रम तथा सावधानी पूर्वक प्रेस कापी फिर तैयार की और इसे छपने के लिए दूसरे प्रेस में दे दिया गया ।

नया कागज खरीदने के लिये भी बहुत परेशानी हुई । १—अतिवृष्टि, २—रेलों की हड़तालें, साथ ही सरकार की कागज (Export) नीति के

कारण मार्कीट में कागज का एक दम अभाव हो गया और दाम भी एक दम दुगने ड्योढ़े हो गये, फिर भी रुपया लेकर कई दिनों तक मार्कीट में चक्र लगाने पर भी शीघ्र कागज उपलब्ध न हो सका। बहुत कठिनाई से बड़े मंहगे भाव में कागज मिला और प्रेस में देकर पुस्तकों के छपने की व्यवस्था की जा सकी।

स्वर विज्ञान के विषय में--

तीन-चार वर्ष पहले स्वरविज्ञान तथा स्वप्नविज्ञान की प्रेस कापियां भाई पुखराज जी, व भाई सरदारमल जी को श्री दुग्गड़ जी ने मद्रास उनके मंगवाने पर भेजी थी। उन्होंने स्वामी ऋषभदास जी को अवलोकनार्थ दीं। स्वामी जी ने उन्हें आद्योपांत पढ़ा और इसे प्रकाशित कराने की अनुमति दे दी। तत्पश्चात उसी वर्ष आचार्य विजयविक्रम सूरि आदि जैन मुनिराजों का मद्रास में चतुर्वास होने से स्वरोदय तथा स्वप्न विज्ञान की प्रेस कापियां देखने के लिए उन्हें दे दी गई। उन्होंने भी इन्हें पढ़ा और छपाने के लिए अनुमति दे दी।

इसी बीच में स्वरोदय विज्ञान के "कालज्ञान" भाग वाली कॉपी खो गई, दोनों भाइयों के बहुत तलाश करने पर भी न मिल सकी। "कालज्ञान" वाली कापी के सिवाय—बाकी की प्रेस कॉपियां भाई श्री पुखराज जी ने वापिस लौटा भेजीं।

अब स्वरोदय विज्ञान के खोये हुए भाग "कालज्ञान" का अभाव कैसे पूरा किया जावे। यह भी एक प्रश्न चिह्न बन गया।

श्री दूगड़ जी ने इसे फिर नये सिरे से लिखकर प्रेस कापी तैयार की। इसी चक्कर में छः महीने व्यतीत हो गए। सितम्बर १९७३ को कागज मिलने पर तथा दोबारा प्रेस कापियां तैयार होने पर फिर इन्हें दूसरे प्रेस में छपने के लिये दिया गया।

इन पुस्तकों के प्रकाशन में श्री दूगड़ जी ने इतनी लगन तथा झड़प से काम को निपटाया है कि तीन मास के अल्प समय में १—स्वप्न विज्ञान, २—प्रश्न पृच्छा विज्ञान तथा ३—स्वरोदय विज्ञान छपकर तैयार हो गए हैं

और ग्राहक महानुभावों को भेजने में कृतकार्य हुए हैं।

इनके लेखन-संपादन-संशोधन-प्रूफ-संशोधन आदि का सारा कार्य श्री दूगड़ जी ने स्वयं किया है। इस कार्य को झड़प से पूरा करने के लिए कई कई रातों सोये तक नहीं। न खाने की चिन्ता न सोने की परवाह। विश्राम की तो बात ही क्या !

हम इन्हें कई बार कहते कि पूज्यवर्य—यह आप क्या कर कहे हैं ? आप के स्वास्थ्य, अवस्था और आयु को देखकर हम शिशघर रह जाते हैं कि आप इतनी कठोर साधना के पीछे अपने स्वास्थ्य से हाथ न धो बैठें।

आपके पास एक ही उत्तर पाते कि भाई मेरे सिर पर बड़ी भारी जिम्मे-वारी है। जिन-जिन महानुभावों ने ग्राहक बनाने बनने में इस कार्य में मुझे सहयोग दिया है। देरी होने से पता नहीं वे अपने मन में क्या-क्या सोचते होंगे ? इसलिए मैं कृतसंकल्प हूं कि शीघ्रातिशीघ्र पुस्तकें प्रकाशित होकर ग्राहक महानुभावों को पहुंचा दी जावें। मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता न करें शासनदेव मेरे इस शासन सेवा के कार्य में उत्साह बढ़ाने में अवश्य सहायक हैं। मेरे स्वास्थ्य की उन्हें चिन्ता है इस लिए मुझे तो मेरी लगन से काम करने दो।

विलम्ब के लिए क्षमा याचना

हम आशा करते हैं कि ग्राहक महानुभाव पुस्तकों के प्रकाशन होने में आशा तीत विलम्ब होने के कारण को समझ गए होंगे। हमने भी इनके प्रकाशन में कम से कम समय में तैयार कराने में पूरी सावधानी बरती है। कुदरत के सामने किसी का ज़ोर नहीं। इसके लिये हम भी विवश हैं। फिर भी विलम्ब के लिये हम ग्राहक महानुभावों से क्षमा प्रार्थी हैं।

सहयोगियों की उदारता के लिए आभार प्रदर्शन

इन तीनों विभागों तथा शकुन विज्ञान के ग्राहक बनाने तथा जैन साहित्य के प्रचार के लिए जिन-ज़िन महानुभावों ने श्री दूगड़ जी का उदार वृत्ति से सहयोग दिया है उन्होंने उदारता, स्नेह तथा ज्ञान के प्रति सच्ची भक्ति का परिचय दिया है। आशा करते हैं कि इसी प्रकार आगे के लिए भी आपका

सदा सहयोग मिलता रहेगा। आपकी शासन सेवा के कार्यों के करने में शासन देव आपको प्रेरणा देते रहे।

अन्त में पूज्य दूगड़ जी साहब के लिये हम जितना भी आभार प्रदर्शन करें उतना ही थोड़ा है, उनके कठोर परीश्रम तथा लगन के लिये हम नत मस्तक हैं। उनके सौजन्य तथा तत्परता के लिये हम गद्गद् हैं। उनके कार्य की, जैन साहित्य के प्रसार की भावनाओं की हम कद्र करते हैं। शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आप शत आयु हों। जिससे जैन शासन की सेवा में आपका सहयोग सदा मिलता रहे। आपका कोटिशः अभिनन्दन करते हुए हम आपके वहुत कृतज्ञ हैं अधिक क्या कहें।

जैन बन्धुओं से हमारा नम्र निवेदन है कि आप श्री दूगड़ जी के द्वारा जैन साहित्य के तैयार ग्रंथों के सर्वत्र प्रचार तथा प्रसार के लिए हमारा पूरा-पूरा सहयोग दें। ताकि हम अगले ग्रंथों का भी शीघ्र प्रकाशन कराने के लिये उद्यमशील हो सकें।

दिल्ली—३०-११-७३ अध्यक्ष—मनोजकुमार जैन

पुस्तकों की छपाई का उत्तम प्रबन्ध

संस्कृत प्राकृत, हिन्दी भाषा में धार्मिक, सामाजिक एवं अन्य सब प्रकार की पुस्तकों को, भाषा की दृष्टि से शुद्ध धार्मिक परिभाषाओं से परिमार्जित, उत्तम तथा सुन्दर गेटअप, सुन्दर टाइप में प्रकाशित करने का उत्तम प्रबन्ध है। गुजराती भाषा से हिन्दी भाषा में अनुवाद करने की संतोषजनक व्यवस्था है। अशुद्ध भाषा को शुद्ध भी किया जाता है प्रूफ संशोधन की भी सुविधा है। अतः शुद्ध और उत्तम प्रकाशन के लिए नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें।

पंडित हीरालाल दूगड़ जैन

व्यवस्थापक—ओसवाल जैन प्रिंटिंग सेंटर

५७ अहाता बलवीर मोतीराम रोड

शाहदरा-दिल्ली-११००३२

प्रस्तावना

ॐ ह्रीं श्रीं ऐं अर्हं सर्वदोष प्रणाशन्यै: नमः।

इस क्लेशपूर्ण कषाय वृत्तियों से भरपूर दुःखागार अपार संसार में चाहे कोई भी आस्तिक अथवा नास्तिक विचारधारा का व्यक्ति क्यों न हो, वह नाना प्रकार के रोग-शोक चिन्ताओं आदि से ग्रसित देखने में आता है। उनकी आत्म-घातिनी व्याधियों के प्रतिकार के लिए अनेक प्रकार के उपायों की खोज में मानव लगा हुआ है, पर फिर भी विश्व में दिन प्रतिदिन मानव आधि, व्याधि तथा उपाधियों से वृद्धि पाता जा रहा है। बाह्य और अभ्यन्तर व्याधियों और उपाधियों से सारा विश्व आक्रांत है। आत्मघातिनी बाह्य शारीरिक व्याधियों के प्रतिकार के लिये आयुर्वेदिक कला-कौशल वैद्य, युनानी हिकमत में निपुण हकीम, विश्वविद्यालयों से डिग्री प्राप्त एलोपैथिक डाक्टर, होम्योपेथी, वायोके-मिकपेथी, नेचरोपेथी (प्राकृतिक चिकित्सा) क्रेमोपेथी इत्यादि अनेक पद्धतियों के चिकित्सक एवं तांत्रिक, मांत्रिक, यांत्रिक आदि लोग अपनी चिकित्सा से संसार के सब प्राणियों के रोग शोकादि का निवारण करने के लिये कटिबद्ध हैं। परन्तु फिर भी मानव को रोग, क्लेशादि मुक्ति प्राप्त नहीं होती। दिन प्रतिदिन मानव जीवन परेशानियों में उलझा जा रहा है। जरा विचार कर देखा जाये तो व्याधि क्या है पहले इसे समझना आवश्यक है, इसके अनन्तर उसके प्रति-कार के उपाय कौन से हैं ऐसा निर्णय करना भी अनिवार्य है इसके लिये जैन धर्मानुयायी वाग्भट्ट ने अपने अष्टांगहृदय नामक चिकित्सा ग्रन्थमें कहा है कि—

"रोगादौ परिक्षेत तदन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥ १॥"

अर्थात्—वैद्य पहले रोग की परीक्षा करे, तदनन्तर औषधि का निर्णय करे, फिर चिकित्सा कर्म ज्ञानपूर्वक काम में लावे।

जिस प्रकार बाह्य शारीरिक व्याधि के लिये निदान खोजने पर प्रतिकार संभव है वैसे ही अध्यात्म-पक्ष में बाह्य तथा अभ्यंतर व्याधियों का निदान भी सोचा जाना परमावश्यक है। क्योंकि मात्र शारीरिक चिकित्सा से आत्म

शांति संभव नहीं है। आत्मिक आधि-व्याधियों रोगों का मुख्य निदान जन्म-मरणादि का कारण कर्मबन्ध के अतिरिक्त और कोई दृष्टि गोचर नहीं होता। वास्तव में इस कर्मबन्ध के कारण से ही जगत में सब प्राणी मानसिक, कायिक, वाचिक, आध्यात्मिक, दैविक, आधिभौतिक इत्यादि दुःखों को न चाहते हुए भी विवश होकर सहन कर रहे हैं। इस कर्मबन्ध रूपी राजरोगों के निदान (कारणों) को नाश करने के लिये तथा अपूर्व शांति प्राप्त करने के लिये भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदायों के धर्म गुरुओं, आचार्यों, तीर्थंकरों आदि ने अपनी योग्यता और बुद्धि पूर्वक उपाय बतलाये हैं।

कहने का सारांश यह है कि यह आर्यावर्त-भारत प्राचीन समय से ही इस आध्यात्मिक विद्या की पराकाष्टा तक पहुंचा हुआ है। इसकी पावन भूधरा पर अनेकानेक महापुरुष इस विद्या के पारगमी हो चुके हैं। अनेक लब्धियों, सिद्धियों, निधियों के चमत्कारों के योग से नास्तिक लोगों पर भी आत्मा की अस्तित्वता की गहरी छाप डालने वाले महात्माओं की भी कमी नहीं थी। प्रत्यक्ष रूप से पुनर्जन्म का अनुभव कराने वाले जातिस्मरण ज्ञान धारक होकर अन्य मानवों को पुनर्जन्म के विषय में निश्चय श्रद्धा उत्पन्न कराते थे। योगबल से भूत-भविष्यत और वर्तमान काल सम्बन्धित विप्रकृष्ट दूर वस्तु का संशय दूर कर आत्मा की ज्ञान आदि अनन्त शक्तियों का बोध कराते थे।

ऐसे अनेक रत्न पुरुषों की धारक भारत-मातृभूमि आज जड़ विद्या के उपासकों के प्रभाव से शोचनीय स्थिति में आ चुकी है। अध्यात्म विद्या का प्रचार शून्यवत होता जा रहा है। वह भारत जड़विद्या (विज्ञान) की शोध खोज की दौड़ में अध्यात्म विद्या को भूलता जा रहा है। यदि ऐसा ही रहा तो आत्मभान को भुलाकर और सच्चरित्रता को खोकर मानव समाज अनाचार के गर्त में पड़ता जा रहा है और पड़ता जायेगा।

ऐसा अनुभव होता है कि वर्तमान काल के दूषित वातावरण में भी यदि कृपालु योगी महात्मा लोग न बचावेंगे तो जड़वाद का साम्राज्य छा जाना संभव है। सुख प्राप्ति के लिये मानव योग विद्या और आत्मविद्या के अभ्यास को भुला कर अवनति की ओर जा रहा है।

जैन समाज में योगाभ्यासी गुरुओं का आजकल प्रायः अभाव सा हीं है। इस अभाव को दूर करने के लिए अध्यात्मानुभवी योगीश्वर महात्माओं, जैनाचार्यों का साहित्य आज भी विद्यमान है। इनसे योगाभ्यास चालू कर लाभ उठावें।

श्री वीतराग सर्वज्ञ देवाधिदेव तीर्थंकरदेवों का धर्म तो वही हो सकता है जिससे राग-द्वेषादि मिटाकर आत्मा प्रशमरस निमग्न बन जावे। जिन उपायों से राग-द्वेष आदि पर विजय एवं शांति, आत्मज्ञान, पूर्णानन्दतथा समाधि की प्राप्ति होकर बाह्य और अभ्यंतर व्याधियों का नाश होना संभव है। जब तक आत्मा में निर्मलता और स्थिरता नहीं आती तब तक प्रशमरस की प्राप्ति भी असम्भव है। यह अवस्था योगाभ्यास से प्राप्त हो सकती है। कहा भी है—

"अनेक शत-संख्याभिस्तर्क व्याकरणादिभिः।
पतिता शास्त्रजालेषु प्रज्ञया: ते विमोहिताः ॥ १ ॥ (योग बीज ८)

अर्थ—सैकड़ों तर्क शास्त्र तथा व्याकरणादि पढ़कर मनुष्य शास्त्र जाल में फंस कर केवल विमोहित हो जाते हैं। वास्तव में प्रकृति ज्ञान योगाभ्यास के बिना उत्पन्न नही होता।

मथित्वा चतुरो वेदान् सर्व शास्त्रानि चैवहि।
सारस्तु योगीभिः पीतस्तक्रं पीवन्ति पंडिताः॥

(ज्ञान संकल्निनी तंत्र ५)

अर्थ—चारों वेदों तथा सब शास्त्रों को मथ कर उनका मक्खन स्वरूप सारभाग तो योगी चाट गये और उसका असार भाग तक्र (छाछ) पंडित लोग पी रहे हैं।

योगाभ्यास को जैनों ने आत्म साधना के लिये सदा सर्वदा मुख्य साधन माना है। तीर्थंकरदेवों से लेकर चौदह पूर्वधारी श्री भाद्रबाहु स्वामी, श्री सिद्धसेन दिवाकर, श्री हरिभद्र सूरि, श्री हेमचन्द्राचार्य, श्री आनन्दघन जी, श्री यशोविजय जी, श्री चिन्दानन्द जी आदि सब महान योगाभ्यासी हुए हैं। तीर्थंकर देवों की ध्यानावस्था में विराजित प्रतिमाएं तो साक्षात् योगाभ्यास की मुख बोलती आकृतियां हैं।

उपाध्याय यशोविजय जी महाराज ने तो स्पष्ट कहा है कि—

"मोक्षेण योजनादेव योगो ह्यत्र।" (द्वात्रिंशिका १०, १)

आचार्य हरिभद्र सूरि ने भी फरमाया है कि—

"मुक्खेण जोयणाओ जोगों" (योगविंशिका १)

अर्थात्—जिन-जिन साधनों से आत्मा की शुद्धि और मोक्ष का योग होता है उन सब साधनों को योग कह सकते हैं।

पातंजल योगदर्शन में भी योग का लक्षण—"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।"

अर्थात्—चित्त की वृत्तियों को रोकना योग कहलाता है।

इस प्रकार योग की और भी अनेक परिभाषाएं हैं।

योग का महत्व

"योगाः कल्पतरुः श्रेष्ठो, योगश्चितामणिः परः।
योगः प्रधानं धर्माणां, योगः सिद्धे स्वयं ग्रहः॥ ३७॥
(योगबिन्दु हरिभद्र सूरि)

अर्थात्—योग कल्पवृक्ष है, योग उत्तम चिन्तामणि रत्न है। योग सब धर्मों में प्रधान है। योग स्वयं मोक्ष प्रदाता है।

भारत के जैन, वैदिक और बौद्ध इन तीनों प्राचीन धर्मों का समान रूप से यह सुनिश्चित सिद्धान्त है कि मानव जीवन का अन्तिम साध्य उसके आध्यात्मिक विकास की पूर्णता और उससे प्राप्त होने वाला परम कैवल्य एवं निर्वाण पद है। उसकी प्राप्ति के लिये जितने भी उपाय उक्त तीनों धर्मों में बतलाये गये हैं उनमें अन्यतम विशिष्ट 'योग' है। योग यह प्राचीन आर्य जाति की अनुपम आध्यात्मिक विभूति है। इसके द्वारा अतीत काल में आर्य जाति ने आध्यात्मिक क्षेत्र में जो उत्कर्ष प्राप्त किया था, उसका अन्यत्र दृष्टांत मिलना दुर्लभ है। योग का ही दूसरा नाम आध्यात्म-विद्या है।

योग मोक्ष प्राप्ति का निकटतम उपाय होने से मुमुक्षु आत्माओं के लिये नितान्त उपादेय है। इसी दृष्टि को सन्मुख रखकर भारतीय महापुरुषों ने इसकी उपोगिता को स्वीकार करते हुए अपने-अपने दृष्टिकोण से इसका पर्याप्त वर्णन किया है। प्रमाण के लिए जैनों के आगमादि, बौद्धों के

त्रिपिटिक आदि और वैदिक धर्म के उपनिषदादि ग्रन्थों के पर्याप्त उद्धरण लिखे जा सकते हैं।

योग का शब्दार्थ

शब्द शास्त्र के अनुसार "युज" धातु से घञ् प्रत्यय के द्वारा योग शब्द निषपन्न होता है। युज नाम के दो धातु हैं। एक समाध्यर्थक, दूसरा संयोगार्थक है। जैन संकेतानुसार तो शुक्लध्यान के पाद चतुष्टय में ही समाधि का तिरोधान होता है, अतः समाधि यह ध्यान की अवस्था विशेष ही है। सारांश यह है कि समाध्यर्थक युज धातु से निष्पन्न योगार्थ में समाधि और ध्यान ये दोनों ही गर्भित हो जाते हैं। अब रहा संयोगार्थ योग शब्द, सो उसमें योग के वे समस्त साधन निर्दिष्ट हैं, जिनकी साधक को अपने अन्दर ध्यान अथवा समाधि की योग्यता प्राप्त करने के लिये आवश्यकता होती है।

प्रस्तुत अष्टांग निमित्त के आठ अंगों का संकलन करना ही हमारा ध्येय है अतः उसमें एक अंग 'स्वर' विद्या भी है। स्वरके दो भेद हैं १–प्राणियों की ध्वनियों आदि से निकलने वाले शब्दादि तथा २—नासिका द्वारा निकलने वाला श्वासोश्वास, पहले भेद का विवेचन हम अपनी "शकुन-विज्ञान" नामक पुस्तक में दे चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक में दूसरे प्रकार के स्वर सम्बन्धी विवेचन है, जो कि नासिका से श्वासोश्वास द्वारा निकलता है। यह स्वर प्राणायाम द्वारा साधा जाता है और इसकी साधना का विधान पातंजल योग शास्त्र में विस्तार पूर्वक किया है। इस योग को हठयोग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस हठयोग की साधना करने वाले वर्तमानकाल में जैन अध्यात्म योगी श्री चिदानन्द जी महाराज हो गये हैं।

अत: अष्टांग निमित्तके एक अंग "स्वर-विद्य" की पूर्ति-केलिये इन्हीं जैन महानयोगी चिदानन्द जी महाराज कृत "स्वरोदय सार" (पद्य-बद्ध) का विस्तृत विवेचन तैयार कर पाठकों के करकमलों में दे रहे हैं तथा इस हठयोग के आठ अंगों में से जैन धर्मकी अध्यात्म साधन पद्धतिमें कैसे कहां तक उपयोगी है इसके लिये इन्हीं के द्वारा रचित पुस्तक "अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश" का उपयोगी भाग परिशिष्ट रूप में दे दिया है। इसमें श्री चिदा-

नन्द जी महाराज ने हठयोग का प्रतिपादन कर जैन दृष्टि से आत्म कल्याण में उसका क्या और कैसे उपयोग है, इसका विस्तार से विवेचन किया है और इसमें जैन दर्शन की शैली से कितना अंश उपयोगी है इस बात का बड़ी उत्तम रीति से विश्लेषण भी किया है। यहां तक कि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का विवेचन ऐसी हृदयंगम पद्धति से किया है कि साधारण बुद्धि वाला मनुष्य भी इससे लाभ उठा सकता है। योग के कई ऐसे खास रहस्यों को जिसका स्पष्टीकरण पात्र की योग्यता-अयोग्यता पर निर्भर है उन्हें छोड़कर बाकी सब बातें जिनमें कई महत्वपूर्ण विषय भी शामिल हैं और जिनका सम्बन्ध योग से है इस ग्रंथ में खोलकर रख दिये हैं। इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध में सविकल्प ध्येय का प्रतिपादन करने केलिए तीर्थंकर मूर्ति की आवश्यकता बतलाई है और उत्तरार्ध में हठ-योग तथा राजयोग का सांगोपांग वर्णन किया है। साथ ही इसमें बतलाई गई क्रियाएं आदि जैन दृष्टि से किस प्रकार करनी चाहिये इसका भी सुन्दर खुलासा किया है। ये दोनों कृतियां योगीराज चिदानन्द जी महाराज की सम्यग्दृष्टि महायोगी किसी जैन गुरु के सानिध्य में रह कर योगाभ्यास द्वारा प्राप्त स्वानुभव की मुंह बोलती कृतियां हैं। (इसका पूर्वार्ध भाग यहां नहीं दिया)

भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से योग की अनेक तरह की शैलियों तथा भेदों-प्रभेदों से प्रतिपादन किया है। परन्तु हम यहां हठयोग पद्धति का विवेचन कररहे हैं। इसका हेतु हम लिख चुके हैं। इस विषय को विशेष उपयोगी बनाने के लिये अनेक प्रकार की टिप्पणियां (Footnotes) भी इस ग्रन्थ में लिख दिये हैं।

हठयोग का सिद्धान्त—हठ योग का सिद्धान्त यह है कि स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर एक ही भाव में गुंफित हैं, और एक का प्रभाव दूसरे पर पूरा बना रहता है। स्थूल शरीर को अपने अधीन कर सूक्ष्म शरीर को अधीन करते हुए योग की प्राप्ति करने को हठयोग कहते हैं। योग निष्णात आचार्यों ने हठयोग को सात अंगों में विभक्त किया है—

१—षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि । हठयोग के ध्यान को ज्योतिर्ध्यान भी कहते हैं ।

योग के सम्बन्ध में आज के लोगों में कुछ ऐसी मान्यता हो गई है कि योग सामान्य व्यक्ति से एकदम अगम्य है । योगी, जोगी, सन्यासी, वैरागी आदि नामों से प्रसिद्ध होने वालों में मानो कोई जड़ी-बूटी का चमत्कार हो, वे भभूति डालने वाले हैं, प्रकृतिगत अज्ञेय सत्ता को वश में करने वाले हैं ऐसी धारणा लोगों के दिलों में बैठ गई है । स्वार्थ साधने की इच्छा वाले, सांसारिक वस्तुओं अथवा ख्याति को चाहने वाले, और लोगों के व्हम और व्युदग्राह पर आजीवका पर निर्भर रहने वाले लोगों ने ऐसे खोटे विचारों का खूब प्रचार किया है । इस प्रकार वे लोग जनता को धोखे में लाकर खूब ठगते है । अतः उन से सावधान रहना चाहिये ।

महर्षि पतंजली अपने योगदर्शन २।२९ में लिखते हैं कि—

"यम-नियम—ऽऽसन—प्राणायाम — प्रत्याहार — धारणा —ध्यान — समाधयोऽष्टांगानि ।" अर्थात्—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग हैं ।

जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र ने योग शास्त्र में, शुभचन्द्र जैनाचार्य ने ज्ञानार्णव में भी इन आठ अंगों का प्रतिपादन किया है ।

प्राणायाम

हठयोग के उपर्युक्त आठ अंगों में प्राणायाम चौथे नम्बर पर तथा दूसरी प्रकार से इसे सात अंगों में विभक्त किया गया है, उसमें प्राणायाम का पांचवां अंग माना है । वे सात अंग इस प्रकार है—

१—षट्कर्म, २—आसन, ३—मुद्रा, ४—प्रत्याहार, ५—प्राणायाम, ६—ध्यान, ७—समाधि । पतंजली आदि प्रमुख योगाचार्यों ने मोक्ष साधन के लिये प्राणायाम को उपयोगी मान कर स्वीकार किया है । पर वास्तव में प्राणायाम मोक्ष के साधनरूप ध्यान और समाधि के लिये अन्तःकरण की स्थिरता और निर्मलता के लिये अंशतः उपयोगी सिद्ध हो सकता है । इसलिये प्राणायाम को चित्त—अन्तःकरण को स्थिर और निर्मल करने में हेतुभूत होने

से मुमुक्षु आत्मा को मोक्ष प्राप्ति के लिये अग्रसर होने में प्रथम सोपान कह सकते हैं। पतंजली ने योग की व्याख्या करते हुए—"**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**" अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना योग है ऐसा कहा है। मात्र इतना ही नहीं प्राणायाम की साधना से अनेक प्रकार की सिद्धियों, निधियों और लब्धियों की प्राप्ति भी होती है। तथा चमत्कारों आदि की योग्यता भी प्राप्त होती है। इसको जैनाचार्यों ने भी स्वीकार कर साधक को इनके प्रलोभन में न आने के लिये सावधान भी किया है और कहा है कि यदि साधक इनके प्रलोभन में आ जावेगा तो उसका पतन हो जावेगा।

स्वर साधना की उपयोगिता

प्राणायाम द्वारा स्वरोदय की साधना से मानव अपने तथा दूसरों के भूत, भविष्यत और वर्तमान में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं का सहज में ही ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

श्री कल्पसूत्रादि जैनागमों में अष्टांग निमित्त में 'स्वर' को एक प्रधान अंग माना हैं। हठयोग प्राणायाम से सिद्ध होता है। प्राणायाम स्वरोदय साधना के बिना अधूरा ही रह जाता है। मात्र इतना ही नहीं गणितज्ञ (ज्योतिषी) का ज्योतिष भी स्वरोदय ज्ञान के बिना लंगड़ा है। स्वरोदय ज्ञानी नाक पर हाथ रख कर नाक की नासिकाओं (नथनों) में से निकलते हुए श्वास को परख कर समस्त प्रश्नों का सच्चा उत्तर देकर सब समाधान करने में समर्थ हो जाता है। लाभालाभ, तेज़ी मंदी, वृष्टि-अनावृष्टि, सहयोग-वियोग, मित्रता-शत्रुता, युद्ध-मुकदमे आदि में जय-पराजय, वर्षफल, गर्भ में पुत्र-पुत्री, परदेश गमन से सफलता-असफलता, कार्य की सिद्धि-असिद्धि आदि नाना प्रकार की गुत्थियों को सुलझाने में स्वरोदय ज्ञान एक चमत्कारी विद्या है। मेरे विचार से जैन योगियों ने हठयोग का निषेध मोक्ष प्राप्ति का हेतुभूत न होने के कारण ही किया होगा जो कि वास्तविक है। क्योंकि हठयोग में आत्मा को भवभ्रमण से मुक्त होने का कोई विधान नहीं है। पर आत्मा को मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर करने के लिये हेतभूत चित्तवृत्ति निरोध के लिये तो इसका उपयोग परम योगीराज आनन्दघन जी, उपाध्याय यशोविजय जी, चिदानन्द जी,

दादा जिनदत्त सूरि आदि अनेक जैन मुनि पुंगवों ने किया है। श्री आनन्दघन जी, चिदानन्द जी की कृतियां इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं।

यदि सच पूछा जाय तो हठयोग का सर्वथा निषेध करके जैनों के यहां से योगाभ्यास का प्रचार सर्वथा समाप्त हो गया है। आज जैनों में एक भी ऐसा योगी पुरुष देखने और सुनने में नहीं आता। जो हो।

स्वरोदय ज्ञान समझने की आवश्यकता

इस विश्व में प्रकृति ने मानव को विशेष ज्ञान दिया है; इसके परिणाम स्वरूप उत्तम पुरुष भूत, भविष्यत, वर्त्तमान काल की बातें हस्तामलकवत् जान सकते हैं। यह बात सर्वविद्वद् जन विदित है। ज्योतिष, रमल आदि से काल ज्ञान मालूम हो सकता है परन्तु इससे भी सरल एक रीति काल-ज्ञान जानने की है; और वह है स्वरोदय ज्ञान। इससे बिना किन्हीं अन्य साधनों के मात्र नासिका पर अंगुली रख कर स्वर की गति से कालज्ञान, शुभाशुभ आदि का ज्ञान की प्राप्ति होती है। शरीर की आरोग्यता में भी यह बहुत उपयोगी है। यह ज्ञान पूर्व काल के योगीश्वरों ने प्राप्त कर अनेक चमत्कारों से मानव समाज को चमत्कृत किया है। धर्म से विमुख प्राणियों को इसके द्वारा धर्म में दृढ़ किया है आज मानव अपने प्रमादवश इस ज्ञान से वंचित रह कर अंधे के समान विचरण कर रहा है। स्वरोदय का स्पष्ट अर्थ नासिका द्वारा निकलने वाले पवन की गति-विधियों का बोध है। इस शरीर में पांच प्रकार का पवन है। इसके निकलने के मुख्य दो रास्ते हैं। वे कैसे, किस-किस समय, किस-किस स्थान से निकलें तो क्या हो? उसका जो ज्ञान, वह स्वरोदय ज्ञान है।

स्थिर चित्त से एकांत में बैठ कर शुभ भावपूर्वक सद्गुरुदेव का स्मरण करके नाक में से निकलता हुआ स्वर देखे। पश्चात् इस स्वरोदय ज्ञान में बतलाई हुई विधि से बोध पाकर न्यायमार्ग से कार्य करें। ऐसा करने से यह स्वर ज्ञान सिद्ध होगा। इस ज्ञान का उपयोग निंदित कार्यों में करने से उल्टा अनिष्ट परिणाम आता है। इस बात को विशेष रूप से लक्ष्य में रखें। विचार करने से ज्ञात होता है कि स्वरोदय की विद्या पवित्र और आत्मा का कल्याण

करने वाली है। इसका अभ्यास कर पूर्वकालीन महानुभाव अपनी आत्मा का कल्याण कर अविनाशी पद प्राप्त करते थे। श्री जिनेन्द्र प्रभु तथा गणधर देव भी इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता थे। अर्थात् वे इस विद्या के प्राणायामादि सर्व अंगों-उपांगों को भली भांति जानते थे। श्री भद्रबाहु स्वामी चौदह विद्या को अन्तर्मुहूर्त में पर्यालोचन करने के लिये यहां प्राणायाम की साधना करते थे। इस बात का उल्लेख अनेक स्थलों में पाया जाता है।

इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि पूर्व काल में जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर, जैनाचार्य हरिभद्र सूरि, जैनाचार्य हेमचन्द्रसूरि, जैनाचार्य दादा जिनदत्त सूरि, आदि अनेक महापुरुषों ने इस विद्या की पूर्ण साधना की थी। यह बात उनके द्वारा रचित योग के अनेक ग्रंथों से स्पष्ट ज्ञात होती है।

आज से लगभग दो सौ वर्ष पहले श्री आनन्दघन जी, उपाध्याय यशोविजयजी, चिदानंद जी (इस स्वरोदय आदि के कर्ता), ज्ञानसार जी आदि भी महायोगी हो गये हैं, इनके द्वारा रचित पद्यों, स्तुतियों, ग्रन्थों आदि से भी ज्ञात होता है कि पूर्वकाल में जैनमुनि — यति योगाभ्यास की साधना क्रिया बहुत अच्छी तरह से करते थे। परन्तु खेद का विषय है कि आजकल जैन शासन में ऐसा एक भी योगीपुरुष दृष्टिगत नहीं होता।

यति लोग जिन्हें पंजाब में पूज तथा राजस्थान में गुर्रां सा एवं गुजरात सौराष्ट्र में गोर जी कहते हैं वे तो आज प्रायः समाप्त हो चुके हैं। यदि कोई बचे-खुचे रह भी गये हैं तो वे गृहस्थी बन चुके हैं। कोई भूला बिसरा विद्यमान भी है तो वह भी इस विद्या से सर्वथा शून्य है।

मुनि लोग भी प्रायः अपने मान महत्व बढ़ाने में तथा आडम्बरों के माया जाल में उलझे हुए हैं। इसलिये स्वरोदय ज्ञान का अभ्यास शश शृंगवत हो गया है। यदि अन्य लिंगियों में कोई योगाभ्यासी होगा तो शायद खोजने से कहीं मिल भी जावे तो वह अध्यात्मावस्था प्राप्त न होने से नौली, धोती आदि क्रियों द्वारा लोग रंजन के अतिरिक्त आत्म कल्याणकारी मार्ग का दर्शन नहीं करा सकता।

कई आत्म कल्याण का मार्ग छोड़कर अज्ञानी संसारी मनुष्यों पर अपने ढोंग और दम्भ द्वारा साधुपन की छाप मोहर लगाने का यत्न करते हैं।

ऐसा होने से योगाभ्यास करने की रुचि कैसे हो सकती है? उस पर श्रद्धा कैसे हो? क्योंकि यह कार्य तो निर्लोभी और आत्मज्ञानी का है। मुनि का यही धर्म है यही कर्तव्य है। योग की साधना और ध्यान के अभ्यास द्वारा ही सच्चा आत्म कल्याण हो सकता है। ऐसा कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है।

प्राणायाम योग की दस भूमिकाएं हैं। इनमें प्रथम भूमिका स्वरोदय ज्ञान की है। इस ज्ञान के अभ्यास द्वारा बड़े-बड़े गुप्त भेद भी मानव सुगमतापूर्वक जान सकता है। तथा बहुत प्रकार की व्याधियों का निवारण भी कर सकता है। स्वरोदय शब्द का अर्थ नाक से श्वास का निकलना ऐसा होता है। इसमें सर्व प्रथम श्वास की पहचान की जाती है। नाक पर हाथ के रखते ही नाड़ी का ज्ञान होने से इसका अभ्यासी गुप्त बातों का रहस्य चित्रवत जान सकता है। इसके ज्ञान से अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं, परन्तु यह बात निश्चित है कि इस विद्या का अभ्यास योगाभ्यासी गुरु के सहयोग बिना उत्तम प्रकार से नहीं किया जा सकता। क्योंकि पहले तो यह विषय कठिन है दूसरी बात यह है कि इसमें अनेक साधनों की आवश्यकता है। इस विषय पर जो ग्रंथ विद्यमान हैं उनमें इस कठिन विषय को अति संक्षेप से वर्णन किया है। इसलिये साधारण मनुष्य इस विषय को समझ नहीं सकते। आजकल इस विद्या को अच्छी तरह से जानने वाले और दूसरों को अच्छी तरह से सिखा सकें ऐसे योगी पुरुष देखने में नहीं आते।

वर्तमान काल में कई व्यक्तियों ने बिना योगी गुरु के सानिध्य के इस विद्या का अभ्यास करके लाभ के बदले हानि उठाई है। इसीलिये चिदानन्द जी ने अपनी इस कृति में स्थान-स्थान पर इस बात पर जोर दिया है कि प्राणायाम-स्वरोदय का अभ्यास सम्यग्दृष्टि ज्ञानी योगी गुरु के पास ही करना चाहिए।

आत्म कल्याणार्थी तथा योग साधना वालों के लिये यह सारा ग्रन्थ ही

बहुत उपयोगी है। हठयोग के अभ्यासियों के लिये तो यह विशेषोपयोगी है और साधारण व्यक्तियों के लिए भी इसका बहुत सा विभाग अत्यंत उपयोगी है ।

हम लिख चुके हैं कि स्वरोदय ज्ञान चार बातों के लिये विशेष रूप से साधारण व्यक्तियों के लिये उपयोगी है:—१—आरोग्यता प्राप्ति के लिये, २—कालादि ज्ञान के लिये, ३—भविष्य में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं को प्रश्न द्वारा अथवा श्वास द्वारा सुख-स्मृद्धि—शांति पाने के लिये एवं चमत्कारादि प्राप्त करने के लिये ।

मैंने इस विषय को अपनी तरफ से सरल तथा सुरुचिकर बनाने में सब प्रकार का ध्यान रखा है। फिर भी कई स्थल ऐसे हैं जिनको समझने के लिये सम्यग्दृष्टि योगी गुरु की आवश्यकता है। पुस्तक में चाहे कितना भी खुलासा क्यों न किया जावे,चाहे कितनी सरल भाषा में लिखा जावे, चाहे कितना ही विवेचन किया जावे फिर भी उस विषय की गहराइयों तक पहुंचने के लिये योग्य गुरु की आवश्यकता तो रहती ही है। साधारण से साधारण विषय को समझने के लिये विद्यार्थी को गुरु की आवश्यकता रहती है, यह तो योग का विषय है इसे तो क्रियात्मक-प्रायोगिक (Practical) सीखने की आवश्यकता होने से गुरु की परमावश्यकता है। जैसे विज्ञान के विद्यार्थी के लिये क्रियात्मक प्रयोगों को प्रयोगशाला में जाकर प्रध्यापक (Professor) से सीखना पड़ता है।

स्वरोदय (नाक द्वारा निकलने वाले श्वास-प्रश्वास) में तत्त्वों के ज्ञान के लिये ग्रंथ कर्त्ता ने स्वयं कई रीतियां बतलाई हैं। इसके अतिरिक्त हमने भी अधिक सरल रीतियों को इस ग्रंथ में संग्रहित करदिया है, विचक्षण साधक यदि उपयोग देकर ध्यान से स्वरों की पहचान तथा इन स्वरों में तत्त्वों को जानने का अभ्यास कर लेगा तो उसे तत्त्वों को समझने में सरलता हो सकती है। और स्वरों में तत्त्वों का बोध पा लेने के बाद स्वयं ही अपने तथा दूसरों के प्रश्नों का समाधान कर सकता है। फिर भी यदि कोई अपने आप न समझ पावे तो उसे स्वरों में तत्त्वों के जानकार के पास से समझ लेना चाहिए ।

भाई पुखराज जी (जेठमल सुकनराज वालों) की भावना के अनुसार इस स्वरोदय विज्ञान के ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ के शीर्षक में "प्रभु महावीर की अमृतवाणी (Sayings of Lord Mahavira) के एक-एक करके सुबोध वाक्यों को भी दे दिया है। इनका प्रत्येक पाठक को मनन पूर्वक पढ़कर जीवन में आत्मसात करने का प्रयत्न करना चाहिए तथा पहले के दो फर्मों (३२ पृष्ठों) के प्रत्येक पृष्ठ के शीर्षक में एक-एक नीति वाक्य भी दिये हैं जो प्रत्येक मानव के लिये उत्तम शिक्षाप्रद हैं।

अन्तिम निवेदन

अष्टांग निमित्त का विषय अत्यंत उपयोगी होने से मैंने इस पर अपनी कलम से काम लिया है। तीस वर्षों के सतत परिश्रम से इसके चार विभाग प्रकाशित किये जा सकें :—इसमें पांच अंगों का समावेश है, बाकी के तीन अंगों में से लक्षण (सामुद्रिक—शरीर लक्षण) विज्ञान भी तैयार हो चुका है। और बाकी के दो अंग भी तैयार किये जा रहे हैं।

उपर्युक्त चारों विभागों के प्रकाशन में भाई पुखराज जी तथा सरदारमल जी प्रेरणा तथा सहयोग ही मुख्य कारण हैं। यदि सच पूछा जाये तो इनके सक्रिय सहयोग तथा प्रेरणा के बिना न तो यह साहित्य प्रकाशन ही हो पाता और न ही इसका प्रचार और प्रसार। इनके सिवाय और भी जिन-जिन महानुभावों ने इस कार्य में मेरा हाथ बटाया है उनकी नामावली भी प्रश्नपृच्छा विज्ञान में दे दी है। उनके सहयोग के लिये उन्हें अभिनंदन देता हूं आशा करता हूं कि आगे के लिये भी सब जैन बंधु इस कार्य में मेरा सहयोग देकर हाथ बटाते रहेंगे जिससे मैं इस वृद्धावस्था में जैन शासन की साहित्य सर्जन द्वारा अन्तिम श्वासों तक सेवा कर सकूं।

वर्तमान समय में अष्टांग निमित का सांगोपांग हिंदी, गुजराती आदि लोक भाषाओं में प्रकाशन का अभाव ही है। इसलिये मैंने इसी विषय को लिखकर इस कमी को पूरा करने का प्रयास किया है। इसमें मैं कहां तक सफल हुआ हूं इसका विद्वर्य ही निर्णय दे सकते हैं। अधिक क्या लिखू।

अपरंच—इस अष्टांग निमित्त में अपने जीवन सम्बन्धि अनेक प्रश्नों का निर्णय पाने के लिये बड़ी सरल रीतियों का वर्णन होने से समझदार व्यक्ति स्वतः अपने जीवन में उपस्थित होने वाली उलझनों से छुटकारा पा सकता है और अर्द्धविद्गध ज्योतिषियों के चंगुल में फंसने से छुटकारा पा सकता है। यह अष्टांग निमित्त पूर्वधर मुनियों—आचार्यों द्वारा प्रतिपादित है इसलिये यह सर्वज्ञ के कथन तुल्य सर्वथा सत्य है। पर खेद का विषय है कि आज विज्ञान द्वारा जड़वाद के प्रसार और प्रचार के कारण अर्द्धविद्गध धन्धाधारी ज्योषियों द्वारा इस ज्ञान से लोग वंचित होते जा रहे हैं। एवं पूर्वाचार्यों द्वारा गुंथित इस विषय पर लिखे हुए ग्रन्थ रत्न प्रकाश में आये बिना अंधेरी अलमारियों तथा कोठरियों में पड़े-पड़े जीर्ण-शीर्ण होते जा रहे हैं अथवा दीमक (उधई) की खुराक बन रहे हैं।

अतः जैन शासन की वफादारी इसी में हैं कि लक्ष्मीपति सुश्रावक इस उपयोगी साहित्य के सर्जन और प्रकाशन के लिये उदारता पूर्वक आर्थिक सहयोग देकर अपनी लक्ष्मी से पुण्योपार्जन करें। सुज्ञेषु किं बहुनः।

विशेष सूचना

इस जगत में सब प्राणी सुख चाहते हैं। विपत्ति तथा दुःख से छुटकारा पाने के लिये पीर-पेगंम्बरों, मन्त्रवादियों, साधु-सन्यासियों के चंगुल में फंसकर तथा देवी-देवताओं की मान्यताओं के चक्र में उलझ कर समय तथा धन का अपव्यय करके भी सुख शांति पाने के बदले परेशानियों से अधिक घिर जाते हैं और अन्त में श्रद्धा भ्रष्ट होकर मार्ग च्युत हो परेशानियों से ग्रसित जीवन व्यतीत करते रहते हैं।

इसके लिये सम्यग्दृष्टि महायोगियों और चौदह पूर्वधारियों ने तथा आत्म साक्षात्कारी ऋषि मुनियों ने समस्त मानव जगत के उपकार के लिये अनेक मंत्रगर्भित स्तुति-स्तोत्रों की रचना करने की कृपा की है। उन पर कल्पादि लिखकर उनमें गर्भित मंत्रों-यंत्रों-तंत्रों आदि की रचना, उनकी साधना और

प्रयोगादि की सब विधियों का भी सुन्दर वर्णन किया है।

नवकार मंत्र, उवसग्गहरं, नमुत्थुणं, लोगस्स, भक्तामर, कल्याणमंदिर, वसुधारा, घंटाकरण महावीर, माणिभद्र, क्षेत्रपाल, भोमिया जी, धरणेन्द्र-पद्मावती, सरस्वती (विद्यादेवी) लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, इत्यादि अनेकानेक के मंत्रों-यंत्रों-तंत्रों का आराधन विधि सहित बहुत बड़ा संग्रह भी हिन्दी भाषा में लिखकर तैयार कर लिया गया है।

इन दोनों ग्रन्थों १—शारीरिक लक्षण तथा २—मंत्रादिसंग्रह के लिये यंत्रों के चित्र, ब्लाक्स तथा छपाई के लिये हजारों रुपयों का खर्चा है, तत्पश्चात् पुस्तकों के प्रकाशन आदि में भी अधिक महंगाई के कारण काफी खर्चा आ जावेगा।

इसलिये इनके प्रकाशन के लिये यदि जिनशासन—रसिक धर्मनिष्ठ सुश्रावक वर्ग आर्थिक सहयोग देने की उदारता दिखलावेंगे तो ही इसके प्रकाशन का कार्य हाथ लेना सम्भव है। जितना जल्दी सहयोग मिलेगा उतनी झड़प से कार्य सम्पन्न हो सकेगा।

इन दोनों ग्रन्थों के कई विभाग बन जावेंगे। जो महानुभाव एक-एक विभाग का पूरा खर्चा देकर छपवाना चाहेंगे यदि वे चाहेंगे तो उनका परिचय तथा फोटो उस विभाग में प्रकाशित कर दिया जावेगा और उन्हे कुछ पुस्तकें भी भेंट रूप दे सकेंगे।

इनके प्रकाशन से लाभ

इनके सरल हिन्दी भाषा में प्रकाशन हो जाने पर अनेक भव्य जीव इनकी आराधना द्वारा संकटों से छुटकारा पाकर सुखी होंगे सम्यक्तत्व को पाएंगे तथा सम्यक्तव पाये हुए व्यक्ति जिनशासन में सुदृढ़ होकर जैन धर्म के सच्चे अनुरागी बनेंगे। अधिक क्या लिखें।

दिल्ली हीरालाल दूगड़

३०-११-७३

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य कृत योगशास्त्र से संकलित
पदस्थ स्थान

प्रणव (ॐकार) का ध्यान

हृदयकमल में रहे हुए समग्र शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति का एक कारण, स्वर तथा व्यंजन सहित पंचपरमेष्ठि पदवाचक तथा मस्तक में रही हुई चन्द्र कला में से झरते हुए अमृत के रस से सराबोर महामंत्र प्रणव का कुम्भक करके चिंतन करें।

ॐकार ध्यानके जुदा-जुदा भेद

स्तंभन करने के लिए पीले ओंकार का ध्यान, वशीकरण के लिए अथवा क्षुभित करने के लिये मूंगे की कांति जैसा वर्ण, विद्वेषण कर्म के लिए काला तथा कर्मों को नाश करने के लिए चन्द्र की कांति के समान उज्ज्वल ॐकार का ध्यान करें।

पंच-परमेष्ठि (नवकार) मंत्र का ध्यान तथा फल

तीन जगत को पवित्र करने वाला और महापवित्र पंचपरमेष्ठि नम—स्कार मंत्र का योगियों को विशेष प्रकार से चिंतन करना चाहिये।

१—हृदय में आठ पंखड़ियों वाले सफेद कमल की कल्पना करें। उस कमल की कर्णिका में "नमो अरिहंताणं" की कल्पना करें, फिर "नमो सिद्धाणं" पूर्व दिशा में, "नमो आयरियाणं" दक्षिण दिशा में, "नमो उवज्झायाणं" पश्चिम दिशा में, "नमो लोए सव्वसाहूणं" उत्तर दिशा में, "ऐसो पंच नमुक्कारो" अग्नि कोण में, "सव्व पावप्पणासणो" नैऋत्य-कोण में, "मंगलाणं च सव्वेसिं" वायव्य कोण में, "पढमं हवइ मंगलं ईशान कोण में स्थापन करें। इस प्रकार महामंत्र का ध्यान करें।

मन, वचन, काया की एकग्रतापूर्वक जो १०८ बार इन नमस्कार महा-मंत्र का जाप करता है उसे आहार करते हुए भी एक उपवास का फल होता है तथा इसी महामंत्र की उत्तम प्रकार से आराधना कर के आत्म लक्ष्मी को प्राप्त कर इस भव में तीनों लोकों के प्राणियों द्वारा पूजित होता है।

हज़ारों पापों को करने वाले सैकड़ों प्राणियों की हत्या करने वाले जानवर भी इस महामंत्र की आराधना से देवलोक में गये हैं।

प्रकारांतर से पंचपरमेष्ठि विद्या

१—पंच परमेष्ठि से उत्पन्न सोलह अक्षरों की विद्या को दो सौ बार जपने से एक उपवास का फल होता है।

विद्या—-अरिहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-साहू।

३—छः अक्षरों वाली विद्या तीन सौ बार; ४-चार अक्षरों वाली विद्या चार सौ बार; ५—पांच अक्षरों वाली विद्या पांच सौ बार जपने से एक उपवास का फल होता है।

छः अक्षरी विद्या—अरिहंत सिद्ध। चार अक्षरी विद्या—अरिहंत। पांच अक्षर विद्या—अ-सि-आ-उ-सा।

इन विद्याओं के जाप का फल जो एक उपवास का बतलाया है; यह तो बाल जीवों को जाप में प्रवृत्ति के लिये है। पर परमार्थ से वास्तविक फल तो स्वर्ग और मोक्ष है। ऐसा ज्ञानी पुरुषों ने कहा है।

६—सिद्धान्त से उद्धार की हुई पांच वर्ण वाली, पांच तत्त्व विद्या का यदि प्रतिदिन जाप किया जावे तो सब क्लेशों को दूर करती है—

विद्या—ह्रा ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ-सि-आ-उ-सा नमः।

७—नीचे लिखी विद्या का यदि एकाग्र चित्त से स्मरण किया जावे तो मोक्ष की प्राप्ति हो।

विद्या—अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवली पन्नत्तो धम्मो मंगलं। अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमा। अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलि पन्नतं धम्मं सरणं पवज्जामि।

८—पन्द्रह अक्षरों की विद्या का ध्यान—यह मोक्ष सुख को देने वाली विद्या है। तथा सर्व ज्ञान प्रकाशक सर्वज्ञ सदृश मंत्र का भी स्मरण करें।

विद्या—ॐ अरिहंत सिद्ध सयोगि केवलि स्वाहा।

मंत्र—ॐ श्रीं ह्रीं अर्हं नमः।

यह विद्या और मंत्र महान् चमत्कारी है। यह विद्या और मंत्र सर्वज्ञ भगवान की सदृशता को धारण करते है।

९—सात वर्ण वाले मंत्र का ध्यान—संसार रूप दावानल को एक क्षण बार में उच्छेद करने की तुम्हारी इच्छा हो तो इस मंत्र का जाप करें—

मंत्र—नमो अरिहंताणं।

१०—आठ कर्मों को नाश करने के लिए इस पांच वर्ण वाले मंत्र का जाप करें—**मंत्र-नमो सिद्धाणं।**

११—सब प्रकार के अभय के लिये इस मंत्र का जाप करें—

ॐ नमो अर्हते केवलिने परमयोगिने, विस्फुरदुरुशुक्लध्यानाग्निनिदग्ध कर्मबीजाय, प्राप्तानंत चतुष्टयाय, सौम्याय, शांताय मंगलवरदाय स्वाहा।

यह मन्त्र अभय देने वाला है।

१२—सामान्य विद्या—ह्रीं श्रों श्रों सो हम्ली हं श्रों श्रों ह्रीं। इसका जाप करें।

१३—अचिंत्य फलदा गणधरकृत विद्या ध्यान—

ॐ जोग्गे, मग्गे, तत्थ, भूए, भव्वे, भविस्से, अंते परक्खे जिणपार्श्व स्वाहा।

१४—आठ पंखड़ी वाले कमल में झलझलाट करते हुए तेज वाली आत्मा का चिंतन करना और नीचे लिखे आठ अक्षरी विद्या के आठ अक्षरों को उस कल्पित कमल की पूर्व दिशा की तरफ से प्रारम्भ करके एक-एक अक्षर को स्थापित करें फिर इस कमल के अक्षरों पर ध्यान करते हुए ग्यारह सौ (११००) बार जाप करें। सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो।

विद्या—ॐ नमो अरिहताणं।

विघ्न शांति के लिये उपर्युक्त विद्या का आठ दिन तक प्रतिदिन ११०० जाप करने से सब प्रकार के विघ्न शांत हो जावें।

आठ रात्रि बीतने पर जाप करने वाले को ऐसा सामर्थ्य आ जाता है कि आत्मा में कल्पित कमल के अन्दर रहे हुए स्थापित आठों वर्ण अनुक्रम से दिखलाई देंगे।

इस आठ अक्षरी विद्या के हृदय में अक्षर देखने वाले को ऐसा सामर्थ्य हो

जाता हैं कि ध्यान में विघ्न करने वाले, भयंकर सिंह, हाथी, राक्षस और दूसरे भी भूत-प्रेत सर्पादि तत्काल शांत हो जाते हैं।

१५—ॐ **नमो अरिहंताणं**—इस मंत्र का जाप इस लोक सम्बन्धि फल चाहने वाले को ॐ सहित करना और मोक्षाभिलाषी को ॐकार के बिना जाप करना चाहिये।

१६—**कर्म ओघ की शांति के लिए जाप**—

मंत्र—श्रीभद् ऋषभादि वर्धमानांतेभ्यो नमः। कर्म के नाश के लिए सदा इसका जाप करें।

१७—**सर्व जीवों के उपकार के लिए पाप भक्षिणी विद्या**—

विद्या—ॐ अर्हन् मुख-कमल-वासिनि पापात्मक्षयंकरि, श्रुतज्ञानज्वाला सहस्त्र ज्वलिते, सरस्वति मत्पापं हन्-हन् दह-दह क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षीरधवले अमृत संभवे वं-वं हूं हूँ स्वाहा। (यह पाप भक्षिणी विद्या है, इस का नित्य स्मरण करें)।

इस विद्या के प्रभाविक अतिशय से मन तत्काल प्रसन्न होता है, पाप की कलूषता दूर होती है तथा ज्ञान-दीपक प्रकाशित होता है (ज्ञान प्रकट होता है)।

१९—**सिद्धचक्र के स्मरण करने की विधि**—

विद्या प्रवाद से उद्धार करके वज्रस्वामि आदि ज्ञानी पुरुषों ने प्रकट रूप से मोक्ष लक्ष्मी के बीज समान माना हुआ तथा जन्म मरणादि दावानल को प्रशांत करने में नवीन मेघ के समान सिद्धचक्र को गुरु के उपदेश से जानकर कर्म क्षय के लिये चिंतन करें।

विधि—नाभि कमल में स्थित सर्व व्यापि "अ" कार का चिंतन करें। मस्तक पर "सि" वर्ण का, मुख कमल में "आ" कार का, हृदय कमल में में "उ" कार का, तथा कंठ में "सा" कार का चिंतन करें।

१—सिद्धचक्र के चिंतन में यहां पर पंच परमेष्ठियों के आदि के अक्षरों की कल्पना करके चिंतन करने के लिए लिखा है; जैसे कि—१—अरिहंत पद का—अ; २—सिद्ध पद का—सि; आचार्य पद का—आ; उपाध्याय पद का—उ; साधु पद का—सा।

श्री वीतरागाय नमः

श्री स्वरोदय-सार (सविवेचन)

(चिदानन्द जी कृत)

अर्थ—विवेचन आदि कर्ता—पं० हीरालाल दूगड़

मंगलाचरण (तीर्थंकर वन्दना)

(छप्पय) नमो आदि अरिहंत देव, देवनपति राया।
जास चरण अवलम्ब, गणाधिप गुण निज पाया॥
धनुष पांचशत मान, सप्त कर परिमित काया।
ऋषभादि अरु अन्त, मृगाधिप चरण सुहाया॥
आदि अन्त युत मध्य, जिन चौबीस इम ध्याइये।
चिदानन्द तस ध्यान थी, अविचल लीला पाइये॥१॥

अर्थ—जो देवों के स्वामी—इन्द्रों के भी पूज्य हैं तथा जिनके चरण-कमलों के अवलम्बन मात्र से गणधर देवों ने भी अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर अनन्त गुणों को प्राप्त किया है ऐसे अरिहंत देवों को मैं सर्वप्रथम नमस्कार करता हूं।

पांच सौ धनुष शरीर वाले प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव तथा जिनके चरणों में सिंह का चिन्ह सुशोभित है और सात हाथ लम्बा जिनका शरीर है ऐसे अन्तिम (चौबीसवें) तीर्थंकर श्री वर्धमान (महावीर) स्वामी—एवं इन आदि और अन्तिम तीर्थंकरों के मध्यवर्ती श्री अजितनाथ से श्री पार्श्वनाथ तक बाईस तीर्थंकरों को मिलाकर कुल चौबीस तीर्थंकरों का ध्यान करता हूं। हे चिदानंद! इनके ध्यान से शाश्वत सुख अर्थात् मोक्ष रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।-१

सरस्वती वन्दना

(छप्पय) इक कर वीणा धरत, इक कर पुस्तक छाजे।
चन्द वदन सुकमाल, भाल जस तिलक विराजे॥

हार मुकुट केयूर, चरण नूपर धुनि बाजे।
अद्भुत रूप स्वरूप, निरख मन रम्भा लाजे ॥
लीलायमान गज गामिनी, नित ब्रह्मसुता चित्त ध्याइये।
चिदानन्द तस ध्यान थी, अविचल लीला पाइये ॥२॥

(दोहा) उदधि सुता सुत तास रिपु, वाहन संस्थित बाल।
बाल जाणी निज दीजिये, वचन विलास रिसाल ॥३॥

अर्थ—एक हाथ में वीणा तथा एक हाथ में पुस्तक धारण किए हुए ऐसी चन्द्रमुखी, कोमलांगी, मस्तक पर तिलक किए हुए, हार, मुकुट, बाजूबन्ध से सुशोभित शरीर वाली, नूपुरों की ध्वनि सहित चरणों वाली, हाथी के समान चाल वाली, जिसके रूप को देखकर रम्भा भी लज्जित होती है ऐसे अद्भुत स्वरूप वाली सरस्वती का मैं चिदानन्द ध्यान करता हूं क्योंकि तुम्हारे ध्यान से शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है—२

हे गरुड़ वाहिनी सरस्वती मुझे (चिदानन्द को) आप अपना बालक जानकर सरस रसाल वचन दो अर्थात् मुझे इस स्वरोदय सार की रचना करने की शक्ति प्रदान करो—३

सिद्ध वन्दना

(दोहा) अज अविनाशी अकल जे, निरंकार निरधार।
निर्मल निर्भय जे सदा, तास भक्ति चित्त धार ॥४॥

जन्म जरा जाकुं नहीं, नहीं सोग सन्ताप।
सादि अनन्त स्थिति करी, स्थिति बन्धन रुचि काप ॥५॥

लीजे अंश रहित शुचि, चरम पिण्ड अवगाह।
एक समय सम श्रेणि ए, अचल थया शिवनाह ॥६॥

सम अरु विषम पणे करि, गुण पर्याय अनन्त।
एक-एक प्रदेश में शक्ति सुजस महन्त ॥७॥

रूपातीत व्यतीत मल, पूर्णानन्दी ईस।
चिदानन्द ताकुं नमंन, विनय सहित निज शीश ॥८॥

अर्थ—जो सदा जन्म-मरण रहित, अकल, निराकार, निराधार, निर्मल, निर्भय हैं उनकी भक्ति चित्त में धारण करके—४

जिन्हें न जन्म है, न वृद्धावस्था है, न शोक है, न संताप है, सादि अनन्त स्थिति वाले, कर्म बन्धन के जंजाल को जिन्होंने काट दिया है—५

सर्व कर्म मल से रहित, सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्व प्रकार के कर्म बन्धन से मुक्त होकर शैलेशीकरण द्वारा निज आतम प्रदेशों को घनीभूत करके चरम शरीर से दो तृतीयांश (२/३) अवगाहना से, समश्रेणी से एक समय में लोक के अन्त में सिद्ध अवस्था को प्राप्त करने वाले—६

सम-विषमता से अनन्त गुण-पर्यायों सहित एक-एक प्रदेश में महान् शक्ति सम्पन्न—७

रूपातीत (अरूपी), व्यतीत मल (कर्म-मल से रहित), अनन्त आनन्द आदि गुणों के धारक ऐसे ईश्वर (सिद्ध भगवंतों) को मैं चिदानन्द विनय सहित अपने मस्तक को झुकाकर नमस्कार करता हूं—८

सारांश यह है कि लेखक ने पद्य १ से ८ तक श्री अरिहंत भगवान्तों, सरस्वती तथा सिद्ध भगवान् को वन्दन, नमस्कार करके मंगलाचरण किया है ।

स्वर-ज्ञान

(दोहा) काल ज्ञानादिक थकी, लही आगम अनुमान ।
गुरु किरपा करि कहत हूं, शुचि स्वरोदय ज्ञान ॥९॥
सुर का उदय पिछानिए, अति थिरता चित्त धार ।
ता थी शुभाशुभ कीजिये, भावि वस्तु विचार ॥१०॥
नाड़ी तो तन में घनी, पिण चौबीस प्रधान ।
ता में दस पुणि ताहु में, तीन अधिक करि जान ॥११॥
इंगला पिंगला सुखमना, ये तीनों के नाम ।
भिन्न-भिन्न अब कहत हूं, ता के गुण अरु धाम ॥१२॥

अर्थ—मैं (चिदानन्द) पृथ्वी आदि मंडलों में पवन के प्रवेश और निःसरण काल के ज्ञानादि से आगम का अनुमान लेकर गुरु कृपा से प्राप्त किए हुए पवित्र

स्वरोदय ज्ञान को कहता हूं—९

नासिका के भीतर से जो श्वास निकलता है उसका नाम स्वर है। चित्त को अति स्थिर करके स्वर को पहचानना चाहिए और स्वर को पहचान कर भविष्य में होनहार के शुभाशुभ का विचार करना चाहिए—१०

स्वर का सम्बन्ध नाड़ियों से है। यद्यपि शरीर में नाड़ियां बहुत हैं तथापि इनमें से चौबीस नाड़ियां प्रधान हैं और इन चौबीस नाड़ियों में से दस[1] नाड़ियां अति प्रधान हैं एवं उन दस नाड़ियों में से भी तीन नाड़ियां अतिशय प्रधान मानी हैं। जिनके नाम इंगला, पिंगला और सुखमना हैं। इनके गुणों और स्थानों का वर्णन आगे करेंगे ॥११-१२॥

(दोहा) भृकुटी चक्र सु होत है, स्वासा को परकास।
बंकनाल के ढिग थई, नाभि करत निवास ॥१३॥
नाभी थी फुनि संचरत, इंगला पिंगला धाम।
दक्षिण दिश है पिंगला, इंगला नाड़ी वाम ॥१४॥
इन दोऊ के मध्य में, सुखमन नाड़ी होय।
सुखमन के परकास में, सुर पुनि चालत दोय ॥१५॥

अर्थ—दोनों भोओं के बीच में जो आज्ञारव्य नाम का चक्र है वहां से श्वास का प्रकाश होता है तथा पिछली बंकनाल में से होकर नाभी में जा कर ठहरता है, वहां से फिर श्वास इंगला और पिंगला द्वारा निकलता है।[2]

१—ग्रन्थकर्त्ता ने स्वयं ही इन दस नाड़ियों के नाम स्थानादि का इसी ग्रन्थ के पद्य नं० ४३१ से ४४१ में वर्णन किया है।

२—अथ मंडलेषु वायोः प्रवेशानःसरणकालमवगम्य।
उपदिशति भुवनवस्तुषु विचेष्टितं सर्वथा सर्वम् ॥३६॥

(शुभचन्द्राचार्य कृते ज्ञानार्णवे)

अर्थ—(पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आदि) मंडलों में पवन के प्रवेश और निःसरण काल को निश्चय करके ध्यानी पुरुष, जगत भर में जो पदार्थ हैं उन सबकी सर्व प्रकार की चेष्टाओं का वर्णन करते हैं।

(नोट) काल ज्ञानादि का विस्तृत विवरण ग्रन्थकार क्रमशः स्वयं करेंगे।

शरीर में मेरुदंड के दक्षिण (दाहिनी) दिशा की तरफ पिंगला (सूर्य) नाड़ी है तथा वाम (बायीं) तरफ इंगला (चन्द्र) नाड़ी है। इन दोनों नाड़ियों के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी रहती है। सुखमन नाड़ी के प्रकाश से नाक के दोनों नथनों से स्वर (श्वास) चलता है ॥१३-१४-१५॥

(दोहा) डाबा सुर जब चलत है, चन्द्र उदय तब जान।
जब सुर चालत जीमणो, उदय होत तब भान ॥१६॥

अर्थ—इनमें से जब (इंगला नाड़ी द्वारा) बांया (डाबा) स्वर चलता है तब चन्द्र का उदय जानना चाहिए तथा जब (पिंगला नाड़ी द्वारा) दाहिना (जीमना) स्वर चलता है तब सूर्य का उदय जानना चाहिए—१६

स्वरों के कार्य

(दोहा) सौम्य काज कुं शुभ शशि, क्रूर काज कुं सूर।
इम विधि लख कारज करत, पामे सुख भरपूर ॥१७॥
दोऊ स्वर सम संचरे, तब सुखमन पहिछान।
तामे कोऊ कारज करत, अवस होय कछु हान[३] ॥१८॥

३—प्रत्येक मनुष्य जब नाक द्वारा श्वास लेता है तब उसकी नासिका के दोनों छेदों में से कभी तो नासिका के एक छेद में से श्वास निकलता है और दूसरा छेद बन्द रहता है जब जिस छेद से श्वास निकलता हो उसी स्वर को चलता समझना चाहिए तथा कभी-कभी एक छेद से तेज़ी के साथ श्वास निकलता है और एक छेद से धीमा स्वर निकलता है अर्थात् दोनों छेदों में से स्वर तो निकलता है परन्तु समान स्वर नहीं निकलता। जिस तरफ का श्वास तेज़ी के साथ निकलता है उसी स्वर को चलता हुआ समझना चाहिए। दाहिने छेद से यदि वेग से स्वर निकले तो उसे सूर्य स्वर कहते हैं। बाएं छेद से यदि वेग से स्वर निकले तो चन्द्र स्वर समझना चाहिए। दोनों छेदों में से श्वास निकलता हो तो उसे सुखमना स्वर कहते हैं। सुखमना स्वर प्रायः उस समय चलता है जब एक स्वर से दूसरा स्वर बदलना चाहता है।

अर्थ—सौम्य[४] (शीतल और स्थिर) कार्यों को चन्द्र स्वर में करना शुभ है, क्रूर और चर कार्यों को सूर्य स्वर शुभ है। जब दोनों स्वर समान चलते हों उसे सुखमना स्वर कहते हैं। इस स्वर में प्रभु भजन और ध्यान के सिवाय अन्य कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस स्वर में किसी कार्य को करने से वह निष्फल होता है तथा उससे क्लेश भी उत्पन्न होता है—१७-१८

(दोहा) चन्द्र चलत कीजे सदा, थिर कारज सुरभाल।
चर कारज सूरज चलत, सिद्धि होय तत्काल ॥१९॥
कृष्ण पक्ष स्वामी रवि, शुक्ल पक्ष पति चन्द।
तिथि भाग इन कालहिं, कारज करत आनन्द ॥२०॥
कृष्ण पक्ष की तीन तिथि, प्रथम रवि की जान।
तीन शशि पुनि तीन रवि, इन अनुक्रम पहिचान ॥२१॥
शुक्ल पक्ष की तीन तिथि, चन्द्र तरणी कह मीत।
फुनि रवि फुनि शशि फुनि रवि यह गणना की रीति ॥२२॥

अर्थ—इसलिए चंद्र स्वर के चलते समय शीतल और स्थिर कार्यों को तथा सूर्य स्वर के चलते समय क्रूर और चर कार्यों को करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से कार्य की सिद्धि तत्काल होती है—१९

कृष्ण (वदि) पक्ष का स्वामी सूर्य है और शुक्ल (सुदि) पक्ष का स्वामी चंद्र है। इसलिए तिथियों के विभाग (हिसाब) से उस-उस काल में कार्य करने से आनन्द की प्राप्ति होती है—२०

चन्द्रो समस्तु विज्ञेयो रविस्तु विषमं सदा।
चन्द्रः स्त्रीः पुरुष सूर्यः चन्द्रो गोरोऽसितो रविः ॥१९॥

अर्थ—चन्द्र सम है, रवि विषम है, चन्द्र स्त्री है, सूर्य पुरुष है, चन्द्र गौर वर्ण है, सूर्य असित (काला) है।

सुखमना नाड़ी में अग्नि का वास है, काल रूपिणी है, विष रूप है और सर्व कार्यों को नाश करने वाली है इसलिए इस स्वर में कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

४—शीतल और स्थिर कार्य—देखें पद्य नं० १९३ से २०४
क्रूर और चर कार्य—देखें पद्य नं० २०५ से २१३

कृष्ण पक्ष की १५ तिथियों में से क्रम-क्रम से तीन-तीन तिथियां सूर्य और चंद्र की हैं। जैसे प्रतिपदा, दूज, तीज ये तीन तिथियां सूर्य की हैं। चौथ, पंचमी, छठ ये तीन तिथियां चंद्र की हैं। इसी प्रकार अमावस्या तक शेष तिथियों में भी क्रमशः समझना चाहिए। इनमें जब अपनी-अपनी तिथियों में दोनों (सूर्य और चंद्र) स्वर चलते हों तब वे कल्याणकारी होते हैं—२१

शुक्ल पक्ष की १५ तिथियों में से क्रम-क्रम से तीन-तीन तिथियां चंद्र और सूर्य की होती है, अर्थात् प्रतिपदा, दूज, तीज ये तीन तिथियां चंद्र की हैं तथा चौथ, पंचमी, छठ ये तीन तिथियां सूर्य की हैं। इसी प्रकार पूर्णमाशी तक शेष तिथियों में भी क्रमशः समझना चाहिए। इनमें भी इन दोनों (चंद्र और सूर्य स्वरों) का अपनी-अपनी तिथियों में प्रातःकाल चलना शुभकारी है—२२

(छप्पय) मंगल शनि आदित्य-वार, स्वामी रवि जानो।
सुरगुरु बुध अरु सोम, शुक्र - पति चंद्र बखानो॥
इन विधि स्वर तिथि वार, भिन्न नक्षत्र पिछानो।
शुभ कारज के योग्य, सकल इन विधि मन आनो॥
निरगुण[५] सुरगुण विध, भाव इन विध के लेखो।
तत्त्व तणों परकास, सुधा रस इम तुम पेखो॥२३॥

अर्थ—मंगल, शनि और रवि इन वारों का स्वामी सूर्य है और सोम, बुध, गुरु, शुक्र इन वारों का स्वामी चन्द्र है।

इस प्रकार स्वर, तिथि, वार तथा नक्षत्र को जानकर कार्य की सफलता के लिए इन सबका सूक्ष्म रीति से विचार करो।

५—जब स्वर बाहर निकल रहा हो उस स्वर को निर्गुण कहते हैं जो स्वर नासिका के भीतर जाता हो उसे सगुण स्वर कहते हैं। जो स्वर बदलकर नया चलना शुरू होता है उसे उदय स्वर कहते हैं तथा जब स्वर बदलने को होता है उसे अस्त कहते है। यदि स्वर सगुण और उदय हो तो कार्य सिद्ध हो। इससे विपरीत हो तो कार्य की हानि हो।

सर्वे प्रवेश-काले कथयन्ति मनोगतं फलं पुंसाम्।
अहितमति दुःखनिचितं त एव निःसरणवेलायाम् ॥३३॥

एवं स्वर विचार में निर्गुण, सगुण, उदय, अस्त आदि को भी देखना चाहिए, जिससे आप सर्व प्रकार की सफलता प्राप्त कर सकते हैं—२३

शुभाशुभ फल

पक्ष तथा तिथि में स्वर विचार

(दोहा)—कृष्ण पक्ष एकम दिने, प्रातः सूरज होय।
ताते पक्ष प्रवीण नर, आनन्दकारी जोय ॥ २४ ॥
शुक्ल पक्ष के आदि दिन, जो शशि स्वर उद्योत।
तो ते पक्ष विचारिये, सुखदायक अति होत ॥ २५ ॥

अर्थ—सब पवन प्रवेश काल में अर्थात् नासिका में प्रवेश करते समय कार्य करने से पुरुषों के मनोगत विचारे हुए फल की प्राप्ति होती है। ये पवन नासिका से बाहर निकलते समय कार्य करने से अतिशय दुःख से भरे अहित को करते हैं ॥ ३३ ॥

सर्वेऽपि प्रविशन्तौ रवि-शशि-मार्गेण वायवः सततम्।
विदधति परां सुखास्थां निर्गच्छन्तो विपर्यस्ताम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—सब पवन सूर्य, चन्द्र के मार्ग से अर्थात् दाहिने, बायें निरन्तर प्रवेश करते हुए उत्कृष्ट सुख को करते हैं तथा निकलते हुए उत्कृष्ट दुःख को प्रगट करते हैं। अर्थात् प्रवेश करते शुभ तथा निःसरण करते अशुभ हैं।

वामेन प्रविशन्तौ वरुण महेन्द्रौ समस्त सिद्धिकरौ।
इतरेण निःसरन्तौ हुतभुकपवनौ विनाशाय ॥ ३५ ॥
(ज्ञानार्णव प्रकाश २९ श्लो० ३३-३४-३५)

अर्थ—जल मंडल तथा पृथ्वी मंडल के पवन बांई तरफ प्रवेश करते हों तब कार्य करने से समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाले हैं एवं अग्नि मंडल और वायु मंडल के पवन दाहिनी तरफ निकलते हुए विनाश के करने वाले हैं।

इन स्वरों के चार भेदों को इस मंत्र द्वारा समझाते हैं—

स्वरों का नाम और गुण

निर्गुण स्वर	सगुण स्वर	उदय स्वर	अस्त स्वर
जब स्वर नाकके छेद में से बाहर निकले तब निर्गुण होता है इसमें कोई प्रश्न करे तो उसका कार्य सिद्ध न हो :	जब स्वर नाक के छेद में प्रवेश करे उसे सगुण स्वर कहते हैं तब जो प्रश्न करे वह अपनी आशा पावे	स्वर जब दूसरे स्वर से बदल कर नया चलना शुरू होता है उसे उदय स्वर कहते हैं।	जब स्वर बदलने को होता है उसे अस्त स्वर कहते हैं।

चन्द्र तिथि में चन्द्र स्वर, सूर तिथि बहे सूर।
काया में पुष्टि करे, सुख आपत भरपूर ॥ २६ ॥
चन्द्र तिथि में आय जो, भानु करत प्रकास।
तो क्लेश पीड़ा हुए, किञ्चित वित्त विनास ॥ २७ ॥
सूरज तिथि पड़वा दिने, चले चन्द्र स्वर भोर।
पीड़ा कलह नृप भय करे, चित्त चंचल चिहुं ओर ॥ २८ ॥
दोऊ पक्ष पड़वा दिने, सुखमन स्वर जो होय।
लाभ हानि सामान्य थी, ते निहचे करि जोय ॥ २९ ॥

अर्थ—कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा (एकम) के दिन यदि प्रातः काल सूर्य स्वर चले तो वह पक्ष बहुत आनन्द से बीतता है—२४

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा (एकम) के दिन यदि प्रातःकाल चन्द्र स्वर चले तो वह पक्ष भी बहुत सुख और आनन्द से बीतता है २५

इसी प्रकार चन्द्र तिथि में चन्द्र स्वर तथा सूर्य तिथि में सूर्य स्वर चले तो काया को स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, बहुत सुख और आनन्द को देने वाला है—२६

यदि चन्द्र की तिथि में सूर्य स्वर चले तो क्लेश और पीड़ा होती है तथा कुछ द्रव्य की भी हानि होती है—२७

यदि सूर्य की तिथि में प्रतिपदा आदि को प्रातःकाल चन्द्र स्वर चले तो पीड़ा, कलह, तथा राजा से किसी प्रकार का भय होता है और चित्त में चंचलता उत्पन्न होती है—२८

यदि कदाचित इन दोनों पक्षों में (कृष्ण तथा शुक्ल पक्ष) पड़वा के दिन प्रातःकाल सुखमना स्वर चले तो उस मास में हानि और लाभ समान ही होते हैं—२९

स्वर, लग्न, राशियां तथा मास विचार

दोहा—वृश्चिक सिंह वृष कुम्भ, शशि सुर कीए रास।
चन्द्र जोग इनके मिलत, शुभ कारज परकास ॥ ३० ॥
कर्क मकर तुल मेष फुनि, चर राशि ए चार।
रवि संगे ए संचरत, चर कारज सुखकार ॥ ३१ ॥

मीन मिथुन धन कन्यका, द्विस्वभाव ए जान ।
सुखमन स्वर सुं मिलत है, काज करत ही हान ॥ ३२ ॥
शशि सूरज के मास इम, भिन्न-भिन्न करि जान ।
राशि वर्गित दिन थकी अधिक भेद मन आन ॥ ३३ ॥

अर्थ—वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ ये चार राशियां चन्द्र स्वर की हैं तथा चन्द्र स्वर के मिलने से ये राशियां स्थिर कार्यों में श्रेष्ठ हैं—३०

मेष, कर्क, तुला और मकर ये चार राशियां सूर्य स्वर की हैं यदि इन राशियों में सूर्य स्वर चलता हो तो ये चर कार्यों में श्रेष्ठ हैं—३१

मिथुन, कन्या, धन और मीन ये राशियां द्विस्वभाव (सुखमना स्वर) की हैं। यदि इन राशियों में सुखमना स्वर चलता हो तो कार्य के करने से अवश्य ही हानि होती है—३२

उक्त बारह राशियों से बारह महीने भी जान लेना चाहिए अर्थात् ऊपर लिखी जो सक्रांति लगे वही चन्द्र, सूर्य और सुखमना के महीने[६] भी समझना चाहिए—३३

प्रश्न कर्त्ता को दिशा के अनुसार निर्णय

दोहा—प्रश्न करने कु कोउ नर, आवत हिरदे धार ।
पृच्छक नर की दिशि तणो, निर्णय कहुं विचार ॥ ३४ ॥
सनमुख डाबी ऊर्ध्व दिशि, रही प्रश्न करे कोय ।
चन्द्र जोग हो ता समय, कारज सिद्धि होय ॥ ३५ ॥
नीचे पीछे जीमणो, जो को पूछे आय ।
भानु जोग सुर होय तो, तस कारज हो जाय ॥ ३६ ॥

अर्थ—यदि कोई मनुष्य अपने कार्य के लिए प्रश्न करने को आवे तो उस

६—सूर्य सक्रांति के हिसाब से राशियों से महीने इस प्रकार समझने चाहिएं। (अ) चन्द्र स्वर के महीनेः–वृष से जेठ, सिंह से भादों, वृश्चिक से मगसिर और कुम्भ से फागुण। (आ) सूर्य स्वर के महीने—मेष से वैसाख, कर्क से श्रावण, तुला से कार्तिक, तथा मकर से माघ (इ) सुखमना स्वर के महीने—मिथुन से आषाढ़, कन्या से आसोज, धन से पोस एवं मीन से चैत्र मास जान लेना चाहिए।

समय पृच्छक नर की दिशा सम्बन्धी निर्णय पूर्वक विचार कहता हूं—३४

यदि पृच्छक (प्रश्न पूछने वाला) अपने सामने, बांये अथवा ऊपर (ऊंचे) रहकर प्रश्न करे और उत्तरदाता का चन्द्र स्वर चलता है तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा—३५

यदि पृच्छक नीची दिशा, पीछे अथवा दाहिने तरफ खड़ा रह कर कोई प्रश्न पूछे और उस समय उत्तरदाता का सूर्य स्वर चलता हो तो भी कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा—३६

(दोहा)—पूछे दक्षिण भुज रही, सूरज सुर में बात।
लगन वार तिथि जोग मिलि, सिद्ध कार्य अवदात ।। ३७ ।।
वाम भाग रही जो करे, प्रश्न तणो प्रसंग ।
शशि सुर जो पूरण हुए, तो तस काज अभंग ।। ३८ ।।
पूछे दक्षिण कर रही, शशि सुर में जो कोय ।
रवि तत्त्व तिथि वार बिन, तस कारज नवि होय ।। ३९ ।।
अधो पृष्ठ पाछल रही, पृच्छक नो परिमाण ।
चन्द्र चलत फल तेह नो, पूरब कथित पहिचान ।। ४० ।।
चलत सूर सुर जीमणो पुछ डाबी ओर ।
चन्द्र जोग बिन तेहनो, [illegible] कारज विधि कोर ।। ४१ ।।
सनमुख ऊर्ध्व दि[illegible], पूछे जो रवि मांहि ।
चंद्र जोग बि[illegible] तहनुं, कारज सीझे नांहि ।। ४२ ।।

अर्थ—यदि कोई [illegible] (जीमनी) तरफ खड़ा होकर प्रश्न करे और उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तथा लग्न वार और तिथि का योग भी मिल जावे तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा—३७

बांई (डाबी) तरफ रह कर कोई प्रश्न पूछे तो उस समय यदि अपना चंद्र स्वर चलता हो और लग्न, तिथि, वार का भी सब योग मिल जावे तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा—३८

यदि प्रश्न कर्ता दाहिनी (जीमनी) तरफ से प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो सूर्य की तिथि और वार के बिना वह शून्य (खाली) दिशा का प्रश्न कदापि सिद्ध न होगा—३९

यदि नीचे और पीछे रह कर प्रश्न करे तथा उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिए कि कार्य नहीं होगा—४०

यदि कोई बांई (डाबी) तरफ से प्रश्न करे तथा उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो चन्द्र स्वर के बिना उसे कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा—४१

इसी प्रकार यदि कोई अपने सामने अथवा ऊपर (ऊंचे) रह कर प्रश्न पूछे तथा उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो चंद्र स्वर के योग मिले बिना कार्य कदापि सिद्ध न होगा—४२

स्वर द्वारा कार्य के अक्षरों से प्रश्न फल निर्णय

(दोहा)—लगन वार तिथि तत्त्व फुनि, राशि योग दिशि शोध।
कारज के अक्षर गिने, होवे साचो बोध ॥ ४३ ॥
सम अक्षर शशि कुं भलो, विषम भानु परधान।
तिन की संख्या करन कुं, कहुं एम अनुमान ॥ ४४ ॥
चार आठ द्वादश युगल, षट दश चवदे जान।
षोडष थी शशि योग यह, महा शुद्ध पहिछान ॥ ४५ ॥
एक तीन शर सात नव, एकादश अरु तेर।
तिथि संयम पच्वीस फुनि, रवि जोग इम हेर ॥ ४६ ॥

अर्थ—लग्न, वार, तिथि, तत्त्व, राशि, योग तथा दिशा को देखे और कार्य के अक्षर गिन कर सब बातों का मिलान करे तब प्रश्न का उत्तर देने से निश्चय रूप से सत्य होता है—४३

चंद्र स्वर के सम अक्षर होते हैं तथा सूर्य स्वर के विषम अक्षर होते हैं इस को समझाने के लिए पद्य नं० ४५-४६ में गिनती देता हूं—४४

दो, चार, छः, आठ, दस, बारह, चौदह, सोलह आदि सम अर्थात् दो से विभाजित होने वाले अक्षर चन्द्र के हैं—४५

एक, तीन, पांच, सात, नव, ग्यारह, तेरह, पंद्रह, सत्तरह, पच्चीस इत्यादि विषम अर्थात् दो से विभाजित न होने वाले अक्षर सूर्य के हैं—४६

स्वरोदय सिद्धि

(दोहा)—लोक काज सहु परिहरे, धरे सुनिश्चल ध्यान।
श्रवन, मनन, चिन्तन करत, लहत स्वरोदय ज्ञान ॥ ४७ ॥

अथवा प्राणायाम जे, साधे चित्त लगाय।
ताकुं पहली भूमिका, सिद्ध स्वरोदय थाय ॥ ४८ ॥

अर्थ—स्वरोदय को साधन के लिए सब लौकिक कार्यों से लक्ष्य हटा कर निश्चल ध्यान करना चाहिए तथा श्रवन, मनन और चिन्तन करना चाहिए। अथवा जो एकाग्र चित्त से प्राणायाम साधन करता है उसे पहली भूमिका रूप स्वरोदय सिद्ध होता है—४७-४८

निश्चय प्राणायाम

(दोहा)—प्राणायाम विचार तो, है अति अगम अपार।
भेद दोय तस जानिये, निश्चय अरु व्यवहार ॥ ४६ ॥
निश्चय थी निज रूप में, निज परिणति होय लीन।
श्रेणी गत ज्युं संचरे, सो जोगी परवीन ॥ ५० ॥
उपशम क्षपक कही युगल, श्रेणी प्रवचन मांहि।
तिण को काल स्वभाव वस, साधन हिवणा नांहि ॥ ५१ ॥

अर्थ—प्राणायाम का स्वरूप बहुत गहन और अपार है मुख्यतया इसके निश्चय और व्यवहार दो भेद हैं—४६

निश्चय प्राणायाम से गुणस्थानों[७] की श्रेणी को चढ़ते हुए निज (शुद्ध) परिणति में लीन होकर आत्मा अपने निज स्वरूप को प्रगट कर लेता है। ऐसे महापुरुष को ही वास्तव में योगी कहना चाहिए—५०

शास्त्रों में गुणस्थानों की श्रेणियां दो प्रकार की कही हैं। कर्मों को क्षय करते हुए श्रेणी चढ़ने को क्षपक श्रेणी कहते हैं। इस क्षपक श्रेणी को करते हुए जीव अपने शुद्ध स्वरूप को प्रगट करके सब प्रकार के कर्म बन्धनों से छूट कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। तथा कर्मों को शांत करते (दबाते) हुए श्रेणी चढ़ने

७—गुणस्थान—आत्म-विकास अथवा चरित्र विकास की समस्त अवस्थाओं को जैन कर्मशास्त्र में चौदह भागों में विभाजित किया गया है जो चौदह गुणस्थान के नाम से प्रसिद्ध है। ये जैन चारित्र की चौदह सीढ़ियां हैं। यहां पर इनके नाम मात्र का उल्लेख कर दिया जाता है विस्तार से जानने के इच्छुक अन्य जैन ग्रन्थों से जान लेवें।

को उपशम श्रेणी कहते हैं। इन क्षपक और उपशम श्रेणियों का काल दोष के प्रभाव से यहां इस समय साधन नहीं हो सकता—५१

व्यवहार प्राणायाम

(दोहा)—अह निश अभ्यास ध्यान थी, मन थिरता जो होय।
तो अनुभव लव आज फुनि, पावे विरला कोय ॥ ५२ ॥
निज अनुभव लवलेश थी, कठिन कर्म होय नाश।
अल्प भवे भवि ते लहे, अविचल-पुर को वास ॥ ५३ ॥

अर्थ—रात दिन ध्यान के अभ्यास से यदि मन की स्थिरता हो जाय तो आज भी किंचित अनुभव की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु यह लवलेश अनुभव की प्राप्ति भी कोई विरला ही पा सकता है—५२

इस भव में यदि योगाभ्यास से लवलेश अनुभव की प्राप्ति भी हो जाय तो कठिन कर्मों का नाश हो जाता है जिससे भव्य जीव थोड़े ही भवों में सब प्रकार के कर्मों का नाश कर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है—५३

(दोहा)—व्यवहारे ये ध्यान को, भेद नवि कहेवाय।
भिन्न-भिन्न कहता थकां, ग्रंथ अधिक हो जाय ॥ ५४ ॥
नाम मात्र अब कहत हूं, याको किंचित भाव।
अविक भवि तुम जाणजो, गुरु गम तास लखाव ॥ ५५ ॥

अर्थ—व्यवहार ध्यान (प्राणायाम) के अनेक भेद हैं। इनका भिन्न-भिन्न वर्णन करने से ग्रंथ बहुत बड़ा हो जाएगा, इस लिए उन भेदों का विस्तृत वर्णन नहीं करते—५४

अब मैं इसका नाम मात्र (किंचित) स्वरूप कहता हूं। अधिक विस्तार से जानने की इच्छा वालों को योगी गुरु से जान लेना चाहिए—५५

गुण स्थान १४ हैं—(२) मिथ्यात्व, (२) सास्वादन, (३) मिश्र, (४) सम्यग्दर्शन, (५) देश विरति, (६) प्रमत्त श्रमणत्व, (७) अप्रमत्त श्रमणत्व, (८) अपूर्वकरण, (९) अनिवृत्ति बादर, (१०) सूक्ष्म संप्राय, (११) उपशांत मोह, (१२) क्षीण मोह, (१३) सयोगी केवली, (१४) अयोगी केवली।

अष्टांग योग तथा प्राणायाम के भेद

(दोहा)—अष्ट भेद हैं योग के, पंचम प्राणायाम।
ताके सप्त प्रकार हैं, सकल सिद्धि के धाम॥ ५६॥
रेचक पूरक तीसरो, कुम्भक भेद पिछान।
शांतिक समता एकता, लीन भाव चित्त आन॥ ५७॥

अर्थ—पातंजल की दृष्टि से यम[८], नियम[९], आसन[१०], प्रत्याहार, प्राणायाम धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ भेद योग के हैं। तथा इस हठ योग के आठ अंगों में से प्राणायाम पांचवां भेद है। इस प्राणायाम के सात भेद हैं जो कि सकल प्रकार की सिद्धियों को देने वाले हैं—५६

रेचक, पूरक, कुम्भक, शांति, समता, एकता, लीनभाव (प्राणायाम के) इन सात भेदों का स्वरूप समझ कर मन को इनमें लगा देना चाहिए—५७

प्राणायाम के सात भेदों का स्वरूप

(दोहा)—पूरक पवन गहंत सुधी, कुम्भक थिरता तास।
रेचक बाहिर संचरे, शांतिक ज्योति प्रकास॥ ५८॥
समता ध्येय स्वरूप में, तिहां सूक्ष्म उपयोग।
गहे एकता गुण विषय, लीन भाव निज योग॥ ५९॥

८—यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, इन पांचों की यम संज्ञा है।

९—योग का दूसरा अंग नियम है—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम बतलाये हैं।

१०—आसन—योग का तीसरा अंग आसन है। पातंजल योग शास्त्र में स्थिरता तथा सुख देने वाले बैठने के प्रकार विशेष को आसन कहा है। योग-मार्ग में प्रवृत्त होने वाले साधक को ध्यान के लिए आसन सिद्धि की नितान्त आवश्यकता है। आसन अनेक प्रकार के हैं उनमें से चौरासी प्रधान हैं तथा उनमें से भी योग साधन के लिए दो आसन उपयोगी हैं इन दोनों का वर्णन आगे स्वयं ग्रंथकार करेंगे। वहां से जान लेना। आसन जय करने के बाद ध्यान सिद्धि के लिए प्राणायाम आवश्यक है।

पद्य न० ५७ में प्राणायाम के सात भेदों के नाम कह आए हैं पातंजली आदि योगाचार्यों ने मोक्ष साधन के लिए प्राणायाम को उपयोगी बतलाया है पर वास्तव में प्राणायाम मोक्ष साधन रूप ध्यान में उपयोगी नहीं है इस बात की पुष्टि इस ग्रन्थ के कर्त्ता भी आगे करेंगे। तो भी शरीर निरोगता तथा काल-ज्ञानादि में उपयोगी है। इसलिए यहां प्राणायाम का स्वरूप कहते हैं।

आसन जय करने के बाद ध्यान सिद्धि के लिए पांतजली ने प्राणायाम का आश्रय लिया है क्योंकि प्राणायाम करने के बिना मन तथा पवन को जय नहीं किया जा सकता।

प्रश्न—प्राणायाम से पवन का जय तो हो सकता है पर मन का जय कैसे हो सकता है?

उत्तर—मन जिस स्थान में है वहां पवन है तथा जहां पवन है वहां मन है। इसलिए समान क्रिया वाले मन और पवन दूध और पानी के समान इकट्ठे मिले हुए रहते हैं।

अर्थात – मन तथा पवन की क्रिया और स्थान एक सरीखा है। शरीर के कोई भी भाग पर मन को रोकेंगे तो वहां अवश्य पवन का भी खटक-खटक शब्द मालूम होगा। मन को किसी भी भाग पर रोकना अर्थात उपयोग रखकर उस समय उसी भाग पर देखते रहना ऐसा करने से दूसरे किसी भी विचार सम्बन्धी मन की क्रिया मन्द पड़ेगी और जिस जगह मन को रोका गया है वहां उपयोग की जागृति होने से अन्य विचार नही आते पर उपयोग की जागृति तक वहां ही मन रुका रहेगा और पवन भी वहां ही खटक-खटक शब्द करता हुआ अथवा दूसरे प्रकार से भी वहीं है ऐसा अनुभव होगा।

प्राणायाम का लक्षण—श्वास, प्रश्वास की गति, उसका आयाम विच्छेद अवरोध करना प्राणायाम है। बाहर की वायु को भीतर लेना श्वास है और भीतर के वायु को बाहर निकालना प्रश्वास (उच्छवास) कहलाता है।

प्राणायाम के सात भेदों की व्याख्या

अर्थ—१—पूरक—शरीर रूपी कोठे में अथवा कुम्भ (घड़े) में नथनों द्वारा खैंच लिया हुआ बाहर के वायु रूपी पानी को भरना। अर्थात् शरीर में नथनों द्वारा वायु का भरना "पूरक" कहलाता है। छाती, फेफड़े, पेट आदि भागों को

श्वास द्वार से खैंची हुई हवा से पूर (भर) देना।

२—रेचक—श्वास द्वार से पूरे हुए वायु को प्रश्वास द्वारा बाहर निकालना रेचक कहलाता है।

३—कुम्भक—जिस प्रकार पानी से भरा हुआ घड़ा शांत और स्थिर होता है उसी प्रकार शरीर में वायु भर रखने से वह शांत और निश्चल होता है तथा शरीर में सब प्राण वायु स्थिर हो जाती है। इस प्रकार पानी से भरे हुए कुम्भ (घड़े) की उपमा से इस प्राणायाम को कुम्भक कहते हैं। इस कुम्भक के भी आठ भेद हैं।

४—शांतिक—ज्योति का प्रकाश करना—५८

५—समता—ध्येय स्वरूप में सूक्ष्म उपयोग।

६—एकता—आत्मा और गुणों में एकता

७—लीन भाव :—आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीनता—५९

प्राणायाम का फल

(१) पूरक प्राणायाम से शरीर को पुष्टि मिलती है। तथा रोगों की शान्ति होती है।

(२) रेचक प्राणायाम से पेट की व्याधि तथा कफ का नाश होता है।

(३) कुम्भक प्राणायाम से हृदय कमल तत्काल विकस्वर होता है, अन्दर की गांठ भेदी जाती है, शरीर में वल की वृद्धि होती है तथा वायु स्थिर रह सकती है।

(४) शांत प्राणायाम से वात, पित्त और कफ अथवा त्रिदोष (सन्निपात) की शान्ति होती है तथा उत्तर एवं अधर प्राणायाम से कुम्भक की स्थिरता होती है।

(दोहा) लीन दशा व्यवहार थी, होत समाधि रूप।
निहचे थी चेतन यह, होवे शिवपुर भूप॥ ६०॥

अर्थ—लीन दशा व्यवहार से समाधि रूप होती है और निश्चय से यह चेतन (आत्मा) मुक्त हो जाता है—६०

(दोहा) स्वासा कुं अति थिर करे, ताणे नहीं लगार।
मूलबन्ध[११] दृढ़ लायके, करे बीज संचार॥ ६१॥

११. मूलबन्ध का स्वरूप परिशिष्ट में देखें।

अर्थ— श्वास को बिल्कुल न खेंचे, उसे अति स्थिर करके मूलबन्ध को दृढ़ कर बीज का संचार करे—६१

शरीर में वायु के भेद तथा इसके बीज

(दोहा) वायु पांच शरीर में, प्राण समान अपान।
उदान वायु चौथो कह्यो, पंचम अनिल अव्यान ॥ ६२ ॥
प्राण हिये फुनि सर्वगत तन में रहत समान।
आधार चक्र गति जानिये, तीजो वायु अपान ॥ ६३ ॥
उदान वासह कंठ में, संधि गतिए अव्यान।
पंच वायु के बीज फुन, पंच हिये इम आन॥ ६४ ॥
ऐं पैं रौं ब्लौं क्लौं सुधी, पांच बीज परधान।
इनके गर्भित भेद को, कहत न आवे मान ॥ ६५ ॥

अर्थ—शरीर में वायु पांच प्रकार की है। प्राण, समान, अपान, उदान तथा अव्यान—६२

१—प्राण :—श्वास द्वारा बाहर का खैंचा हुआ वायु हृदय में रहता है, लहू में सब प्रकार की चेष्टा कराने वाला शरीर में लघुता देने वाला—प्राण वायु कहलाता है। यह वायु मुख, नथने, नाभि और हृदय में रहता है। शब्द का उच्चार, श्वास, उच्छ्वास और खांसी आदि का कारण रूप है।

२—समान :—सारी नाभि में रहता है और सारे शरीर में व्यापक रूप से अग्नि के साथ बहत्तर हजार नाड़ियों के छिद्रों में संचरण करता है। खाये और पीये हुए रसों को अच्छी तरह से चलाकर शरीर को पुष्ट बनाता है तथा सब रसों को नाड़ियों में फैला देने वाला वायु समान कहलाता है।

३—अपान :—कंठ की पिछली नाड़ी, पीठ, गुदा, लिंग, कटि, जंघा, पेट, दो वृषण, साथल और घुटनों में जो रहा हुआ वायु है वह अपान वायु कहलाता है। मल, मूत्र तथा वीर्य को बाहर निकालना इसका काम है—६३

४—उदान :—दो हाथ, दो पग तथा अंगों के जोड़ों में रहने वाला वायु उदान कहलाता है। शरीर को नमाना, मृत्यु करना, शरीर को ऊंचा करना ये तीन इसके मुख्य कर्त्तव्य हैं।

५—अव्यान :—जोड़ों में, चमड़ी के सब भागों में, आंख, कण्ठ, घण्टी, कमर तथा नाक में रहने वाला वायु अव्यान अथवा व्यान कहलाता है। प्राण, अपान को धारण करना, उनका कुम्भक (रोकना) करना, त्याग और ग्रहण (आगम) करना, योग में कहे हुए नौली वगैरह कर्म करना—ये सब इस वायु से होते हैं तथा व्यापक रूप से सारे शरीर में रुधिर आदि का संचार करने वाला तथा स्पर्शेन्द्रिय का सहायक है।

इन पांचों वायु के बीज क्रमशः पांच प्रकार के हैं जो कि निम्नलिखित हैं—६४

इन वायु को जय करने के लिए पूरक, कुंभक और रेचक करते समय प्राणादि वायु का ऐं आदि बीजों का ध्यान करना चाहिए।

ऐं, पैं, रौं, ब्लौं, क्लौं ये पांच बीज प्रधान हैं और इनमें गर्भित भेदों की गिनती करना अशक्य हैं अर्थात् बहुत अधिक भेद हैं—६५

अनहद ध्वनी[१२]

(दोहा) पंच बीज संचार थी, अनहद धुन जो होय।
निर्गम भेद धुनी तणों जोगीश्वर लहे कोय॥ ६६॥
वरण मात्र इन बीज के, कमल कमल थित जान।
भिन्न-भिन्न गुण तेहनो, शास्त्र थकी मन आन॥ ६७॥

१२—योगाभ्यास में मन का लय करने के लिए दस प्रकार के नाद शनैः-शनैः खुलते हैं सो दस प्रकार के नादों के नाम इस प्रकार हैं—१. चिन्न, २. चिन चिन्न, ३. छोटी घंटी जैसा नाद, ४. शंख जैसा नाद, ५. वीणा के गर्जन जैसा नाद, ६. ताल के जैसा नाद, ७. मुरली जैसा नाद, ८. पखावज जैसा नाद, ९. नफीरी जैसा नाद, १०. सिंह गर्जन जैसा नाद। इन दस नादों में से नव नादों को सुनते-सुनते जब दसवां नाद सुनाई देने लगे तब नव-नादों को छोड़कर दसवें को ही सुनते रहने का अभ्यास बढ़ावें। इसी नाद को अनहद नाद कहते हैं। इस नाद की पक्व अवस्था में प्राण-वायु और मन दोनों ही लय हो जायेंगे। इसलिए चतुर साधकों को चाहिए कि योगानुभवी सद्गुरु की शरण लेकर इस नाद को सुननेका अभ्यास करें।

सकल सिद्धि उनमें बसे, सर्व लब्धि इन मांहि।
केतिक आज हुं संपजे, केतिक तो अब नांहि ॥ ६८ ॥

अर्थ :—इन पांचों बीजों के संचार से अनहद की जो ध्वनी होती है उसके निर्गम भेद को कोई विरला योगी ही जानता है—६६

इन बीजों के वर्णमात्र कमल-कमल स्थित जानना चाहिए। इन सबके भिन्न-भिन्न गुण शास्त्रों से जान लेना चाहिए—६७

सब प्रकार की सिद्धियां[13] तथा सर्व प्रकार की लब्धियां[14] इनमें वास करती हैं। जिनमें से कुछ तो आजकल भी प्राप्त हो सकती हैं तथा कुछ आजकल

१३—सिद्धियां आठ हैं :—

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, वशिता, प्राकाम्य, इशिता, प्राप्ति।

(१) अणिमा—यह सिद्धि प्राप्त होने पर अपने आपको जितना छोटा चाहे बना सकता है, अदृश्य भी हो सकता है। ऐसी शक्ति को अणिमा सिद्धि कहते हैं।

(२) महिमा—जितना बड़ा होना चाहे उतना शरीर बढ़ा सकता है। ऐसी शक्ति को महिमा कहते हैं।

(३) लघिमा—फूल के समान हल्का होने की शक्ति।

(४) गरिमा—जितना भारी होना चाहे उतना भारी होने की शक्ति।

(५) वशिता—जिसे वश करना चाहे उसे वश करने की शक्ति।

(६) प्राकाम्य—ऐसी शक्ति जिससे जगत में जो कार्य करना चाहे उसमें सफल हो।

(७) इशिता—सबको अपनी आज्ञा में चलाने की शक्ति।

(८) प्राप्ति—जैसा चाहे वैसा रूप परिवर्तन करने की शक्ति।

१४—लब्धियां २८ हैं :—

(१) आमोषधि, (२) विप्रोषधि, (३) खेलौषधि, (४) जलौषधि, (५) सर्वोषधि, (६) संभिन्न श्रोता, (७) अवधि, (८) मनः पर्याय, (९) विपुलमति, (१०) चारण लब्धि, (११) आशिविष, (१२) केवल लब्धि, (१३) गणधर लब्धि, (१४) पूर्वधर लब्धि, (१५) अरिहंत लब्धि, (१६) चक्रवर्ति लब्धि, (१७) बलदेव लब्धि, (१८) वासुदेव लब्धि, (१९) अमृतश्राव, (२०) कोष्ठ, (२१) पादानुसारी, (२२) बीज वृद्धि (२३) तेजोलेश्या, (२४) आहारक, (२५) शीतलेश्या, (२६) वैक्रिय, (२७) अक्षीणमहानस, (२८) पुलाक लब्धि।

प्राप्त नहीं हो सकती हैं—६८

अजपा जाप योग

(दोहा) वरुण नाभी में संचरे, सोऽहं शब्द उद्योत।
अजपा जाप ते जानिये, अनुभव भाव उद्योत ॥ ६९ ॥
नाभी थी हिये संचरे, तिहां रकार प्रकाश।
मन थिरता तामे हुए, अशुभ संकल्प विनाश ॥ ७० ॥
सुरत डोर लावे गगन, तिरवेणी कर वास।
तिहां अनहद धुनि उपजे, स्थिर ज्योति परकास ॥ ७१ ॥

अर्थ—श्वास लेते समय वायु नाभी में जाता है तब सोऽहं[१५] शब्द प्रगट होता है इसे अजपा—जाप[१६] कहते हैं इससे अनुभव भाव का प्रकाश होता है—६९

जब वायु नाभी से हृदय में संचार करती है तब 'रं' कार शब्द प्रगट होता

१५—पूरक करते समय 'सो' का उच्चारण करना (पूरक करते समय स्वाभाविक ढंग से 'सो' शब्द का उच्चारण होता है) उसके बाद थोड़ा रुक जाना, फिर रेचक करते हुए 'अहम्' का उच्चारण करना (रेचक के समय श्वास निकलने से 'अहम्' शब्द का स्वाभाविक उच्चारण होता है) फिर थोड़ा रुक जाना। इसे अजपा-जाप कहते हैं। इसमें मन्त्र का उच्चारण करने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है केवल श्वास के पूरक और रेचक की गति पर ध्यान देंने की। जिससे स्वयं मालूम होगा कि "सोऽहं" मन्त्र का जाप स्वतः बिना उच्चारण किए ही हो रहा है अर्थात् पूरक में 'सो' और रेचक में 'अहम्' दोनों मिलाकर 'सोऽहं' का जप बिना जाप किए ही हो रहा है। यही अजपा-जाप योग है। इस जप से वृत्ति अन्तरात्मा पर रखनी चाहिए अर्थात् वही 'सो' (वह ईश्वर) और वही 'अहम्' (साधक का जीवात्मा) है; दोनों मिलकर "सोऽहं" हुआ है। इसमें पूरक और विशेषकर रेचक धीरे-धीरे करना चाहिए।

१६—अजपा जाप—किसी मन्त्र के दो भाग करके एक भाग को पूरक करते

है। इससे मन की स्थिरता होती है और अशुभ संकल्पों का नाश होता है—७०
सुरत की डोर को आकाश में लाकर त्रिवेणी[१७] में वास करावे, वहां पर

हुए अर्थात् श्वास के भीतर जाते समय जपना और पूरक पूरा हो जाने पर बहुत थोड़ी देर रुक जाना अर्थात् कुम्भक करना और फिर रेचक करते हुए अर्थात् श्वास को बाहर निकालते हुए मंत्र के दूसरे भाग का जप करना और रेचक पूरा हो जाने पर फिर बहुत थोड़ी देर रुक जाना। यह भी अजपा जाप है। अर्हम् का भी अजपा जाप होता है।

१७—लय योग के अंग तथा त्रिवेणी का स्वरूप :—

यम, नियम, स्थूल क्रिया, सूक्ष्म-क्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लय-क्रिया और समाधि ये लय योग के आठ अंग हैं। सूक्ष्म क्रिया के साथ-स्वरोदय साधन का, प्रत्याहार के साथ—नादानुसन्धान क्रिया का, और धारणा के साथ—षट्चक्र भेदन क्रिया का सम्बन्ध है।

पायु से दो अंगुल ऊपर और उपस्थ से दो अंगुल नीचे चतुरंगुल विस्तृत समस्त नाड़ियों का मूल स्वरूप पक्षी के अण्ड की तरह एक बंद विद्यमान् है जिसमें से बहत्तर हज़ार नाड़ियां निकलकर सारे शरीर में व्याप्त हुई हैं। इनमें से योग शास्त्र में तीन नाड़ियां मुख्य कही हैं, इंगला, पिंगला और सुषुम्ना। चंद्ररूपिणी इंगला मेरुदंड के वाम भाग में, सूर्य रूपिणी पिंगला मेरुदण्ड के दक्षिण भाग में, और चन्द्रसूर्यादि रूपिणी त्रिगुणमयी सुषुम्ना मध्य भाग में विराजमान रहती है। मूल से उथित इड़ा (इंगला) और पिंगला मेरुदण्ड के वाम और दक्षिण भाग में समस्त पद्मों को वेष्टित करते हुए आज्ञाचक्र पर्यन्त धनुषाकार से जाकर भ्रूमध्य के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र के मुख में संगता हो नासारन्ध्र में प्रवेश करती है। भ्रूमध्य के ऊपर जहां पर इड़ा और पिंगला मिलती हैं वहां पर मेरुमध्य स्थित सुषुम्ना भी जा मिलती है। इसलिए यह स्थान त्रिवेणी कहलाता है क्योंकि शास्त्र में इन तीनों नाड़ियों को गंगा, यमुना, सरस्वती कहा गया है। इस त्रिवेणी के योग बल से ही पातंजल योग में मोक्ष माना है, परन्तु जैन दर्शन में इसे मोक्ष नहीं माना।

अनहद ध्वनी उत्पन्न होती है और उससे स्थिर ज्योति के प्रकाश का अनुभव प्राप्त होता है—७१

समाधि

(चौपाई)—अनहद अधिष्टायक जो देव। थिर चित्त देख करे तसु सेव ॥
ऋद्धि अनेक प्रकार दिखावे। अद्भुत रूप दृष्ट तस आवे ॥७२॥
ऋद्धि देख नवि चित्त चलावे। ज्ञान समाधि ते नर पावे ॥
वेद भेद समाधि[१८] कहिये। गुरु गम लक्ष तेह नो लहिये ॥७३॥

अर्थ —अनहद के अधिष्टायक जो देव हैं वे ऐसे योगी को स्थिर चित्त देख

१८—समाधि :—ध्येय वस्तु के स्वरूप को प्राप्त हुआ मन जब अपने ध्यान स्वरूप का परित्याग करके और संकल्प विकल्प से रहित होकर केवल ध्येय वस्तु के स्वरूप में स्थित होता है तब उसकी उस अवस्था को योगी जन समाधि कहते हैं यह दो प्रकार की है सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात।

१—सम्प्रज्ञात समाधि—सविकल्प। जिसमें ज्ञाता और ज्ञानादि के विकल्प लय की अनपेक्षा हो और अद्वितीय ब्रह्म के आकार की आकारता हो, वह चित्तवृत्ति का अवस्थान। इसमें चित्त की वृत्ति को ब्रह्म में लय कर देना होता है और इसका कुछ विचार नहीं रहता कि ज्ञाता और ज्ञान में भेद है या नहीं। इसमें किसी न किसी एक अवलम्बन की आवश्यकता रहती है। इसमें प्रज्ञा के संस्कार भी रह जाते हैं। यह समाधि चित्त की एकाग्र अवस्था में होती है।

२—असम्प्रज्ञात समाधि—निर्विकल्प। बुद्धि का-वृत्ति का अद्वितीय ब्रह्म में उसी का आकार बनकर एक भाव से अवस्थान होना। इसमें ज्ञाता-ज्ञानादि के भेद की कोई अपेक्षा नहीं रहती। जैसे नमक जल में मिलकर जल रूप ही हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म में चित्तवृत्ति लीन हो जाने पर ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखलाई नहीं देता अर्थात् अपनी आत्मा का शुद्ध रूप में साक्षात्कार हो जाता है। इसमें कोई अवलम्बन नहीं रहता। सब वृत्तियां विलीन हो जाती है। यह चित्त की निरुद्धावस्था में होती है।

कर उसकी सेवा करने लगते हैं। अनेक प्रकार की ऋद्धियां दिखलाते हैं तथा उनके अद्भुत रूप उसे दिखाई देने लगते हैं—७२

ऐसी ऋद्धियों को देखकर जो योगी अपने चित्त को चलायमान नहीं करता वही योगी ज्ञान समाधि प्राप्त है। समाधि प्राप्त हो जाने पर वेद के भेद का वास्तविक अनुभव प्राप्त होता है। इसका लक्षण किसी परम योगीराज गुरु द्वारा जानकर उसके द्वारा बतलाये हुए विधि विधान से ही करना उचित है। क्योंकि योग विद्या के साधन के लिए इस विषय में निष्णात गुरु की परमावश्यकता हैं। गुरु के बिना अपने आप करने से लाभ के स्थान पर हानि होना सम्भव है—७३

शरीर में कुंडलिनी और बंकनाल का स्थान

(चौपाई) नाभी पास है कुंडलिनी[१९]। बंकनाल है तास पिछाड़ी ॥
दशम द्वार का मार्ग सोई। उलट वाट पावै नहीं कोई ॥ ७४ ॥

जैन शास्त्रों में समाधि को परा दृष्टि के नाम से कहा है, यथा—

समाधिनिष्टा तु परा तदासंग विवर्जिता।
सात्मीकृत प्रवृत्तिश्च तदुत्तीर्णाशयेति च ॥

अर्थ—आठवीं परा दृष्टि समाधिनिष्ट तथा उसके आसंग दोष से विवर्जित होती है तथा सात्मीभूत प्रवृत्तिवाली एवं उससे उत्तीर्ण आशय वाली होती है।

१९—कुंडलिनी क्या हैं? इसका संक्षेप से यहां वर्णन करते हैं। इड़ा और पिंगला दो नाड़ियों का वर्णन कर आये हैं। इन दो नाड़ियों के बीच में जिसका प्रवाह है वह है सुषुम्ना नाड़ी। इस सुषुम्ना नाड़ी के अन्तर्गत और भी नाड़ियां हैं, जिनमें एक चित्रिणी नाम की नाड़ी है। इस चित्रिणी नाड़ी में से होकर कुंडलिनी शक्ति का रास्ता है। इसका स्थान नाभी के पास है। योग शास्त्र में जो अनेक गूढ़ विषय हैं उन में से भी कुंडलिनी शक्ति गूढ़तम विषय है। योग शास्त्र के प्रथम सोपान से अन्तिम सोपान तक चढ़ जाने के पश्चात् ही इस शक्ति का अनुभूत ज्ञान प्राप्त होता है। इस कुंडलिनी को जाग्रत करने से ही योग सिद्धि की प्राप्ति होती है। इस कुंडलिनी को जाग्रत करने की विधि योग विद्या के पारगामी से जान लेना ही उचित है। इसका स्वरूप परिशिष्ट में भी दिया है। वहां जान लेवें।

अर्थ—नाभी के पास कुंडालनी है और बंकनाल इसके पीछे है वह ही दशम द्वार का मार्ग है। उल्टे मार्ग से इससे कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता—७४

मुद्रा, बन्ध और आसन

(चौपाई) मुद्रा पांच[२०] बन्ध त्रय[२१] जानो। आसन चौरासी[२२] पहचानो॥
तामे आसन युग परधान। मूलासन[२३] पद्मासन[२४] जान॥७५॥

२०—पांच मुद्राएं—खेचरी, भूचरी, चांचरी, अगोचरी, उनमनी।

२१—तीन बन्ध—उड्डियान, मूल बन्ध, जालंधर बन्ध। (देखें परिशिष्ट)

२२—चौरासी आसन—(१) सिद्धासन, (२) प्रसिद्ध सिद्धासन, (३) पद्मासन, (४) बद्ध पद्मासन, (५) उत्थित पद्मासन, (६) ऊर्ध्व पद्मासन, (७) सुप्त पद्मासन, (८) भद्रासन, (६) स्वस्तिकासन, (१०) योगासन, (११) प्राणासन, (१२) मुक्तासन, (१३) वज्रासन, (१४) चक्रासन, (१५) उत्कटासन इत्यादि-इत्यादि।

२३—मूलासन—दोनों ओर के जानु और जंघों के वीच में दोनों पाद तलों को रखकर स्थिर बैठने को मूलासन कहते हैं। इसका दूसरा नाम स्वस्तिकासन भी है। इस आसन में बायां पैर नीचे रखें और दाहिना पैर ऊपर।दोनों हाथ ऊपर नीचे पद्मासन के समान रखें।

२४—पद्मासन—पहले बांयी जांघ के ऊपर दाहिने पैर को रखें, फिर बायें पैर को दाहिनी जांघ पर रखें, दोनों पैरों के मध्य में ऊपरी नीचे रखें, तीर्थंकर की मूर्ति के समान आसन उस समय शरीर स्थिर रहना चाहिए और चित्त में किसी प्रकार का भी उद्वेग नहीं होना चाहिए। (Relaxation of body and mind)

आसन के अभ्यास से सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, राग-द्वेष आदि द्वन्द्व छूट जाते है।

"शरीर सुखमासनम्" (पातंजल योग सूत्र) अर्थात् "जो स्थिर और सुखदायी है वह आसन है।"

आसन शरीर को स्वस्थ, हल्का और योग साधना के लिए योग्य

पद्मासन में विराजमान

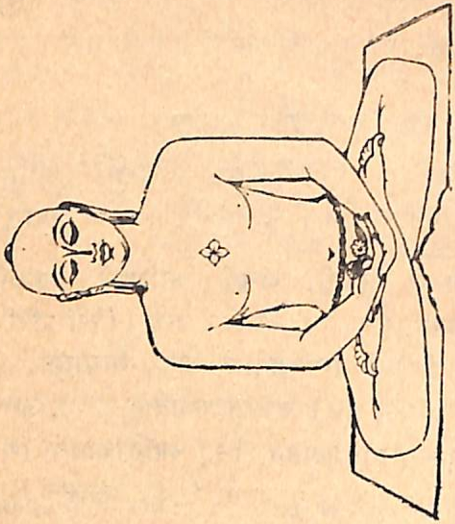

प्रभु महावीर (वर्धमान)

मूलासन में विराजमान

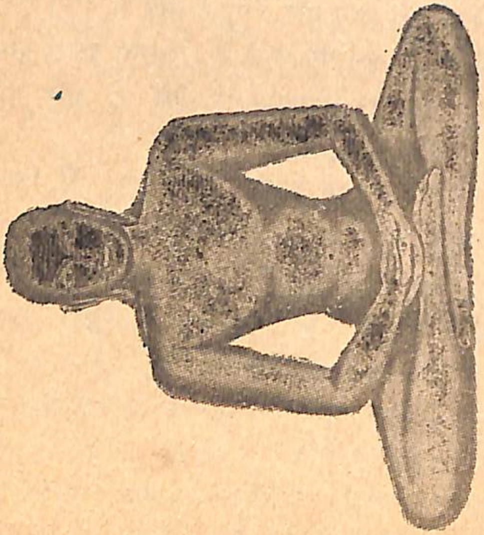

प्रभु ऋषभदेव (आदिनाथ)

अर्थ—पांच प्रकार की मुद्रा, तीन प्रकार के बन्ध, चौरासी प्रकार के आसनों को जान लेना चाहिए। इनमें से दो आसन मुख्य हैं—मूलासन, पद्मासन—७५

बनाने में सहायक है।

आसन वह है जिसमें सुखपूर्वक निश्चलता से अधिक से अधिक समय ध्यान में बैठा जा सके।

पातंजल योग शास्त्र में आसन सिद्धि का उपाय बतलाते हैं—"प्रयत्न-शैथिल्यानन्त्य समापत्तिभ्याम्" अर्थात् प्रयत्न शिथिलता तथा अनन्तता में चित्त की तद्रुपता द्वारा आसन सिद्ध होता है।

शरीर को प्रयत्न शून्य करना, शिथिल करना तथा अनन्तता में चित्त को तदाकार करने से चित्त निर्विषय होकर स्थिर हो जाता है यह देह और मन का शिथिलीकरण (Profound Relaxation) है। जिसमें देह और मन क्रिया रहित होता है।

आसन को सिद्धि से द्वन्द्वों का आघात नहीं लगता। शरीर को साधना के योग्य बनाना यह आसन का अंग है।

अलग-अलग साधनाओं के लिए शरीर और मन के विशेष प्रकार के सम्बन्ध के लिए जुदा-जुदा आसन आवश्यक हैं।

योगाभ्यास के समय साधक के शरीर में नयी-नयी क्रियाएं उत्पन्न होती हैं। जिससे मेरुदण्ड, छाती, गला, मस्तक आदि सुयोग्य प्रकार से रहें यह आसन का हेतु है।

प्राणायाम आदि करने वाले साधक को मेरुदण्ड अवश्य सीधा रखना चाहिए। नहीं तो हानि होगी।

आसन द्वारा नस-नस में रक्त का प्रवाह चालू होता है। सब इन्द्रियां और नाड़ियां जड़ता का त्याग कर चैतन्यमय बनती हैं।

कठोर ब्रह्मचर्य की साधना में जो असमर्थ हैं वे सिद्धासन न करें। सिद्धासन संसार विमुख साधकों के लिए सर्वश्रेष्ठ है।

शरीर स्वास्थ्य के लिए शीर्षासन लाभदायक है परन्तु ध्यान में

षट् कर्म

(चौपाई) अस्तव्यस्त वायु संचरे । कारण विशेष षट् कर्म[२५] करे ॥
नेती, धौती, नौली कही । भेद चतुर्थ त्राटक फुनि लही ॥ ७६ ॥

यह सहायक नहीं ।

इसलिये इस ग्रन्थ के कर्त्ता चिदानन्द जी ने ध्यान के लिए दो आसनों का ही वर्णन किया है ।

जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र जी योग शास्त्र में फरमाते हैं कि—

"जायते येन येनेह विहितेन् स्थिरं मनः ।
तत्तदेव विधातव्यमासनं ध्यान साधनम्" ॥

जिस-जिस आसन के करने से मन स्थिर हो, ध्यान के साधनभूत वह-वह आसन ही करना चाहिये । अमुक आसन ही करना चाहिये ऐसा कोई आग्रह नहीं है । सुख पूर्वक लम्बे समय तक चित्त समाधि में बैठा जा सके वह आसन करने योग्य है । इसलिए सब आसनों में अपने योग्य आसन करना चाहिए ।　　(आसनों के भेदों का स्वरूप परिशिष्ट में देखें ।)

२५—षट्कर्म—(१) नौलिकर्म—कन्धों को नवाये हुए अत्यन्त वेग के साथ जल भ्रमर के समान अपनी तुन्द को दक्षिण वाम भागों से भ्रमाने को नौली कर्म कहते हैं । (२) वस्तिकर्म—यह दो प्रकार का है—पवन वस्ति, जल वस्ति । नौली कर्म द्वारा उपान वायु को उपर खींच पुनः मयूरासन से त्यागने को पवन वस्तिकर्म कहते हैं । पवन वस्ति पूरी सध जाने पर जल वस्ति सुगम हो जाती है । (३) धौती कर्म-चार अंगुल चौड़े और पन्द्रह हाथ लम्बे महीन वस्त्र को गरम जल में भिगोकर गुरुपाष्ट मार्ग से धीरे-धीरे प्रतिदिन निगलने और निकालने की क्रिया को धौती कर्म कहते हैं । (४) नैती कर्म—जल को नाक द्वारा खेंचने को नैतीकर्म कहते हैं । (५) त्राटक कर्म—एकाग्र चित्त हुआ मनुष्य निश्चल दृष्टि से लघु पदार्थ को तब तक देखे जब तक अश्रु पड़ते न होवें । (६) कपाल कर्म-लोहार की भाथी के समान अत्यन्त शीघ्रता से क्रमशः रेचक पूरक प्राणायाम को शांति पूर्वक करना ।

वस्ती पंचम भेद पिछानो। छठा कपाल भाती मन आनो॥
किंचित आरम्भ लख इन मांहि। जैन धर्म में करिये नांहि॥ ७७॥

अर्थ—वायु का संचार अस्त-व्यस्त होता है कारण विशेष वश षट्कर्म करना चाहिए। षट् कर्मों के नाम ये हैं—नैती, धौती, नौली, त्राटक—७६

पांचवां वस्ति, छठा कपाल—ये षट्कर्म श्वास निश्वास (प्राणायाम) के साधन मात्र में सहायक हैं परन्तु इनसे आत्मा का कल्याण नहीं है इसलिए इनका किंचित मात्र लाभ देखकर जैन धर्म इनको आध्यात्मिक साधना के लिए महत्व नहीं देता—७७

(चौपाई) त्राटक नवली ये दोय भेद। करत मिटे सहु तन का खेद॥
रोग नवि होवे तन मांहि। आलस ऊंघ अधिक होय नांहि॥ ७८॥

अर्थ—त्राटक और नौळी इन दो भेदों की साधना करने से शरीर के क्लेश मिट जाते हैं। शरीर में किसी प्रकार का रोग नहीं आता। आलस्य और नींद भी बहुत अल्प हो जाते हैं—७८

जैनधर्मानुसार अष्ट योग दृष्टि

(चौपाई) दृष्टि अष्ट योग की कही। ध्यान करत ते अन्तर लही॥
कीजे यह सालम्बन ध्यान। निरालम्बता प्रगटन ज्ञान॥ ७९॥
मित्रा तारा दूजी जान। बला चतुर्थी दीप्ता मन आन॥
थिरा दृष्टि कान्ता फुनि लहिये। प्रभा परा अष्टम कहिये॥ ८०॥

अर्थ–जैन दर्शन में योग[२६] की आठ दृष्टियां कहीं हैं इनके भेदों को जानकर

२६—पहले जो हठ योग के आठ अंगों के विषय में पद्य नं० ५६-५७ में कहा है वे आत्म कल्याण में साधक न होने से जैन धर्म की दृष्टि में इनका कोई विशेष महत्व नहीं है। आत्मा को स्वकल्याण करने के लिए अष्ट योग दृष्टियों का जैनाचार्यों ने विस्तृत वर्णन किया है। जो इनका विस्तृत स्वरूप जानने के अभिलाषी हैं वे योगदृष्टिसमुच्चय, योगबिन्दु, योग शास्त्र आदि ग्रन्थों का अवलोकन करें। यहां पर संक्षेप से इन आठों दृष्टियों का स्वरूप लिखते हैं। अष्ट योग दृष्टि—

१—मित्रा दृष्टि—इस दृष्टि में मन्द दर्शन, इच्छादि यम, देव कार्य आदि में

ध्यान करना चाहिये। ध्यान के दो भेद हैं। (१) सालम्बन (२) निरालम्बन। पहले सालम्बन ध्यान करना चाहिये और उसके बाद निरालम्बन ध्यान द्वारा ज्ञान को प्रकाश में लाया जाता है—७९

मित्रा, तारा, बला, दीप्ता, स्थिरा, कांता, प्रभा, परा—योग की ये आठ दृष्टियां हैं— ८०

अखेद तथा अन्यत्र अद्वेष होता है अर्थात् इस दृष्टि में यम आदि के पालन में अखेद तथा अन्य प्रसंगों पर अद्वेष नाम का प्रथम गुण प्राप्त होता है। इस दृष्टि का मुख्य लक्षण सकल जगत के प्रति मित्र भाव, निर्वैर बुद्धि होने से इसका मित्रा नाम ठीक घटित होता है। इस दृष्टि से जो दर्शन (सत् श्रद्धा) वाला बोध होता है वह मन्द स्वल्प शक्ति वाला अग्नि समान होता है।

२—तारा दृष्टि—इसमें मित्रा दृष्टि से दर्शन (सत् श्रद्धा बोध) थोड़ा स्पष्ट होता है तथा वैसे प्रकार के नियम, हित प्रवृत्ति में अनुद्वेग तथा तत्त्व विषय सम्बन्धी जिज्ञासा होती है। अर्थात् योग का दूसरा अंग नियमों का पालन तथा दूसरे दोषों के त्याग रूप अनुद्वेग एवं एक दूसरे जिज्ञासा रूप गुण की उत्पत्ति होती है। कंडे की अग्नि के समान है।

३—बला दृष्टि—दर्शन (सत् श्रद्धा बोध) काष्ट अग्नि समान, योग का तीसरा अंग आसन, क्षेप नामक तीसरे आशय दोष का त्याग, शुश्रूषा नाम के तीसरे गुण की प्राप्ति होती है। इसमें सत् श्रद्धा प्रथम की दोनों दृष्टियों से अधिक बलवान दृढ़ होती है। तृण और कण्डे की अग्नि से अधिक प्रकाश वाली, अधिक स्थिति वाली, अधिक शक्ति वाली होती है।

४—दीप्ता दृष्टि—योग का चौथा अंग प्राणायाम इसमें होता है। उत्थान नामक चौथे आशय दोष का त्याग होता है। श्रवण नाम चौथा गुण प्रकट होता है, परन्तु दर्शन तो अब भी सूक्ष्म बोध बिना का होता है, दीप के प्रकाश तुल्य। पहले की तीनों दृष्टियों से अधिक स्थिरता आदि वाली होती है। इसका बोध दीपक के प्रकाश तुल्य निकटवर्ती पदार्थों का ही विषय करने में कार्यकारी होता है सूक्ष्म विषयों का बोध नहीं करता।

योग दृष्टि साधने वाले की योग्यता

(चौपाई) सघन अघन[२७] दिन रयणी कही। ताका अनुभव या में लही।।
निर उपाधि एकान्ते स्थान। तिहां होय यह आत्म ध्यान।। ८१ ।।

५—स्थिरा दृष्टि—यह दृष्टि दो प्रकार की है, निरतिचार-सातिचार। निरतिचार में जो दर्शन होता है वह नित्य, अप्रतिपाति होता है, जैसा है वैसा अवस्थित रहता है। सातिचार में जो दर्शन होता है वह अनित्य भी होता है—न्युनाधिक हुआ करता है। यह दर्शन प्रत्याहार से युक्त होता है तथा वन्दनादि क्रिया क्रम की अपेक्षा से अभ्रांत, निर्दोष-निरतिचार होता है इसलिए यह सूक्ष्म बोध सहित होता है। क्योंकि ग्रन्थि भेद से यहां, वैद्य संवेद्य पद की प्राप्ति होती है। इसका दर्शन रत्न की प्रभा के समान है। योग का पांचवा अंग प्रत्याहार होता है। भ्रांति नामक पांचवा चित्त दोष नष्ट होता है। बोध नामक पांचवां गुण प्रगट होता है।

६—कांता दृष्टि—नित्य दर्शनादि सब होते हैं तथा यह गुण सब को प्रीति उपजाने वाले होते हैं परन्तु द्वेष नहीं होता। परम धारणा-चित्त का देश बन्ध होता है तथा इस धारणा के कारण यहां अन्यमुह नहीं होती एवं नित्य सर्व काल सद् विचारात्मक तत्त्व विचारणा होती है, कि जो सम्यग्ज्ञान के फल के कारण हितोदयवती होती है।'

७—प्रभा दृष्टि—सूर्य प्रभा के समान बोध, सातवां योगांक ध्यान, सातवें रुग दोष का अभाव तथा सातवें तत्त्व प्रतिपत्ति गुण का सद्भाव होता हैं। ऐसी यह दृष्टि प्रायः ध्यान प्रिया होती है तथा विशेषकर समसंयुक्त तथा इससे सत्प्रवृत्ति पद लाने वाली होती है।

८—परा दृष्टि—यह समाधि निष्ठ तथा इसके आसंग दोष से विवर्जित होती है। सात्मीभूत प्रवृत्ति वाली, तथा इनके द्वारा उत्तीर्ण आशय वाली होती है।

२७—ओघ दृष्टि अर्थात् सामान्य दृष्टि-संसार प्रवाह में डूबे हुए ऐसे भवाभिनन्दी सामान्य कोटि के जीवों की दृष्टि को ओघ दृष्टि कहते हैं (Vision of a layman) तथा ओघ दृष्टि भी ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्म

अल्पाहार निद्रावश करे। हित स्नेह जग थी परिहरे॥
लोक लाज नवि करे लगार। एक प्रीत प्रभु थी चित्त धार॥ ८२॥
आशा एक मोक्ष की होय। दूजी दुविधा नवि चित्त कोय॥
ध्यान योग्य जानो ते जीव। जो भव दुःख से डरत सदीव॥ ८३॥
पर निन्दा मुख थी नवि करे। स्व निन्दा सुनी समता धरे॥
करे सहु विकथा[२८] परिहार। रोके कर्म आगमन द्वार॥ ८४॥
हरख शोक हिरदे नवि आवे। शत्रु मित्र बराबर जाने॥
पर आशा तजी रहे निराश। तेथी होय ध्यान अभ्यास॥ ८५॥

अर्थ—मेघ वाली या मेघ बिना की रात अथवा मेघ वाले या मेघ बिना के दिन आदि के भेद अनुभव के विचार से उपाधि रहित. एकान्त स्थान में

के भिन्न-भिन्न क्षयोपशम के कारण (न्यूनाधिकता के लिए) जुदा-जुदा प्रकार से विचित्र प्रकार की होती है। नीचे लिखे विवेचन से भली भांति पढ़ने से इस दृष्टि की विचित्रता स्पष्ट रूप से समझ में आ जायेगा।

(१) मेघाच्छन्न रात्रि में वस्तु का बहुत ही अस्पष्ट भास होता है। (२) इस से कुछ अधिक मेघ बिना की रात्रि में दिखलाई देगा। (३) इससे स्पष्ट मेघाच्छन्न दिन में दिखलाई देगा। (४) मेघ बिना के दिन में इससे भी बहुत स्पष्ट दिखलाई देगा। (५) देखने वाला जो भूतादि ग्रह से अथवा चित्त विभ्रम आदि ग्रह से ग्रहित हो उससे देखने में (६) तथा ऐसे ग्रह आदि रहित देखने वाले में स्पष्ट भेद पड़ता है। (७) देखने वाला बालक हो तो उसके देखने में। (८) तथा वयोवृद्ध व्यक्ति हो तो उसके देखने में भी विवेक में कम अधिक प्रमाण में अन्तर होता है। (९) आंख पर मोतिया उतर आने से परदा आ जाने के कारण देखने वाले से (१०) रोग रहित आंखों वाले के देखने में अवश्य अन्तर पड़ता है। इस प्रकार एक ही दृश्य में देखने की वस्तु में विचित्र उपाधि भेद के कारण भिन्न-भिन्न दृष्टि भेद होते हैं। इस दृष्टांतानुसार लौकिक पदार्थों को लौकिक दृष्टि से देखने के जो जो भेद हैं, वे-वे ओघ दृष्टि के प्रकार हैं।

२८—राजकथा, देश कथा, स्त्री कथा, भोजन कथा—ये चार बिकथाएं हैं।

यह आत्म ध्यान करना चाहिये—८१

अल्पाहार, अल्प निद्रा, संसार से वैराग्य भाव, लोक लाज का त्याग, तथा अपने चित्त को एकमात्र प्रभु की भक्ति में लगाने वाला—८२

एकमात्र मोक्ष की आशा वाला तथा अन्य सब प्रकार की दुविधा का त्यागी ऐसे जीव को ध्यान के योग्य जानना चाहिये। जो सदा संसार के दुःखों से डरने वाला है—८३

जो मुख से दूसरे की निन्दा न करे, अपनी निन्दा सुनकर सम परिणाम रखे, सब प्रकार की विकथा का त्याग करे, वही नर कर्मों के आने के मार्गों को रोक सकता है—८४

हर्ष-शोक को मन में न लाने वाला, शत्रु-मित्र पर सम दृष्टि रखने वाला, दूसरों की आशा छोड़कर सदा स्वालम्बी रहने वाला तथा संसार से वैराग्य भाव वाला, पर के सहारे से निरपेक्ष इत्यादि गुणों वाला मनुष्य ही इस ध्यान[२९] को

२९—**ध्यान का स्वरूप**—एक आलम्बन में, अन्तमहूर्त तक मन को स्थिर रखना, यह छद्मस्थ योगियों का ध्यान कहलाता है। वह धर्म-ध्यान और शुक्ल ध्यान दो प्रकार का है। और योग का निरोध रूप ध्यान अयोगियों (चौदहवें गुणस्थान वालों) को होता है।

एक महूर्त ध्यान में रहने के बाद ध्यान सम्बन्धी चिन्ता हो अथवा आलम्बन के भेद से दूसरा ध्यानान्तर हो (परन्तु एक महूर्त से अधिक एक ही आलम्बन में ध्याता अधिक नहीं रह सकता)।

ध्यान में वृद्धि करने के लिए—ध्यान भंग हो जाने पर उसे फिर ध्यानान्तर के साथ जोड़ने के लिए मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थता इन चार भावनाओं को आत्मा के साथ जोड़ें। (इन भावनाओं का स्वरूप देखें परिशिष्ट में)।

ध्यान करने का स्थान—ध्यान की सिद्धि के लिए तीर्थंकरों की जन्म, दीक्षा, केवल और निर्वाण भूमियों में जाना चाहिये। इसके अभाव में ऐसे स्थान पर ध्यान करें, जो स्त्री, पशु, नपुंसकादि रहित कोई भी उत्तम एकांत स्थान हो।

आराधन करने का पात्र है—८५

व्यवहार ध्यान का प्रभाव

(चौपाई) ध्यान अभ्यास थी जो नर होय। ताकुं दुःख उपजे नवि कोय।
इन्द्रादिक पूजे तस पाय। ऋद्धि, सिद्धि प्रगटे घट आय॥ ८६॥
पुष्प-माल सम विषधर तास। मृगपति मृगसम होवे जास॥
पावक होय पानी तत्काल। सुरभि सुत सदृश्य जस व्याल॥ ८७॥
सायर गोपद नी परे होय। अटवी विकट नगर सम जोय॥
रिपु लहे मित्राई भाव। शस्त्र तणो नवि लागे घाव॥ ८८॥
कमलपत्र करवाल बखानों। हलाहल अमृत करि जानो॥
दुष्ट जीव आवे नहीं पास। जो आवे तो लहे सुवास॥ ८९॥
जो विवहार ध्यान इम ध्यावे। इन्द्रादिक पदवी ते पावे॥

अर्थ—जो मनुष्य इस प्रकार से ध्यान का अभ्यास करता है उसे किसी भी प्रकार का दुःख नहीं होता। इन्द्रादिक उसके चरणों की सेवा करते हैं उसे सब प्रकार की ऋद्धियों और सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है—८६

ऐसे व्यक्ति को सर्प पुष्पमाला समान, सिंह हिरण के समान हो जाते हैं। अग्नि पानी में परिवर्तित हो जाती है और व्याघ्र गाय के बछड़े के समान हो जाता है—८७

समुद्र चोबचे के समान, विकट अटवी नगर समान, शत्रु मित्र समान हो

ध्यान कैसे करना?—बहुत समय तक सुविधा (आसानी) से बैठ सकें ऐसे आसन से बैठ कर पवन बाहर न जावे इस प्रकार दृढ़ता से दोनों होंठ बन्द करके नासिका के अग्रभाग पर दोनों दृष्टि स्थापन करें। ऊपर के दातों के साथ नीचे के दांतों का स्पर्श न हो इस प्रकार दांतों को रख कर (दांतों के साथ दांत लगने से मन स्थिर नहीं होता) रजो, तमो गुण रहित, कुटी के विक्षेपों के बिना प्रसन्न मुख से पूर्व दिशा सन्मुख या उत्तर दिशा सन्मुख बैठ कर (अथवा जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा के सन्मुख बैठकर) अप्रमत्त (प्रमाद रहित) तथा शरीर को सरल (सीधे) या मेरुदण्ड को सीधे रख कर ध्यान करना चाहिए।

जाते हैं। तथा उसे शस्त्र का घाव भी नहीं लगता—८८

तलवार कमल-पत्र समान, विष अमृत समान हो जाते हैं। दुष्ट तथा हिंसक प्राणी पास में फटकने नहीं पाते। यदि दुष्ट जीव आ भी जावें तो मित्र सम बन जाते हैं—८९

यदि योगाभ्यास में व्यवहार ध्यान को ध्यावें तो उपर्युक्त सब प्रकार की योग्यताएं प्राप्त होती हैं तथा चक्रवर्ती, इन्द्रादि पदवी को भी प्राप्त कर सकता है—

निश्चय ध्यान का प्रभाव

(चौपाई) निहचे ध्यान लहे जब कोय। ताकुं अवश्य सिद्ध-पद होय ॥ ९० ॥
सुख अनन्त विलसे तिहुं काल। तोड़ी अष्ट कर्म[३०] की जाल ॥
ऐसा ध्यान धरी नितमेव। चिदानन्द लही गुरुगम भेव ॥ ९१ ॥

अर्थ—जब कोई निश्चय ध्यान करता है तो उसे अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है - ९०

निश्चय ध्यान से अष्ट कर्मों[३०] का नाश करके अनन्त सुख को भूत-भविष्य वर्तमान सदैव तीनों काल अर्थात् अनन्त काल तक प्राप्त करता रहता है। ऐसा ध्यान सदा करते रहने से अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इस ध्यान के स्वरूप को सद्गुरु के पास से जानना चाहिये—९१

ध्यान के भेद

(चौपाई) ध्यान चार भगवन्त बतावे। ते मेरे मन अधिके भावे ॥
रूपस्थ पदस्थ पिंडस्थ कहिजे। रूपातीत साथ शिव लीजे ॥ ९२ ॥
रहत विकार स्वरूप निहारी। ताकी संगत मनसा धारी ॥
निज गुण अंश लहे जब कोई। प्रथम भेद तिन अवसर होई ॥ ९३ ॥

अर्थ—श्री वीतराग जिनेश्वर प्रभु ने ध्यान चार प्रकार का बतलाया है

---

३० – आठ कर्मों के नाम ये हैं—

(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अन्तराय। इन आठ कर्मों का क्षय करने से जीवात्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(१) रूपस्थ, (२) पदस्थ, (३) पिंडस्थ, (४) रूपातीत इन चार ध्यानों के करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए ये ध्यान मेरे मन को (चिदानन्द को) अधिक रुचि करं हैं—९२

रूपस्थ ध्यान

१—अपने स्वरूप को विकार रहित जानकर आत्म ध्यान में लीन होकर जब कोई अपनी आत्मा के निज गुण को अंश रूप से प्राप्त करता है तो उस समय वह ध्यान के प्रथम भेद रूपस्थ को प्राप्त करता है—९३

पदस्थ ध्यान

(चौपाई) तीर्थंकर पदवी परधान। गुण अनन्त नो जाणो थान॥
गुण विचार निज गुण जे लहे। ध्यान पदस्थ सुगुरु इम कहे॥ ९४॥

अर्थ—सद्गुरु ऐसा कहते हैं कि तीर्थंकर पदवी जो सब पदवियों में प्रधान है और अनन्त गुणों का स्थान है ऐसे तीर्थंकर प्रभु के गुणों का ध्यान कर जो ध्याता उन गुणों को निज आत्मा में ग्रहण करता है उसे पदस्थ ध्यान कहते हैं—९४

पिंडस्थ ध्यान

(चौपाई) भेद ज्ञान अन्तरगत धारे। स्व पर स्थिति भिन्न विचारे॥
सकती विचारी शांतता पावे। ते पिंडस्थ ध्यान कहलावे॥ ९५॥

अर्थ— देह पिंड में स्थित आत्मा स्व (आत्मा) और पर (देह) की स्थिति का भिन्न विचार करते हुए इस भेद ज्ञान को अपने अन्तर्गत धारण कर अपने शुद्ध स्वरूप का विचार करते हुए शांति धारण करे। इसे पिंडस्थ ध्यान कहते हैं—९५

रूपातीत ध्यान

(चौपाई) रूप रेख जामे नवि कोई। अष्ट गुणां[३१] करी शिव पद सोई॥
ताकुं ध्यावत तिहां समावे। रूपातीत ध्यान सो पावे॥ ९६॥

३१—सिद्धात्मा के आठ गुण—(१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त चारित्र, (४) अनन्त सुख, (५) अक्षय स्थिति, (६) अरूपी, (७) अगुरुलघु, (८) अव्याबाध स्थिति।

अर्थ—जिनमें किसी भी प्रकार का न रूप है न पौदगलिक आकार है तथा आठ गुणों सहित जो मोक्ष पद को प्राप्त कर चुके हैं ऐसे सिद्धों के गुणों का ध्यान करते हुए उन्हीं में जो तल्लीन हो जाये, वह रूपातीत ध्यान को पाता है—९६

पिंडस्थ ध्यान यानी प्राणायाम करने वाले की मानसिक दशा

(चौपाई) प्राणायाम ध्यान जो कहिये। ते पिंडस्थ ध्यान भवि लहिये॥
मन अरु पवन समागम जानो। पवन साध मन निज घर आनो॥ ९७
अह निस अधिक प्रेम लगावे। जोगानल घट मांहि जगावे॥
अल्प आहार आसन दृढ़ करे। नयन थकी निद्रा परिहरे॥ ९८॥
काया जीव भिन्न करि जाने। कनक उपल नी परे पहिछाने॥
भेद दृष्टि राखे घट मांहि। मन शंका आने कछु नांहि॥ ९९॥
कारज रूप कथे मुख वाणी। अधिक नांहि बोले हित जानी॥
स्वप्न रूप जाने संसार। तन धन जोबन लखे असार॥ १००॥

अर्थ—प्राणायाम ध्यान पिंडस्थ ध्यान को कहते हैं। जो योगी प्राणायाम का साधन करना चाहता है वह मन और पवन का समागम जानकर पवन को साध कर मन को आत्मा में लीन कर दे—९७

रात दिन मन को एकाग्र करने के लिए अधिक लगन से योगानल को अपने घट में जाग्रत करे। अल्पाहार करे, आसन दृढ़ रखे, आंखों से नींद को दूर कर दे—९८

काया और जीव को सोने और पत्थर के समान भिन्न समझ कर शरीर और जीव में भेद दृष्टि रखे, मन को शंका रहित बना दे—९९

मुख से अधिक न बोले। आवश्यकता अनुसार ही बोलने में अपना हित समझे। तन, धन और जोबन को असार समझ कर इस संसार को असार जाने—१००

स्वरोदय सिद्धि की विधि

(चौपाई) श्री जिन वाणी हिये दृढ़ राखे। शुद्ध ध्यान अनुभव रस चाखे॥
विरला सो जोगी जग मांहि। ताकुं रोग सोग भय नांहि॥ १०१॥

तेज कान्ति तन में अति वाधे। जो निश्चल चित्त ध्यान आराधे ॥
अल्पाहार तन होय निरोग। दिन-दिन वाधे अधिकोपयोग ॥१०२ ॥
नासा अग्रभाग दृग धरी। अथवा दोऊ संपुट करि ॥
हिये कमल नवपद[३२] जो ध्यावे। ताकुं सहज ध्यान गति आवे ॥१०३ ॥
माया बीज प्रणव धरि आद। वरण बीज गुण जाने नाद ॥
चढ़ता वरण करे थिर स्वास। लख धुर नाद तणो परकास ॥ १०४ ॥
प्राणायाम ध्यान विस्तार। कहतां सुरगुरु न लहे पार ॥
ताते नाम मात्र ए कह्या। गुरुमुख जान अधिक जे रह्या ॥ १०५ ॥
प्राणायाम भूमि दस जानो। प्रथम स्वरोदय तिहा पिछानो ॥
स्वर प्रकाश प्रथम जो जाने। पंच-तत्त्व फुनि तिहा पिछानो ॥ १०६ ॥
कहुं अधिक अब तास विचार। सुनो अधिक चित्त थिरता धार ॥
स्वर में तत्त्व लखे जब कोई। ताकुं सिद्ध स्वरोदय होई ॥ १०७ ॥

अर्थ—श्री जिनेश्वर प्रभु की वाणी को अपने हृदय में श्रद्धा पूर्वक धारण करके जो शुद्ध ध्यान के अनुभव रस का आस्वादन करता है सो जोगी इस जगत में कोई विरला ही होता है। ऐसे योगी के रोग, शोक और भय सर्वथा नष्ट हो जाते हैं—१०१

जो शांत और स्थिर चित्त से ध्यान का आराधन करते हैं उनके शरीर में दिन प्रतिदिन तेज और कान्ति की अति वृद्धि होती है। अल्पाहार सेवन से निरोग होता है तथा ध्यान के प्रभाव से दिन प्रतिदिन आत्मा में ज्ञान और दर्शन उपयोग की अधिकाधिक वृद्धि होती जाती है—१०२

जो मनुष्य नासा के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर अथवा दोनों आंखें बन्द कर के (मूलासन अथवा पद्मासन में) बैठकर हृदय में नवपद का एकाग्र चित्त से ध्यान करता है उसे सहज ही ध्यान की सिद्धि प्राप्त हो जाती हैं—१०३

माया बीज (ह्रीं) प्रणव (ॐ) को आदि में रखकर वर्ण, बीज, गुण, तथा नाद का ज्ञान करे। चढ़ते वर्ण में श्वास को स्थिर करे और नाद के प्रकाश को देखे—१०४

३२—हृदय में अष्टदल कमल की स्थापना कर मध्य में ॐ ह्रीं पूर्वक अरिहंत पद की स्थापना करे। अष्टकमलदलों में चारों दिशाओं में क्रमश: ॐ ह्रीं पूर्वक सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पद को स्थापन करे। चारो विदिशाओं में ॐ ह्रीं पूर्वक दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप पद की स्थापना करे। सब पदों की स्थापना ॐ ह्रीं पूर्वक करके इन नवपदों का एकाग्र चित्त से ध्यान करे। नवपदमय सिद्धचक्र के दो यहां दिये गये चित्रों से देखें।

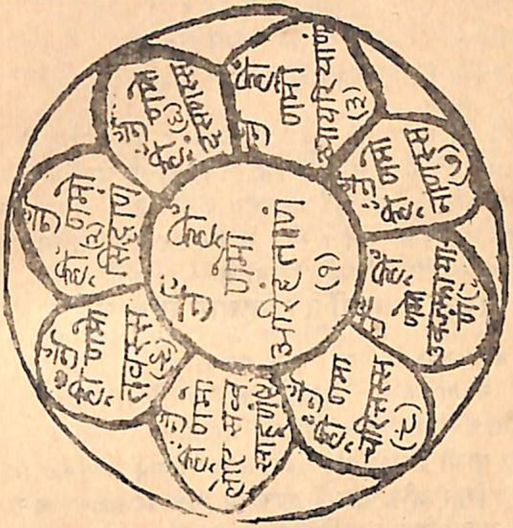

श्री नवपद सिद्धचक्र

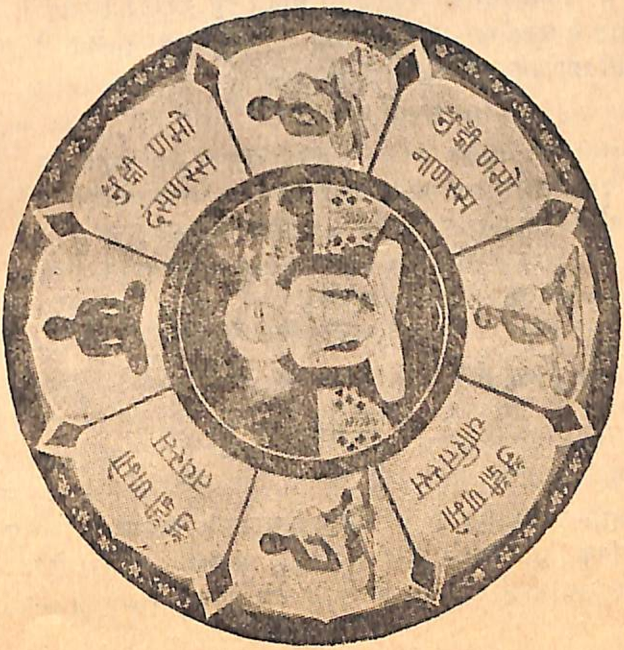

प्राणायाम ध्यान का इतना विस्तार है कि इसको वृहस्पति भी कहने में समर्थ नहीं है। इसलिए मैंने यहां पर नाम मात्र-अति संक्षेप से कहा है। इसका विस्तृत स्वरूप जानने के इच्छुक सम्यग्दृष्टि योगी गुरु के पास से जान कर अपना मनोरथ सिद्ध करे—१०५

प्राणायाम की दस भूमियां हैं उनमें से स्वरोदय प्रथम भूमि है सबसे पहले स्वर प्रकाश का ज्ञान करे फिर उसमें पांच तत्त्वों की पहचान करे—१०६

अब मैं उनका कुछ विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूं। आप अपने चित्त को अति स्थिर करके ध्यान पूर्वक सुनें। स्वर में जब तत्त्व की पहचान हो जाय तो समझना चाहिये कि स्वरोदय सिद्ध हो गया है—१०७

स्वरों में तत्त्वों की पहचान से लाभ

(अडियल छन्द) दोय सुरा में पांच तत्त्व पहचानिये।
वरण मान आकार फल जानिये॥
इन विधि तत्त्व लखाव साधतां जो लहे।
साची बिसवावीस बात नर सो कहे॥ १०८॥

अर्थ—दोनों (सूर्य और चन्द्र) स्वरों में पांच-पांच तत्त्व चलते हैं, उनको पहिचान कर उन तत्त्वों के रंग, परिमाण, आकार, काल, फल आदि को भी विशेष रूप से जानना चाहिये क्योंकि जो मनुष्य इन तत्त्वों की उपर्युक्त प्रकार से भली भांति साधना कर लेता है अर्थात् भलीभांति समझ लेता है, उसकी कही हुई बात अवश्यमेव सत्य होती है—१०८

तत्त्वों की पहचान

(दोहा) पृथ्वी जल पावक अनिल, पंचम तत्त्व नभ जान।
पृथ्वी जल स्वामी शशि, अपर तीन को भान॥१०९॥
पीत श्वेत रातो वरण, हरित श्याम फुनि जान।
पंच वरण ये पांच के, अनुक्रम श्री पहिचान॥११०॥
पृथ्वी सन्मुख[३३] संचरे, करपल्लव षट् दोय।
समचतुस्र आकार तस, स्वर संगम में होय॥१११॥

३३—ज्ञानार्णव में कहा है कि—

घोणा विवरणमापूर्यं किञ्चिदुष्णं पुरन्दरः।
वहत्यष्टांगुलः स्वस्थः पीतवर्णः शनैः शनैः॥२४॥

अर्थ—नासिका के छिद्र को भली प्रकार भर कर कुछ उष्णता लिए आठ अंगुल बाहर निकलता, स्वस्थ, चपलता रहित, मन्द मन्द बहता ऐसा पुरन्द्र (इन्द्र) जिसका स्वामी है ऐसे (चिन्हों से) पृथ्वी मंडल को जानना—२४

अधोभाग जल चलत है, षोडश अंगुल मान।
वर्तुल है आकार तस, चन्द्र सरीखो जान ॥११२॥
चारांगुल पावक चले, उर्ध्व दिशा स्वर मांहि।
त्रिकोण आकार तास, बाल रवि सम आहि ॥११३॥
वायु तिरछा चलत है, अष्टांगुल नित मेव।
ध्वजा रूप आकार तस, जानो इन विधि भेव ॥११४॥
नासा संपुट में चले, बाहिर नवि परकास।
शून्य अहे[३४] आकार तस, स्वर युग चलत आकास ॥११५॥
प्रथम पचास[३५] पल दूसरो, चालीस त्रीजो त्रीस।
बीस अरु दस पल चलत है, तत सुर में निश-दिश ॥११६॥

त्वरित: शीतलोऽधस्तात्सितरुक द्वादशांगुल:।
वरुण: पवनस्तज्ञ बर्हनेनावसीयते ॥२५॥

अर्थ—जो शीघ्र बहने वाला हो; कुछ निचाई लिए बहता हो, शीतल हो, उज्ज्वल (शुक्ल) दिप्ति रूप हो तथा बारह अंगुल बाहर आवे ऐसे पवन को वरुण मंडल (जल मंडल) का पवन निश्चय करना—२५

तिर्यग्वहत्यविश्रान्त: पवनाख्य: षडुंगल:।
पवन: कृष्णवर्णोऽसौ उष्ण: शीतश्च लक्ष्यत: ॥२६॥

अर्थ—जो पवन सब तरफ तिर्छा बहता हो, विश्राम के बिना निरन्तर बहता रहे, छः अंगुल बाहर आवे, नीला वर्ण हो, उष्ण हो तथा शीत भी हो ऐसे पवन को वायु मंडल पहचानना चाहिए।

बालार्क सन्निभश्चोर्ध्वं सावर्त्तश्चतुरंगुल:।
अत्युष्णो ज्वलनाभिख्य: पवन कीर्तितो बुधै: ॥२७॥

अर्थ—जो उगते हुए सूर्य के समान रक्त वर्ण हो तथा ऊंचा चलता हो, चक्रों सहित फिरता हुआ चले, चार अंगुल बाहर आवे और अति उष्ण हो ऐसा अग्नि मंडल का पवन पंडितों ने कहा है।

चिदानन्द जी महाराज कृत इस स्वरोदय सार तथा इस ज्ञानार्णव में स्वरों के बाहर जाने के नाप प्रमाण में मत भेद है। ज्ञानार्णव में पृथ्वी में श्वास आठ अंगुल प्रमाण कहा है। तथा १२ अंगुल तक श्वास जाता हो तो पृथ्वी तत्त्व समझना चाहिए, ऐसा चिदानन्द जी मानते हैं। इसी प्रकार बाकी के तत्त्वों के परिमाण के विषय में समझना चाहिए।

३४—क्योंकि आकाश शून्य पदार्थ है।
३५—पृथ्वी तत्त्व पचास पल, जल तत्त्व चालीस पल, अग्नि तत्त्व तीस

घड़ी अढ़ाई पांच तत, एक एक स्वर मांहि।
अह निश इदूणविध चलत है, यामें संशय नांहि ॥११७॥

अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच तत्त्व हैं। इनमें से प्रथम के दो अर्थात् पृथ्वी और जल तत्त्वों का स्वामी चन्द्र है और बाकी के तीन—अग्नि, वायु और आकाश तत्त्वों का स्वामी सूर्य है—१०६

पीला, सफेद, लाल, हरा(नीला)और काला ये पांच वर्ण(रंग)क्रम से पांचों तत्त्वों के जानने चाहियें। अर्थात् पृथ्वी तत्त्व का वर्ण पीला (गले हुए स्वर्ण के समान लाली युक्त पीला)। जल तत्त्व का वर्ण सफेद (चन्द्र समान)। अग्नि तत्त्व का वर्ण लाल (चिंगारी के सम्मान)। वायु तत्त्व का वर्णनीला (हरा) नीला और आकाश तत्त्व का वर्ण काला होता है—११०

जल तत्त्व नीचे की तरफ बहता है तथा नासिका से सोलह अंगुल बाहर जाता है और उसका आकार आधे चंद्रमा के समान गोल होता है—१११

पृथ्वी तत्त्व सामने चलता है तथा नासिका से बारह अंगुल तक दूर जाता है तथा उसका आकार समचौरस होता है—११२

अग्नि तत्त्व ऊपर की तरफ चलता है तथा नासिका से चार अंगुल तक दूर जाता है और इसका आकार त्रिकोणाकार होता है—११३

वायु तत्त्व तिरछा चलता है तथा नासिका से आठ अंगुल दूर जाता है और इसका ध्वजा के समान चंचल आकार होता है—११४

आकाश तत्त्व नासिका के भीतर ही चलता है अर्थात् दोनों स्वरों (सुखमना स्वर) में चलता है तथा इसका आकार कोई नहीं है—११५

प्रत्येक स्वर ढाई घड़ी अर्थात् एक घण्टे तक चला करता है और उसमें उक्त पांचों तत्त्व इस रीति से रात-दिन चला करते हैं—

पल, वायु तत्त्व बीस पल, और आकाश तत्त्व दस पल। इस प्रकार ५०+४० +३०+२०+१० कुल मिला कर १५० पल हुए। सोही ६० पल की एक घड़ी होने से १५० को ६० से भाग देने से २॥घड़ी समय हुआ। २॥घड़ी=१घण्टा होता है। अर्थात् एक मिनिट में २॥ पल होते हैं। ६० विपल=१ पल।
(नोट) सब प्रकार की विस्तृत परिभाषाओं को जानने के लिए देखें परिशिष्ट।

पृथ्वी तत्त्व ५० पल, जल तत्त्व ४० पल, अग्नि तत्त्व ३० पल, वायु तत्त्व २० पल, आकाश तत्त्व १० पल। इस प्रकार दोनों नाड़ियां उक्त प्रथम के चार तत्त्वों के साथ प्रकाशित रहती हैं तथा पांचवां आकाश तत्त्व सुषुम्ना नाड़ी के साथ प्रकाशित रहती है—११६-११७

तत्त्वों के द्वारा वर्ष फल जानने की प्रथम रीति

पृथ्वी तत्त्व

(दोहा) पंच तत्त्व सुर में लखे, भिन्न-भिन्न जब कोय।
काल समय को ज्ञान तस, बरस दिवस नो होय ॥११८॥
प्रथम मेष सक्रांति को, ह्वै प्रवेश जब आय।
तबहि तत्त्व विचारिये, स्वासा थिर ठहराय ॥११९॥
डाबा स्वर में होय जो, महीतणो परकास।
उत्तम जोग बखानिए, नीको फल है तास ॥१२०॥
परजा को सुख ह्वै घनो, समय होय श्रीकार।
धाण होय महीयल घणो, चौपद कुं अतिचार ॥१२१॥
ईति भीति उपजे नहीं जन वृद्धि पण थाय।
इत्यादिक बहुश्रेष्ठ फल, सुख पामे अति राय ॥१२२॥

अर्थ—स्वर में भिन्न-भिन्न पांचों तत्त्वों को देखने का जिस व्यक्ति को ज्ञान हो गया है वह मंडलों में पवन के प्रवेश और निःसरण काल को देखकर वर्ष-फल का विचार करे—११८

(१) जिस समय मेष सक्रांति (वैसाख मास-सूर्य मास) लगे उस समय श्वास को स्थिर करके स्वर में चलने वाले तत्त्व को देखना चाहिए—११९

यदि चन्द्र स्वर में पृथ्वी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि यह बहुत ही उत्तम योग है जिसका उत्तम फल होगा। समय बहुत ही श्रेष्ठ होगा—१२०

इस वर्ष प्रजा को बहुत सुख प्राप्त होगा और धन की महान् प्राप्ति होगी। पृथ्वी पर अनाज बहुत उत्पन्न होगा। चौपायों को चारे आदि की कमी न रहेगी। अर्थात् घास, चारा तथा अनाज बहुत होगा—१२१

रोग और भय का अभाव होने से सब प्रकार की शान्ति रहेगी मनुष्यों की

वृद्धि होगी। राजा भी अत्यन्त सुखी होंगे। इत्यादि बहुत श्रेष्ठ फल होगा—१२२

जल तत्त्व

(दोहा)—चलत तत्त्व जल तिण समय, शशि सुर में जो आय।
ताको फल अब कहत हूं, सुनजो चित्त लगाय ॥१२३॥
मेघ वृष्टि होवे घणी, उपजे अन्न अपार।
सुख होय परजा सहु, चिदानन्द चित्त धार ॥१२४॥
धर्म बुद्धि सब कुं रहे, पुण्य दान थी प्रीत।
आनन्द मंगल उपजे, नृप चाले शुभ नीत ॥१२५॥
शशि सुर में ये जानिये, तत्त्व युगल सुखकार।
तीन तत्त्व आगल रहे, तिन को कहूं विचार ॥१२६॥

(२) अर्थ :—जिस समय मेष सक्रांति (वैसाख मास) लगे उस समय स्वर में यदि जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि इस वर्ष में वर्षा बहुत होगी। पृथ्वी पर अपरिमित्त अन्न पैदा होगा। सब प्रजा सुखी होगी। सबका चित्त धर्म में अनुरक्त रहेगा अर्थात् राजा और प्रजा धर्म के मार्ग पर चलेंगे। राजा भी नीतिवान होगा, इत्यादि। १२३ से १२५

सारांश यह है चन्द्र स्वर में पृथ्वी और जल तत्त्व चलते हों तो वर्ष सुख देने वाला होगा। यदि ये दोनों तत्त्व सूर्य स्वर में चलते हों तो शुभ फल कम देगा अब बाकी के तीन तत्त्वों (अग्नि-वायु-आकाश) के विषय में वर्ष फल का विचार कहता हूं—१२६

अग्नि तत्त्व

(दोहा)—लगे मेष सक्रांति तब, प्रथम घड़ी स्वर जोय।
जैसो स्वर में तत्त्व बहे, तैसो ही फल होय ॥१२७॥
जो स्वर में पावक चले, अल्प वृष्टि तो होय।
रोग दोख होवे सही, काल कहे सहु कोय ॥१२८॥
देश भंग परजा दुःखी, अग्नि तत्त्व प्रकाश।
दोउ स्वर में होय तो, अशुभ अहे फल तास ॥१२९॥

अर्थ—यदि मेष संक्रांति की प्रथम घड़ी में दोनों स्वरों में से किसी भी स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि वर्षा कम होगी। रोग-पीड़ाएं फैलेंगे, दुर्भिक्ष होगा, देश भंग होगा, तथा प्रजा दुःखी होगी—१२७-१२६

वायु तत्त्व

(दोहा)—वायु तत्त्व स्वर में चलत, नृप विग्रह कछु थाय।
अल्प मेघ बरसे मही, मध्यम वर्ष कहाय ॥१३०॥
अर्द्धा सा अन्न नीपजे, खड थोड़ा-सा होय।
अनिल तत्त्व का इणी परे, मन मांहि फल जोय ॥१३ ॥

अर्थ—यदि उस समय दोनों स्वरों में से किसी भी स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि राजा में कुछ विग्रह होगा, वर्षा थोड़ी होगी, जमाना साधारण होगा, पशुओं के लिए घास चारा थोड़ा होगा, आधा अनाज पैदा होगा इत्यादि फल होगा—१३०-१३१

आकाश तत्त्व

(दोहा)— स्वर मांही जो प्रथम ही, बहे तत्त्व आकाश।
तो ते काल पिछानिये, होय न पूरा घास ॥१३२॥
इन विध थी ए जानिये, तत्त्व स्वर के मांहि।
फल मन में पिण धारिये, या में संशय नाहिं ॥१३३॥

अर्थ–यदि उक्त समय में आकाश तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ेगा। पशुओं के लिए पूरा घास चारा भी न होगा–१३२

इस प्रकार स्वरों में तत्त्वों का फल जानना चाहिए इस बात में किंचित-मात्र भी सन्देह नहीं—१३३

वर्ष फल जानने की दूसरी रीति

चैत्र सुदि प्रतिपदा

१. पृथ्वी तत्त्व

(दोहा) मधु मास सित प्रतिपदा, कर तस लगन विचार।
चलत तत्त्व सुर तिन समय, ताको वर्ण निहार ॥१३४॥

प्रात समय शशि सुर विषय, मही तत्त्व जो होय।
ता ते सर्व विचारिये, सुखदायक अति होय ॥१३५॥

घरण वृष्टि होवे घरणी, समय होय श्रीकार।
राजा परजा के हिये, हर्ष सन्तोष विचार ॥१३६॥

ईति भीति उपजे नहीं, मोटा भय नावे कोय।
चिदानन्द इम चन्द में, क्षिति तत्त्व फल होय ॥१३७॥

अर्थ—चैत्र सुदि (चांद्रमास) की प्रतिपदा के दिन लगन का विचार कर कौन से स्वर में कौन-सा तत्त्व चलता है उसका विचार करना चाहिए—१३४

यदि प्रात: समय चंद्र स्वर में पृथ्वी तत्त्व चलता हो तो समझना चाहिए कि यह वर्ष अति सुखदायक होगा। वर्षा बहुत होगी। समय उत्तम होगा। राजा और प्रजा को सब प्रकार से हर्ष तथा सन्तोष होगा। भय और कष्ट का सर्वथा अभाव होगा। किसी भी प्रकार का इस वर्ष में उत्पात नहीं होगा—१३५ से १३७

२. जल तत्त्व

(दोहा)—चिदानन्द जो चंद में, प्रात उदक परवेश।
तो ते समय सुभिक्ष अति, वृष्टि देश विदेश ॥१३८॥

शान्ति पुष्टि होवे घणी, धर्म तणो अति राग।
आनन्द हिये अति उपजे, दान अर्थ धन त्याग ॥१३९॥

जल धरणी दोऊ बहे, दिवसपति घर आय।
प्रातकाल तो ते बरस, मध्यम समय कहवाय ॥१४०॥

अर्थ—यदि उस दिन प्रात:काल चन्द्र स्वर में जल तत्त्व हो तो उसका फल यह होगा कि इस वर्ष में सब प्रकार से सुभिक्ष होगा। देश-विदेश में उत्तम प्रकार की वृष्टि होगी, शान्ति की बहुत पुष्टि होगी अर्थात् सर्वत्र सब प्रकार से शान्ति का प्रसार होगा तथा लोगों का धर्म के प्रति अति अनुराग होगा। सब प्रजा के मन में सब प्रकार का आनन्द अनुभव होगा एवं खुले और उदार दिल से धन का दान देने के लिए प्रजा त्याग वृत्ति वाली होगी–१३८-१३९

विशेष इतना समझना चाहिए कि यदि ये दोनों[3] (पृथ्वी और जल तत्त्व) प्रातःकाल सूर्य स्वर में चलते हों तो इसका इस वर्ष में मध्यम फल होगा। १४०

३. अग्नि, पवन और आकाश तत्त्व

(दोहा) तीन तत्त्व अवशेष जो, सुर में तास विचार।
मध्यम निष्ट कह्यो तिको, पूर्वकथित इम धार ॥१४१॥
राज-भंग परजा दुखी, जो नभ बहे सुर मांहि।
पड़े काल बहु देश में, या में संशय नांहि ॥१४२॥

अर्थ :—यदि इस दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर अथवा सूर्य स्वर में अग्नि वायु और आकाश इन तीन तत्त्वों में से कोई तत्त्व चलता हो तो उनका मध्यम तथा अनिष्ट फल वैसा ही समझना चाहिए जैसा कि हम पूर्व मेष सक्रांति में लिख आये हैं—१४१

विशेष रूप से इतना और समझें कि यदि स्वर में आकाश तत्त्व हो तो राज भंग हो, प्रजा दुःखी हो तथा देश में दुष्काल पड़े। यह बात निःसन्देह है—१४२

४. सूर्य स्वर में अग्नि तत्त्व

(दोहा) स्वर सूरज में अग्नि को, होय प्रातः परवेश।
रोग सोग थी जन बहु, पावे अधिक क्लेश ॥१४३॥
काल पड़े महीतल विषे, राजा चित्त नवि चैन।
सूरज में पावक चलत, इम स्वरोदय बैन ॥१४४॥

अर्थ—प्रातःकाल यदि सूर्य स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो जानना चाहिए कि जनता रोग और शोक से अत्यन्त पीड़ित होगी। क्लेश पाएगी देश में दुष्काल पड़े, राजा को भी बहुत घबराहट हो अर्थात् यदि सूर्य स्वर में चैत्र सुदि प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल अग्नि तत्त्व चलता हो तो आगामी वर्ष उपर्युक्त कहे अनुसार बीतेगा—१४३-१४४

३६- वामायां विचरन्तौ दहन समीरौ तु मध्यमौ कथितौ।
वरुणैन्द्रावितरस्यां तथा विधावेव निर्दिष्टौ ॥३७॥ (ज्ञानार्णवे २९)

५. सूर्य स्वर में वायु तत्त्व

(दोहा)—नृप विग्रह कछु ऊपजे, अल्प वृष्टि फुनि होय।
सूरज में इम अनिल को, चिदानन्द फल जोय ॥१४५॥

अर्थ—यदि प्रात:काल सूर्य स्वर में वायु तत्त्व हो तो राजा लोग परस्पर में लड़ेंगे, वर्षा कम होगी, इत्यादि—१४५

६—सुखमन स्वर

(दोहा)—सुखमन सुर जो ता दिवस, प्रात समय जो होय।
जोवनहार मरे सही, छत्र भंग फुनि जोय ॥१४६॥
अन्न कहुं थोड़ो ऊपजे, कहुंक थोड़ो नांहि।
सुखमन सुर को इनि परे, फल जानो मन मांहि ॥१४७॥

अर्थ—यदि चैत्र सुदि (चांद्रमास) की प्रतिपदा के दिन प्रात:काल सुखमन स्वर चलता हो तो जानना चाहिए कि इस वर्ष देखने वाले की अपनी मृत्यु होगी तथा छत्र भंग होगा। अन्न कहीं कम उत्पन्न होगा और कहीं पर थोड़ा भी पैदा नहीं होगा अर्थात् बिल्कुल उत्पन्न ही नहीं होगा। सुखमन स्वर में वर्ष फल इस प्रकार समझना चाहिए—१४६-१४७

वर्ष फल जानने की तीसरी रीति

(दोहा)—दुविध रीत जोवण तणी, कही बरस नी एम।
तीजी आगल जाणजो, धरी हियडे अति प्रेम ॥१४८॥

अर्थ—दो प्रकार से वर्ष फल देखने की रीति हम कह चुके हैं। अब तीसरे प्रकार की रीति आगे कहते हैं सो हृदय में प्रीति रखकर जानें—१४८

माघ सुदि सप्तमी तथा वैसाख सुदि तीज

(दोहा) १. माघ मास सित सप्तमी, फुनि वैसाखी तीज।
प्रात समय जो जोइये, बरस दिवस को बीज ॥१४९॥
निशापति के गेह में, जल धरणी परवेश।
यदि होय यह तिण समय, तो सुख देश विदेश ॥१५०॥

१. पृथ्वी तथा जल तत्त्व चन्द्र स्वर में

अर्थ—यदि माघ सुदि ७ अथवा वैसाख सुदि ३ (अक्षय तृतीया) को

प्रातःकाल चंद्रस्वर में आगामी वर्ष के बीज रूप जल तत्त्व अथवा पृथ्वी तत्त्व चलते हों तो उस वर्ष देश-विदेशों में सब प्रकार के सुख की प्राप्ति हो अर्थात् पूर्व कहे (वर्ष फल जानने की प्रथम व दूसरी रीति) अनुसार श्रेष्ठ फल जानना चाहिए—१४६-१५०

२. अग्नि, वायु, आकाश तत्त्व चन्द्र स्वर में

(दोहा)—अपर तत्त्व निशिनाथ घर, बहे अधम फल जान।

अर्थ—यदि उक्त दिनों में प्रातःकाल चन्द्र स्वर में अन्य अर्थात् अग्नि, वायु अथवा आकाश तत्त्वों में से कोई भी तत्त्व चलता हो तो पूर्व कहे अनुसार अनिष्ट फल समझना चाहिए—१५१

३. पृथ्वी तत्त्व, जल तत्त्व सूर्य स्वर में

उदक मही जो भानु घर, तो मध्यम चित्त आन ॥१५१॥

अर्थ—यदि उक्त दिनों में प्रातःकाल सूर्य स्वर में पृथ्वी तत्त्व अथवा जल तत्त्व चलता हो तो साधारण फल जानना चाहिए—१५१

४. अग्नि-वायु और आकाश तत्त्व सूर्य स्वर में

(दोहा)—एक अशुभ फुनि एक शुभ, तीनों में जो होय।
सिद्ध होय फल तेह नुं, मध्यम निहचे जोय ॥१५२॥

अर्थ—यदि उक्त दिनों में प्रातःकाल सूर्य स्वर में शेष के तीनों (अग्नि, वायु अथवा आकाश) तत्त्वों में से कोई तत्त्व चलता हो तो पूर्व कहे अनुसार उनका अशुभ, मध्यम अथवा शुभ फल जान लेना चाहिए—१५२

५. वर्ष फल में विशेष जानने योग्य

(दोहा)—सहु परीक्षा भाव में, मेष भाव बलवान।
ता दिन तत्त्व निहारि के, फल हिरदे दृढ़ आन ॥१५३॥

अर्थ—यह बात विशेष ध्यान में रखने योग्य है कि इन सब प्रकार के वर्ष फलों में मेष भाव (वैसाख मास का फल) बलवान है इसलिए उस दिन (वैसाख की संक्रांति को) तत्त्वों को जानकर उस दिन से वर्ष फल को अपने हृदय में निश्चय पूर्वक धारण करना चाहिए—१५३

अपने शरीर, कुटुम्ब, धनादि का विचार

(दोहा)— अब जो जोवणहार नर, तेह नो कहुं विचार।
आप लखी अपने हिये, अपनो करहुं विचार ॥१५४॥

अर्थ—अब मैं देखने वाले मनुष्य के विषय में विचार कहता हूं। अपने स्वर को देखकर अपने मन में अपने लिए फल का निश्चय करें—१५४

चैत्र सुदि एकम से सुदि अष्टमी में स्वर विचार

(दोहा)—चैत्र सुदि एकम दिने, शशि सुर जो नवि होय।
तो तेह ने तिहुं मास में, अति उद्वेग सु जोय ॥१५५॥
मधुमास सित बीज दिन, चले न जो स्वर चंद।
गमन होय परदेश में, तिहां उपजे दुख दन्द ॥१५६॥
चैत्र मास सित तीज कुं, चन्द चले नहीं आय।
तो ताके तन में सही, पित्त ज्वरादिक थाय ॥१५७॥
मरण होय नव मास में, जो सुर जाने तास।
मधु मास सित चौथ को, जो नवि चंद्र प्रकास ॥१५८॥
निशापति स्वर चैत सुदि, पांचम को नवि होय।
राजदण्ड म्होटा हुवे, या में संशय न कोय ॥१५९॥
चैत्र सुदि छठ के दिवस, चंद्र चले नहि जास।
वरस दिवस भीतर सही, विणसे बन्धव तास ॥१६०॥
चले न चंदा चैत सित, सप्तम दिन लवलेश।
तस नर केरी गेहनी, जावे जम के देश ॥१६१॥
तिथि अष्टमी चैत्र सुदि, चन्द बिना जो जोय।
तो पीड़ा अति उपजे, भाग-जोग सुख होय ॥१६२॥
तिथि अष्ट नो चंद्र बिना, दीनो फल दरसाय।
होय शशि शुभ तत्त्व में, तो उल्टो मन भाय ॥१६३॥

अर्थ—(१) यदि चैत्र सुदि एकम के दिन अपना चंद्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिए कि तीन मास में मुझे बहुत चिन्ता और क्लेश उत्पन्न होगा—१५५

(२) यदि चैत्र सुदि दूज के दिन अपना चंद्र स्वर न चले तो जानना चाहिए कि परदेश में जाना पड़ेगा और वहां भारी दुःख भोगना पड़ेगा—१५६

(३) यदि चैत्र सुदि तीज के दिन अपना चंद्र स्वर न चले तो जानना चाहिए कि शरीर में गरमी, पित्त ज्वर, रक्त ज्वर आदि रोग होंगे—१५७

(४) यदि चैत्र सुदि चौथ को अपना चंद्र स्वर न चले तो जान लेना चाहिए कि नव मास में अपनी मृत्यु होगी—१५८

(५) यदि चैत्र सुदि पंचमी के दिन अपना चन्द्र स्वर न चले तो जान लेना चाहिए कि अवश्य ही बहुत बड़ा राजदण्ड होगा—१५९

(६) यदि चैत्र सुदि छठ के दिन अपना चन्द्र स्वर न चले तो जान लेना चाहिए कि इस वर्ष के अन्दर ही भाई अथवा मित्र की मृत्यु होगी—१६०

(७) यदि चैत्र सुदि सप्तमी के दिन अपना चन्द्र स्वर न चले तो जान लेना चाहिए कि इस वर्ष में अपनी स्त्री मर जाएगी—१६१

(८) यदि चैत्र सुदि अष्टमी के दिन अपना चन्द्र स्वर न चले तो जानना चाहिए कि इस वर्ष में मुझे कष्ट और पीड़ा अधिक होगी अर्थात् भाग्य योग से ही सुख की प्राप्ति हो सकेगी—१६२

इस प्रकार चैत्र शुक्ल पक्ष की आठ तिथियों में अपने चन्द्र स्वर के बिना फल बतला दिया है। अब यदि उक्त दिनों में अपने चन्द्र स्वर में पृथ्वी अथवा जल तत्त्व आदि शुभ तत्त्व चलते हों तो उत्तम एवं श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है—१६३

पांच तत्त्वों में कार्य सम्बन्धी प्रश्न विचार

(दोहा)—तत्त्ववान के कहत हूं, प्रश्न तणौ परसंग।
इन विध हिये विचार के, कथिये[३६] वचन अभंग ॥१६४॥

३६—उदयश्चन्द्रेण हितः सूर्येणास्तं प्रशस्यते वायोः।
रविणोदये तु शशिना, शिवमस्तमनं सदा नृणाम् ॥३९॥
सितपक्षे रव्युदये प्रतिपद्दिवसे समीक्ष्यते सम्यक्।
शस्तेतर प्रचारौ वायोर्यत्नेन च विज्ञानी ॥४०॥ (ज्ञानार्णवे)
अर्थ—पवन का उदय चन्द्रमां के स्वर में शुभ है, सूर्य अस्त स्वर में प्रशस्त

जल धरणी के जोग में, प्रश्न करे जो कोय।
निशानाथ पूरण बहत, तस कारज सिध होय ॥१६५॥

अर्थ—अब में तत्त्व में प्रश्न सम्बन्धी विचार को कहता हूं सो इस प्रकार मन में निश्चय कर पृच्छक के फल के विषय में उत्तर दें—१३४

(१) यदि चन्द्र स्वर में पृथ्वी[३७] तत्त्व अथवा जल तत्त्व चलता हो और उस समय कोई कार्य के लिए प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा—१६५

(दोहा)—पवन अगन आकाश को, जोग शशि स्वर मांहि।
होय प्रश्न करतां थका, तो कारज सिद्धि नांहि ॥१६६॥
क्षिति उदक थिर काजकुं, उडुगणपति सुरमांहि।
तत्त्व युगल ये जानिये, चर कारज कुं नांहि ॥१६७॥
वायु अगन नभ तीन ये, चर कारज परधान।
तत्त्व हिये में जानिये, उदय होत सुर भान ॥१६८॥

अर्थ—(२) यदि चन्द्र स्वर में वायु तत्त्व, अग्नितत्त्व अथवा आकाश तत्त्व हो और उस समय आकर कोई किसी कार्य के लिए प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि कार्य कदापि सिद्ध न होगा—१६६

(३) स्मरण रखना चाहिये कि चन्द्र स्वर में जल तत्त्व तथा पृथ्वी तत्त्व

है। यदि सूर्य स्वर से उदय हो और शशि स्वर से अस्त हो तो जीवों को सदा कल्याणकारी है—३९

पवन के प्रचार को शुक्ल पक्ष में सूर्य के उदय में प्रतिपदा के दिन विज्ञानी सम्यक् प्रकार से यत्नपूर्वक शुभाशुभ दोनों को विचारे—४०

३७—नेष्ठ घटने समर्था राहु-ग्रह-काल-चन्द्र सूर्याद्याः।
क्षिति वरुणौ त्वमृतगतौ समस्त कल्याणदौ ॥४६॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—पृथ्वी मंडल (तत्त्व) और वरुण (जल) मंडल ये दोनों पवन अमृत-गति (चन्द्र) स्वर में बहें तो राहु, ग्रह, काल, चन्द्र, सूर्य आदि अनिष्ट करने में समर्थ नहीं होते। ये दोनों मंडल समस्त कल्याणों को देने वाले हैं।—४६

स्थिर कार्य के लिए अच्छे होते हैं परन्तु चर कार्यों के लिये अच्छे नहीं होते—१६७

(४) वायु तत्त्व, अग्नि तत्त्व, आकाश तत्त्व ये तीनों यदि सूर्य स्वर में हों तो चर कार्य के लिये अच्छे होते हैं किन्तु चन्द्र स्वर में अशुभ फलदाता हैं—१६८

पांच तत्त्वों में रोगी सम्बन्धी प्रश्नों का विचार

(दोहा)—रोगी केरो प्रश्न नर, जो कोउ पूछे आय।
ताकुं स्वास विचार के, इम उत्तर कहवाय ॥१६९॥
शशि सुर में धरणी चलत, पूछे तिस दिसि मांहि।
ताते निहचे करि कहो, रोगी विणसे नांहि ॥१७०॥
चन्द्र बन्द सूरज चलत, पूछे डाबी ओड़।
रोगी के परसंग तो, जीवे नहिं विधि कोड़ ॥१७१॥
पूरण स्वर सुं आय के, पूछे खाली मांहि।
तो रोगी कुं जाणजो, साता होवे नांहि ॥१७२॥
खाली सुर सुं आयके, बहते सुर में बात।
जो को रोगी की कहे, तो तस नांहिज घात ॥१७३॥

अर्थ—यदि[३८] कोई नर रोगी सम्बन्धी प्रश्न आपके पास आकर पूछे तो अपने स्वर का विचार कर निम्न प्रकार से उत्तर दें—१६९

(१) यदि कोई पुरुष आकर रोगी सम्बन्धी प्रश्न करे उस समय यदि आपके चन्द्र स्वर में पृथ्वी तत्त्व चल रहा हो और प्रश्न कर्त्ता भी उस भरे[३९] स्वर की

३८—ज्ञातुर्नाम प्रथमं पश्चाद्यद्यातुरस्य गृह्णाति।
दूतस्तदेष्ट-सिद्धिस्तद्वयस्ते स्याद्विपर्यस्ता ॥४८॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—कोई प्रश्नकर्त्ता दूत यदि प्रथम ही ज्ञाता का नाम लेकर तत्पश्चात् आतुर (रोगी) का नाम ले तो इष्ट की सिद्धि होती है और इसके विपरीत रोगी का नाम पहले और ज्ञाता का पीछे ले तो इष्ट की सिद्धि नहीं होती (विपर्यस्त है)

३९—जिधर का स्वर चलता हो उस दिशा को पूर्ण अथवा भरी दिशा कहते हैं।

तरफ से प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि रोगी नहीं मरेगा—१७०

(२) आपका चन्द्र स्वर न चलता हो और सूर्य स्वर चलता हो उस समय प्रश्न कर्त्ता यदि बाईं[४०] तरफ से प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि रोगी किसी प्रकार भी नहीं जी सकता—१७१

(३) कोई व्यक्ति पूर्ण (भरी) दिशा में से आकर खाली दिशा में रोगी सम्बन्धी प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि रोगी रोग मुक्त नहीं होगा—१७२

(४) यदि कोई खाली स्वर से वहते स्वर की तरफ आकर प्रश्न करे तो रोगी अवश्य अच्छा हो जायगा—१७३

रोगों का कारण वात, पित्त, कफ

(दोहा)—वात पित्त कफ तीन ये, भयो पिण्ड त्रय जोग।
सम से सुख होय देह में, विषम होत होय रोग ॥१७४॥
वाय चौरासी पिण्ड में, पित्त पच्चीस प्रकार।
कफ त्रय भेद बखानिये, द्वादश शत चित्त धार ॥१७५॥
वायु निवास उदर विषय, स्वामी है तस सूर।
फुनि शत धमनी मांहि ते, रहत सदा भरपूर ॥१७६॥
खन्ध मांहि फुनि जानजो, पित्त तणो नित्त वास।
जठराग्नि में संचरत, दिवानाथ पति तास ॥१७७॥
नाभि कमल थी वाम दिस, कर पल्लव त्रय जान।
नाड़ी युगल है कफ तणी, रही हिये में आन ॥१७८॥
शशि स्वामी तस जानजो, यह विवहारी बात।
निश्चय थी लख एक में, तीनों आय समात ॥१७९॥
अपनी-अपनी ऋतु विषय, वात पित्त कफ तीन।
ज़ोर जनावत देह में, तस उपचार प्रवीन ॥१८०॥
वैद्यक ग्रन्थ नहीं लख्यो, तिन का अधिक प्रकार।
मूल तीन सुं होत हैं, रोग अनेक प्रकार ॥१८१॥

४०—जिधर का स्वर चलता हो उस दिशा के सिवाय सब दिशायें खाली मानी गई हैं।

अपने अमल विसार के, दूजे के घर जाय।
रोग कफादिक थी जुई, सन्निपात कहवाय ॥१८२॥

रोम-रोम में जगतगुरु, पौरण दो दो रोग।
भाख्या प्रवचन मांहि ते, अशुभ उदय तस भोग ॥१८३॥

अर्थ—यह शरीर वात, पित्त, कफ इन तीनों के योग से बना है। इन तीनों के सम रहने से शरीर निरोग रहता है जिससे जीव को सुख का अनुभव होता है तथा इन तीनों के विषम हो जाने से शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है—१७४

इस शरीर में चौरासी प्रकार की वात है, पच्चीस प्रकार का पित्त है तथा तीन प्रकार का कफ होता है इन तीनों के कुल मिला कर ११२ भेद होते हैं—१७५

वायु का निवास उदर में है और उसका स्वामी सूर्य है। यह सौ धमनियों में सदा भरपूर रहता है—१७६

पित्त का निवास कन्धों में है, जठराग्नि में संचरण करता है तथा इसका स्वामी भी सूर्य है—१७७

नाभी से तीन अंगुल वाम दिशामें दो नाड़ियां कफ की हैं जो हृदय तक आती हैं—१७८

कफ का स्वामी चंद्र है, यह तो हुई व्यवहार की बात। निश्चय से तो एक में ही तीनों का समावेश हो जाता है—१७९

अपनी-अपनी ऋतु में वात, पित्त और कफ अपना-अपना ज़ोर दिखलाते हैं इसके उपचार में प्रवीण जो वैद्यक ग्रंथ हैं उनसे सविस्तार जान लेना चाहिए। यहां विस्तार भय से इनके अधिक प्रकार नहीं लिखे। इन मूल वात, पित्त और कफ तीनों से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं—१८०-१८१

कफादिक अपना अपना स्थान छोड़ कर जब दूसरे के घर जाते हैं तब जो रोग होता है उसका नाम सन्निपात है—१८२

सर्वज्ञ प्रभु ने प्रवचन में एक-एक रोम में पौने दो-दो रोग बतलाये हैं। अशुभ कर्म के उदय से जीव को इन रोगों को भोगना पड़ता है—१८३

रोग सम्बन्धी प्रश्न

(दोहा)—प्रश्न करे रोगी तणो, जैसे सुर में आय।
सुर फुणि तत्त्व विचार के, तैसा रोग कहाय ॥१८४॥
अपने[४१] स्वर में अपना, तत्त्व चले तिण वार।
तो रोगी के पिण्ड में, रोग एक निर्धार ॥१८५॥
सुर में दूजा सुर तणो, प्रश्न करत तत होय।
मिश्र भाव से रोग की, उत्पत्ति तस जोय ॥१८६॥

अर्थ—यदि कोई आकर रोगी को क्या रोग है ऐसा प्रश्न करे तो स्वर में तत्त्व का विचार करके जैसा स्वर और तत्त्व हो वैसा रोग कहना चाहिए—१८४

(१) यदि अपने स्वर में अपना तत्त्व चलता हो तो रोगी को एक रोग है, ऐसा कहना चाहिए। जैसे चंद्र स्वर में यदि पृथ्वी तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि रोगी को एक रोग है और वह कफ के प्रकोप से हुआ है।

यदि सूर्य स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि रोगी पित्त जनित एक रोग से पीड़ित है। यदि स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिये कि रोगी वायु जनित एक रोग से पीड़ित है—१८५

(२)यदि दूसरे स्वर में दूसरा तत्त्व (विपरीत तत्त्व) चलता हो उस समय कोई रोगी के रोग सम्बन्धी आकर प्रश्न पूछे तो उत्तर देना चाहिए कि मिश्र भाव से रोग है। अर्थात यदि चंद्र स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो कहना चाहिये कि कफ और पित्त मिश्रित रोग है। यदि चंद्र स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि कफ और वायु मिश्रित रोग है। यदि सूर्य स्वर में पृथ्वी तत्त्व अथवा जल तत्त्व चलते हों तो कह देना चाहिए कि कफ और

४१—पूर्णे वरुणे प्रविशति यदि वामा जायते क्वचित्पुण्यैः।
सिद्धयत्यचिन्तितान्यपि कार्याण्यारभ्यमाणापि ॥५१॥

अर्थ—जल तत्त्व का पवन पूर्ण होकर प्रवेश करते हुए यदि किसी पुण्योदय से बांई नाड़ी चले तो अनचिन्ते कार्य के प्रारंभ करने में भी सिद्धि होती है। अर्थात् महाशुभ तथा कल्याणकारी है।

पित्त के प्रकोप जनित रोग है। इत्यादि—१८६

खाली तथा भरे स्वर में प्रश्न विचार

(दोहा)— पूरण स्वर थी आय के, पूछे पूरण मांहि।
सकल काज संसार के, पूरण संशय नांहि ।।१८७।।
खाली स्वर में आय के, पूछे खाली मांहि।
जो-जो काज जगत तणो, सो सो होवे नांहि ।।१८८।।
खाली सुर से आय के, पूछे पूरण मांहि।
सकल काज संसार के, पूरण संशय नांहि ।।१८९।।
पूछे पूरण सुर तजी, खाली सुर की ओड़।
प्रश्न तास निष्फल कहो, सफल नहीं विधि कोड़ ।।१९०।।

अर्थ—यदि कोई पुरुष पूर्ण स्वर से आकर पूर्ण स्वर की ही तरफ से प्रश्न पूछे तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य अवश्य पूर्ण होगा—१८७

यदि कोई पुरुष खाली स्वर से आकर खाली स्वर की तरफ से ही प्रश्न पूछे तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य कदापि सिद्ध न होगा—१८८

यदि कोई पुरुष खाली स्वर की तरफ से आकर पूर्ण स्वर की तरफ प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य निःसन्देह सिद्ध होगा—१८९

यदि कोई पुरुष पूर्ण स्वर की तरफ से आकर खाली स्वर की तरफ प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि करोड़ों उपाय करने पर भी तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा—१९०

वार के अनुसार स्वरों में तत्त्व

(दोहा) – प्रातःकाल बुधवार को, क्षिति तत्त्व शुभ जान।
सोमवार जल शुक्र कुं—तेज हिये में आन ।।१९१।।
गुरुवार वायु भलो, शनि दिवस आकाश।
चलत तत्त्व इम काय में, पूरब रोग[४२] विनाश ।।१९२।।

४२—रोग सम्बन्धी कुछ और विशेष बातें:—
दक्षिणेन यदा वायुर्दूतो रौद्राक्षरो वदेत्।
तदा जीवति जीवोऽसौ चंद्रे समफलं भवेत् ।।३१८।। (शिव स्वरोदय)

अर्थ—यदि प्रातःकाल बुधवार को पृथ्वी तत्त्व, सोमवार को जल तत्त्व, शुक्रवार को अग्नि तत्त्व चलता हो तो उसे शुभ फलदायी जानना चाहिए—१६१

यदि गुरुवार को वायु तत्त्व और शनिवार को आकाश तत्त्व प्रातःकाल चलता हो तो जान लेना चाहिए कि शरीर में जो कोई पहले का रोग है वह अवश्य मिट जायेगा—१६२

चन्द्र स्वर में कार्य विचार

(दोहा)—अपने शशि सुर मांहि अब, करन-जोग जो काम।
तस विचार अब कहत हूं, सुखदायक अभिराम ॥१६३॥
देवल श्री जिनराज नो, नवो निपावे कोय।
खात महूरत अवसरे, चन्द्र-योग तिहां जोय ॥१६४॥
अमी-स्रवन शशि जोग में, अरुण द्युति थिर होय।
करत प्रतिष्ठा बिम्ब की, अति प्रभाव तस जोय ॥१६५॥

अर्थात्—यदि वायु नाड़ी के दक्षिण की ओर बहती हो और दूत के मुख से भयानक वचन निकलें तो वह प्राणी जीवेगा। यदि चन्द्र स्वर हो तो सम फल होगा।

प्रश्ने चाधः स्थितो जीवो, नूनं जीवोहि जीवति।
ऊर्ध्वं चारस्थितो जीवो, जीवो याति यमालयम् ॥३२१॥
(शिव स्वरोदय)

अर्थ—यदि प्रश्न के समय दूत अधोभाग में स्थित हो तो वह रोगी निश्चय से जीवे। यदि दूत ऊर्ध्व भाग में स्थिति हो तो जीव की अवश्य मृत्यु हो।

विपरीताक्षर प्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि।
विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्योदय सति ॥३२२॥
(शिव स्वरोदय)

यदि विषम नाड़ी (सुखमना) का उदय हो और प्रश्न कर्त्ता रिक्त नाड़ी से ऐसा प्रश्न करे जिसके अक्षर विषम(१,३,५,७,९)हों तो विपरीत फल जानना।

तखत मूलनायक प्रभु, बैठावे तिण वार।
जिनघर कलश चढ़ावतां, चन्द्र योग सुखकार ॥ १९६ ॥
पौषधशाल निपावतां, दानशाल घर हाट।
महल दुर्ग गढ़ कोट नो, रचित सुघट धुर घाट ॥ १९७ ॥
संघ-माल आरोपतां, करतां तीरथ-दान।
दीक्षा मंत्र बतावतां, चन्द्र जोग परधान ॥ १९८ ॥
घर नवीन पुर गांव में, करतां प्रथम प्रदेश।
वस्त्राभूषण संग्रहत, ले अधिकारे देश ॥ १९९ ॥
योगाभ्यास करत सुधि, औषध भेषज मीत।
खेती बाग लगावतां, करतां नृप सुं प्रीत ॥ २०० ॥
राज तिलक आरोपतां, करतां गढ़ परवेश।
चन्द्र जोग में भूपति, विलसे सुख सुदेश ॥ २०१ ॥
राज सिंहासन पग धरत, करत और थिर काज।
चन्द्र जोग शुभ जानजो, चिदानन्द महाराज ॥ २०२ ॥

(चौपाई) मठ देवल अरु गुफा बनावे। रतन धातु कुं घाट घड़ावे ॥
इत्यादिक जग में बहु ये काम। चन्द्र योग में अति अभिराम ॥२०३॥
चन्द्र जोग थिर काज प्रधान। कह्यो तास किंचित अनुमान ॥

अर्थ—चन्द्र स्वर में जो-जो कार्य करने चाहिएं अब मैं उनका विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूं। इस स्वर में निम्न प्रकार के कार्य करने से शुभ, सुखदाई और शान्तिदाता होते हैं—१९३

शान्त और स्थिर कार्यों को चन्द्र स्वर में करना चाहिये जैसे कि नये जिन-मन्दिर का बनाना, मन्दिर की नीव को खुदवाना चन्द्र स्वर के योग में करना चाहिये—१९४

चन्द्र योग में अमृत-स्राव तथा सूर्य के समान द्युति होती है। ऐसे समय में यदि जिन-बिम्ब की प्रतिष्ठा की जावे तो वह विश्व को बहुत प्रभावशाली और चमत्कारी होती है—१९५

मूलनायक की मूर्ति को गद्दी (गादी) पर विराजमान करना, मन्दिर पर

ध्वजादंड तथा कलश का चढ़ाना चन्द्र स्वर में सुखकारी है—१९६

पौषधशाला (उपाश्रय), धर्मशाला, पाठशाला, दानशाला, घर, दुकान, महल, गढ़, किले और कोट का बनवाना, सुदृढ़ घाट बनवाना—१९७

संघ को माला का पहनाना, तीर्थ यात्रा करना, दान करना, दीक्षा देना, मंत्र बतलाना, इन सब में चन्द्र योग (चन्द्र स्वर) प्रधान है—१९८

नगर अथवा गांव में प्रवेश करना, नवीन घर में प्रथम प्रवेश करना, नये कपड़ों तथा गहनों को बनवाना तथा खरीदना, नये कपड़ों तथा गहनों को पहनना, देश को अपने अधिकार में लेना ये सब कार्य चन्द्र स्वर में करने चाहिएं—१९९

योगाभ्यास करना, दवाई का बनाना, मित्रता करना, खेती करना, बाग लगाना, राजा आदि बड़े व्यक्तियों से मित्रता करना इत्यादि सर्व कार्य चन्द्र स्वर में करने चाहियें—२००

राजगद्दी पर बैठना या बिठलाना, किले में प्रवेश करना, दुर्ग में आकर प्रवेश करना, ये सब चन्द्र स्वर में करने चाहिये इससे राजा तथा प्रजा सब प्रकार से सुख और आनन्द का उपभोग करते हैं—२०१

राज सिंहासन पर चढ़कर बैठते समय तथा अन्य स्थिर कार्य करते समय—जैसे कि शान्ति कर्म करना, दीर्घ कार्य करना, विवाह करना, स्त्री संग्रह करना, अपने स्वामी के दर्शन करना, व्यापार तथा धन संग्रह करना, नौकरी करना, खेती में बीज बोना, शान्ति तथा स्थिरता के लिए मंत्र साधन करना, जपादि करना, सर्व बांधवों का दर्शन करना, जल छोड़ना तथा बांधना, रस साधन करना, उत्तम कार्य करना, कला सीखना, सेवा करना, चाकरी करना, शहर बसाना, नया स्थान, मकान, दुकान, कारखाना बनाना, इत्यादि। ये सब कार्य चन्द्र स्वर में करने से शुभ फलदायी होते हैं जिससे सदा प्रसन्नता प्राप्त होती है—२०२

मठ बनाना, मन्दिर बनाना, गुफा बनाना, रत्नों और सोने, चांदी आदि के अलंकार बनवाना इत्यादि सब स्थिर कार्यों को जैसे कि—खजाना बनाना, बावड़ी, कुंआ, तालाब, नहर आदि खुदवाना, गीतादि का प्रारम्भ करना तथा इनका अभ्यास करना, नृत्य प्रारम्भ करना, लक्ष्मी का स्थापन करना, कष्ट

निवारण तथा शोक दूर करना, विषाद-विवाद मिटाना, ज्वर के अन्त में, व्याधि शान्ति में तथा सब शुभ कार्यों में, तीर्थ यात्रा, मुसाफरी इत्यादि जो-जो सर्व कार्य कहे हैं अथवा जो नहीं भी कहे किन्तु यदि वे स्थिर और शान्त हों, उन्हें चाहे रात्रि हो अथवा दिवस, चन्द्र स्वर में करने चाहिएं क्योंकि इन कार्यों में चन्द्र स्वर प्रशस्त है—२०३

चन्द्र योग (चन्द्र स्वर) स्थिर कार्यों के लिए प्रधान है। यहां पर हमने इस का थोड़ा सा वर्णन कर दिया है—२०४

सूर्य स्वर में कार्य विचार

(चौपाई) स्वर सूरज में करिये जेह। सुनो श्रवण दे कारज तेह ॥ २०४ ॥
विद्या पढ़े ध्यान जो साधे। मंत्र साध अरु देव आराधे ॥
अरज़ी हाकम के कर देवे। अरि विजय का बीड़ा लेवे ॥ २०५ ॥
विष अरु भूत उतारण जावे। रोगी कुं जो दवा खिलावे ॥
विघन हरण शान्ति जल नाखे। जो उपाय कुष्टि कुं भाखे ॥२०६ ॥
गज बाजी वाहन हथियार। लेवे रिपु विजय चित्त धार ॥
खान पान कीजे असनान। दीजे नारी को ऋतु दान ॥ २०७ ॥
नया चोपड़ा लिखे लिखाये। वणिज करत कछु वृद्धि थावे ॥
भानु जोग में ये सहु काज। करत लहे सुख चैन समाज ॥ २०८ ॥
भूपति दक्षिण स्वर में कोई। युद्ध करण जावे सुन जोई ॥
रण संग्राम मांहि जस पावे। जीत करि पाछो घर आवे ॥ २०९ ॥
सागर में जो पोत चलावे। वंछित द्वीप वेगे ते पावे ॥
वैरी भवन गवन पग दीजे। भानु जोग में तो जस लीजे ॥ २१० ॥
ऊंट महीष गो विक्रय करतां। साट वदत सरिता जल तरतां ॥
करज़ द्रव्य काहु कुं देतां। भानु जोग शुभ अथवा लेतां ॥ २११ ॥
इत्यादिक चर कारज जेते। भानु जोग में करिये तेते ॥
लाभालाभ विचारी कहिये। नहितर मन में जानी रहिये ॥ २१२ ॥
विवाह दान इत्यादिक काज। सौम्य चन्द्र योगे सुखसाज ॥
क्रूर कार्य में सूर परधान। पूर्व कथित मन में ते जान ॥ २१३ ॥

अर्थ—अब सूर्य स्वर में जो जो कार्य करने चाहियें उनका संक्षेप से वर्णन करता हूं। पाठक गण कान लगाकर सुनें—२०४

विद्या[४३] सीखना, विद्या प्रारम्भ करना, ध्यान साधना, मंत्र सिद्ध करना, देवता का आराधन करना, राजा अथवा हकिम को अर्जी देना, वैरी से मुकाबिला करना, वकालत का मुखतार नामा लेना—२०५

सर्पादि का विष तथा भूतादि का उतारना, रोगी को दवा देना, विघ्न की शान्ति के लिए शान्ति जल डालना, कोढ़ी का इलाज करना और कष्टवाली स्त्री का उपाय करना—२०६

हाथी, घोड़ा, बग्घी, मोटर, गधा, तख्त, रथ, पालकी, बैलगाड़ी, शस्त्रादि बेचना। शत्रु विजय का विचार करना, भोजन करना, स्नान करना, स्त्री को ऋतुदान देना—२०७

नया बही खाता लिखना लिखवाना, व्यापार के कार्य में वृद्धि होना। ये सब कार्य सूर्य स्वर में करने से सब प्रकार से सुख और शांति प्राप्त होते हैं—२०८

राजा शत्रु से लड़ाई करने के लिए यदि सूर्य स्वर में जावे तो लड़ाई में यश को प्राप्त करे तथा विजय प्राप्त करके वापिस अपने घर आवे—२०९

सूर्य स्वर में यदि जहाज़, अगन बोट, नाव, बजरा इत्यादि नदी अथवा समुद्र में चलावे तो वांछित द्वीप में शीघ्र सुरक्षित पहुंच जावेगा। अपने शत्रु के घर में जाकर यदि सूर्य स्वर चलते समय प्रवेश करोगे तो विजय तथा यश की प्राप्ति होगी—२१०

ऊंट, गाय, गधा, घोड़ा इत्यादि पशुओं को बेचना, भट्टा करना, तालाब, नदी, समुद्र आदि में तैरना, किसी को रुपया आदि उधार देना अथवा लेना। ये सब कार्य सूर्य स्वर में करने चाहियें—२११

४३—सूर्य चर तथा क्रूर कार्यों में सिद्धिदायक है तथा चन्द्र शान्त एवं स्थिर कार्यों में सिद्धिदायक है। अतः विद्या साधन, ध्यान, मंत्र इत्यादिक शांत और स्थिर कार्यों के लिये चन्द्र स्वर में तथा क्रूर और चर कार्यों के लिए सूर्य स्वर में करने चाहियें। इसी प्रकार अन्य कार्यों में समझ लेना चाहिये।

वाद-विवाद करना, दूत का काम करना, शस्त्रादि युद्ध कला का अभ्यास करना, जुआ खेलना, चोरी करने जाना, कल-मशीनरी आदि का काम सीखना, लेखन लिपि सीखना, यंत्र-मंत्र-तंत्र का क्रूर कार्यों के लिये साधन करना। माल की खरीद-फरोखत (क्रय-विक्रय) करना, मारण, उच्चाटन(तथा मोहन-स्तम्वन) के प्रयोग करना, स्त्री से आलिंगन करना, मित्रता जोड़ना, स्त्री को वश करना, मोहन, स्तम्बन, उच्चाटन करना, भूत निकालना, वैतालादि डाकिनी, शाकिनी, छल, छिद्र, दृष्टि दोष, मुट्ठी, देव, दानव आदि सर्व दोष दूर करना। इत्यादि जितने भी चर और क्रूर कार्य हैं वे सब सूर्य स्वर में करने चाहिये। लाभालाभ का विचार कर पूछने वाले को कहना चाहिये, नहीं तो मन में विचार कर चुप रहना चाहिये—२१२

तात्पर्य यह है कि विवाह दानादि सौम्य कार्य चन्द्र स्वर में करने से सुखदायी होते हैं तथा क्रूर और चर कार्यों में सूर्य स्वर प्रधान है। हम जो पूर्व में वर्णन कर आये हैं उनको अच्छी तरह समझ कर मन में धारण करना चाहिये और मनन चिन्तन पूर्वक शुभाशुभ का निर्णय करे। जैसे कि घोड़ा, ऊंट, बैलगाड़ी, पालखी, रथ, मोटरगाड़ी आदि जिन सवारियों का वर्णन किया है उन्हें बेचना सूर्य स्वर में और खरीद करना चाहिये चन्द्र स्वर में। क्रूर कार्य के लिये मंत्र-यंत्र-तंत्र आदि साधन करने हों तो सूर्य स्वर में और नवकार मंत्रादि शांतिदायक मंत्रों का साधन तो शान्त स्वर अर्थात् चन्द्र स्वर में ही करना चाहिये अर्थात् जो चर और क्रूर कार्य कहे हैं अथवा नहीं भी कहे वे सब सूर्य स्वर में सिद्ध होते हैं—२१३

(दोहा) चन्द्र[४४] जोग थिर काज कूं, उत्तम महा बखान।
भानु जोग चर काज में, श्रेष्ठ अधिक मन आन ॥ २१४॥

४४—संग्राम-सुरत - भोजन विरुद्धकार्येषु दक्षिणेष्टास्यात्।
अभ्युदय - हृदयवांछित - समस्त - शस्तेषु वामैव ॥ ४५ ॥

अर्थ—संग्राम, कामक्रीड़ा, भोजनादि विरुद्ध कार्यों में तो दाहिनी नाड़ी श्रेष्ठ है तथा अभ्युदय और मनोवांछित समस्त शुभ कार्यों में बाईं नाड़ी शुभ है।

अर्थ—सारांश यह है कि चन्द्र स्वर स्थिर कार्य के लिए उत्तम है तथा सूर्य स्वर चर कार्य के लिये अति उत्तम है—२१४

सुखमना स्वर में कार्य विचार

दोहा—सुखमन चलत न कीजिये, चर थिर कारज कोय ।
करत काम सुखमन विषय, अवस हानि कछु होय ।। २१५ ।।
भवन प्रतिष्ठादिक सहु, वरजित सुखमन मांहि ।
ग्रामान्तर जावा तरणो, पगला भरिये नांहि ।। २१६ ।।
दुःख दोहग पीड़ा लहे, चित में रहे क्लेश ।
चिदानन्द सुखमन चलत, जो को जाय विदेश ।। २१७ ।।
कारज की हानि होवे, अथवा लागे वार ।
अथवा मित्र मिले नहीं, सुखमन भाव विचार ।। २१८ ।।
श्वास शीघ्र अति पालटे, छिन चन्द्र छिन सूर ।
ते सुखमन सुर जानिये, नाम अनिल भरपूर ।। २१९ ।।
सुखमन सुर संचार में, कीजे आतम ध्यान ।
रुद्ध गति एहि नाक की, लहिये अनुभव ज्ञान ।। २२० ।।
आतम तत्त्व विचारणा, उदासीनता भाव ।
भावत सुर सुखमन विषय, होवे ध्यान जमाव ।। २२१ ।।
चर थिर तीजी यह कही, द्विस्वभाव की बात ।
इन अनुक्रम थी आरंभी, कारज सफल[४५] कहात ।। २२२ ।।

अर्थ—जब सुखमन स्वर चलता हो तब चर तथा स्थिर कोई भी कार्य न करें । क्योंकि सुखमन स्वर में कार्य करने से अवश्य हानि होती है—२१५

मकान, मंदिर आदि की प्रतिष्ठा इत्यादि कार्य सुखमन स्वर में नहीं करने चाहियें और न ही ग्रामान्तर (परदेश) जाना चाहिये—२१६

सुखमन स्वर में जो कोई विदेश जायेगा वह दुःख, दुर्भाग्य, कष्ट, और पीड़ा पायेगा तथा उसके चित्त में क्लेश ही बना रहेगा—२१७

४५—सुखमना नाड़ी से श्वास चलते समय किसी को भी शाप अथवा वरदान देने से वह सफल होता है ।

सुखमन[४६] स्वर में विदेश के लिए प्रस्थान करने पर कार्य की हानि होगी अथवा कार्य होने में विलम्ब होगा अथवा मित्र नहीं मिलेगा, यात्रा में मृत्यु, हानि

४६—कौन-सा कार्य कब करने से सफलता मिलेगी ?

चन्द्र स्वर (बायां स्वर) में पृथ्वी, जल अथवा दोनों तत्त्वों में, सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार को निम्नलिखित कार्यों में सफलता प्राप्त हो—

(१) पौष्टिक कार्य, (२) मैत्री करण, (३) प्रभुदर्शन, (४) योगाभ्यास, (५) दिव्यौषध सेवन, (६) रसायन कार्य, (७) आभूषण धारण, (८) नये वस्त्र पहनना, (९) विवाह, (१०) दान, (११) गृह प्रवेश, (१२) गृहारंभ, (१३) जलाशय निर्माण, (१४) बाग लगाना, (१५) धर्मानुष्ठान, (१६) बंधु मित्र मिलन, (१७) ग्राम-नगर निर्माण, (१८) दूर गमन यात्रा, (दक्षिण-पश्चिम) (१९) पानी पीना, (२०) पेशाब करना ।

(ख) **सूर्य स्वर** (दायां स्वर) में पृथ्वी, जल अथवा दोनों तत्त्वों में, मंगल, शनि, रविवार को निम्नलिखित कार्यों में सफलता प्राप्त हो—

(१) शस्त्र-अस्त्र अभ्यास, (२) शास्त्राभ्यास, (३) दीक्षा, (४) संगीत, (५) सवारी, (६) व्यायाम, (७) नौका, जहाज की सवारी, (८) यंत्र-तंत्र रचना, (९) गिरी (पहाड़), कोट (किले) पर चढ़ना, (१०) विषय-भोग, (११) युद्ध, (१२) पशु-पक्षी का लेना-देना, (१३) काट-छांट करना, (१४) कठोर-हठ योग साधना, (१५) राजदर्शन, (१६) विवाद, (१७) लड़ाई-झगड़ा, (१८) किसी से मिलने जाना, (१९) मुकदमे बाज़ी, (२०) सब प्रकार के क्रूर कार्य ।

(ग) **कार्य के लिए जहां जाना हो वहां** पहुंचकर जिससे काम लेना हो, उस व्यक्ति को उस समय अपना जिस तरफ का श्वास चलता हो उस तरफ रखकर बातचीत का प्रारंभ करना चाहिये ।

आपको आश्चर्य होगा कि सामने वाला व्यक्ति यदि आपका विरोधी भी होगा तो भी आपकी इच्छानुसार ही कार्य करेगा । ऊपर बतलाई हुई विधि ही उत्तम वशीकरण है । इस विधि को निम्नलिखित कार्यों में उपयोग करने से मनमानी सफलता मिलेगी ही ।

और क्लेश हो—२१८

जिस समय श्वास जल्दी-जल्दी पलटे अर्थात् थोड़ी देर चन्द्र नाड़ी में और

(१) नौकरी की उमेदवारी के लिए जाना, (२) इण्टरव्यु के लिए जाना, (३) मुकदमे में वादी, प्रतिवादी अथवा साक्षी के लिये जाना, (४) अपने मालिक, स्वामी, आफिसर, बड़े, बुजुर्ग अथवा गुरु की मुलाकात के लिए जाना।

(घ) **जिस व्यक्ति ने सफलता प्राप्त करनी हो**—अथवा भाग्य का उदय करना हो उसे निम्नलिखित कुछ नियमों का पालन करना चाहिए। इन नियमों के अनुसार चलने से अशुभ योग अपने आप नष्ट हो जाते हैं:-(१)नित्य सूर्योदय से आधा घण्टा पहले जागना चाहिए। (२) सुबह उठते समय (बिछौने में बैठे बैठे) आंख खोलते ही जो स्वर चलता हो उसी तरफ का पग बिछोने से उतरते हुए पहले धरती पर रखना चाहिए। पर उतरते समय श्वास लेते समय पग धरती पर रखना आवश्यक है। खाली स्वर से लाभ के बदले हानि होना संभव है। यदि दाहिना (सूर्य) स्वर चलता हो तो दायां (जीमना) पग धरती पर रखना चाहिए। यदि बायां चन्द्र स्वर चलता हो तो बायां (डाबा) पग धरती पर रखना चाहिए। चन्द्र स्वर में सम अर्थात् दो, चार आदि कदम आगे बढ़ना चाहिए। तथा सूर्य स्वर में विषम अर्थात् १, ३, ५, आदि कदम आगे बढ़ना चाहिये।

(ङ) **स्वरोदय के प्रयोग से अग्नि शांत हो जाती है**:—सबको आश्चर्य होगा कि स्वर की मदद से बड़ी-बड़ी लगी हुई आग बुझाई जा सकती है। स्वर की मदद से आग बुझाने की विधि इस प्रकार स्वर शास्त्र में कही है—

जिस जगह आग लगी हो, जिस तरफ से पवन हवा की गति से आग ज़ोर पकड़ती हो उस तरफ पानी का पात्र लेकर खड़े रहें। तदनन्तर जिस नासिका से (नाड़ी से) श्वास चलता हो उस नाड़ी से श्वास अन्दर खींचते-खीचते उसी नाड़ी से थोड़ा जल भी खींचें। तत्पश्चात् उस पात्र में से ७ रत्ती भर (एक चम्मच) पानी लेकर आग पर छोडें, थोड़ी देर में आग आगे बढ़ना बन्द होकर बन्द हो जायेगी अर्थात् बुझ जाएगी।

थोड़ी देर सूर्य नाड़ी में चलने लगे अथवा दोनों नथनों में श्वास चलता हो और श्वास में आकाश तत्त्व चलता हो अथवा दोनों स्वर एक साथ चलें अथवा जिस

(च) **मृत्यु-रोग तथा आपत्तियों का पूर्वज्ञान तथा उपाय:**—पहले हम लिख आये हैं कि स्वर चालन का समय तथा दिन निश्चित है । परन्तु जब कोई शुभ-अशुभ होने का हो तो स्वर के समय तथा दिनों में परिवर्तन हो जाता है । यह परिवर्तन दो प्रकार से होता है ।

(१) विपरीत स्वर चले अर्थात् जिस दिन बाईं (डावी) नाड़ी चलने की हो उस दिन दाईं (जीमनी) नाड़ी चले और जिस दिन दाईं (जीमनी) नाड़ी चलने की हो उस दिन बांईं नाड़ी चले ।

(२) इसी प्रकार जितने समय तक बांई और दाईं नाड़ी चलनी चाहिए उतने समय तक वह न चलकर निश्चित समय से अधिक तथा अल्प प्रमाण में चले तो कोई छोटी, बड़ी आपत्ति आवेगी ही ऐसा निश्चित समझें ।

(छ) **दिनों में (तिथियों में) परिवर्तन से शुभाशुभ फल :—**

(१) यदि शुक्लपक्ष की एकम् (प्रतिपदा) के दिन बाईं नाड़ी न चले परन्तु उससे विपरीत दाहिनी (सूर्य) नाड़ी चले तो पूर्णिमा तक गरमी से कोई रोग हो, सर्दी से कोई रोग हो, किसी कार्य में हानि हो, घर में क्लेश हो, कोई प्रिय वस्तु नाश पाये ।

(२) यदि कृष्णपक्ष एकम् के दिन सूर्य नाड़ी न चले परन्तु उसके विपरीत चन्द्र नाड़ी चले तो अमावस तक नं० १ में लिखे अनुसार सर्दी, क्लेश, हानि, आदि आपत्तियों की सम्भावना रहे ।

(३) यदि नं०१-२ के समान लगातार दो (वदि, सुदि) पक्ष तक विरुद्ध स्वर से नाड़ी चलती रहे तो अपने पर विशेष आपत्ति आने की अथवा किसी सज्जन की बीमारी का अथवा मृत्यु का समाचार मिलने की सम्भावना रहे ।

(४) यदि तीन पक्ष लगातार विरुद्ध स्वर से दोनों नाड़ियां चलें तो अपनी मृत्यु समीप समझें ।

(५) यदि ३ दिन विपरीत स्वर चले तो क्लेश अथवा कोई रोग होना संभव है ।

समय एक स्वर चलते-चलते दूसरा,स्वर चलने को होता है उस समय पांच सात मिनट तक दोनों स्वर चलने लगते हैं उसी को सुखमना स्वर कहते हैं—२१६

(६) यदि लगातार एक महीने तक बाईं (डावी) नाड़ी विपरीत चले तो महारोग हो ।

(ज) समय में परिवर्तन से शुभाशुभ फल :—यदि स्वर के समय में परिवर्तन अर्थात् कमी-बेशी हो तो उससे नीचे लिखे अनुसार शुभाशुभ फल होता है । यह बात विशेष ध्यान में रखनी चाहिए कि समय का परिवर्तन दोनों स्वरों में उत्पन्न होता रहता है ।

(क) शुभ फल:—(१) चन्द्रस्वर लगातार चार घड़ी चले तो कोई अकल्पित उत्तम वस्तु की प्राप्ति हो । (२) यदि लगातार आठ घड़ी चले तो सुख वैभव मिले, (३) चौदह घड़ी लगातार चले तो प्रेम, मैत्री आदि मिले, (४) यदि एक दिन रात लगातार चले तो ऐश्वर्य, मान, वैभव मिले, (५) यदि २ दिन तक आधा-आधा पहर दोनों स्वर क्रमशः चले तो यात्रा और सौभाग्य की प्राप्ति हो, (६) यदि दिन को चन्द्र तथा रात्री को सूर्यस्वर लगातार चलते रहें तो १२० वर्ष की आयु हो, (७) यदि ४,८,१२ अथवा २० रात-दिन तक चन्द्रस्वर चलता रहे तो ८० वर्ष से अधिक आयु तथा ऐश्वर्य एवं सुख समृद्धि प्राप्त हो ।

(ख) अशुभ फल चन्द्रस्वर :—(१) यदि लगातार दस घड़ी तक चन्द्रस्वर चालू रहे तो देह कष्ट, (२) बारह घड़ी तक चालू रहे तो उद्वेग हो,(३) यदि एक महीना तक लगातार चन्द्रस्वर चालू रहे तो धन का नाश हो ।

(ग) अशुभ फल सूर्य स्वर :—(१) यदि लगातार चार घड़ी तक सूर्य स्वर चालू रहे तो वस्तु की हानि हो अथवा बिगाड़ हो । (२) यदि दो घड़ी तक चालू रहे तो सज्जन से द्वेष हो, (३) यदि २१ घड़ी तक चालू रहे तो सज्जन का विनाश हो, (४)६० घड़ी तक यदि लगातार सूर्य स्वर चालू रहे तो आयुष्य क्षीण और यदि बीमार हो तो मृत्यु हो ।

(झ) रोग ज्ञान और उनका प्रतिकार:—नासिका का स्वर निश्चित तिथि और समयानुसार न चले तो शरीर में व्याधि उत्पन्न हो। इस विषय में बहुत

सुखमना स्वर में नाक के श्वास को रोक कर प्राणायाम द्वारा भृकुटी में चढ़ाकर आत्म ध्यान कर निज अनुभव ज्ञान प्राप्त करें—२२०

कुछ पहले वर्णन कर चुके हैं। तथा इसके अनुसार जब शरीर में भूल से भी रोग प्राप्त हो तो स्वरों को विवेक पूर्वक चलाने से रोग भी अवश्य दूर हो जाते हैं। अब इस विषय पर कुछ विशेष लिखते हैं।

(१) **ज्वर (बुखार)**—जब शरीर में ज्वर की पूर्व तैयारी रूप बेचैनी और अधिक गरमी मालूम पड़े, तव जो स्वर चालू हो उसे जब तक शरीर बराबर स्वस्थ न हो तब तक उस स्वर को बन्द रखना चाहिए। नासिका में नरम रुई भरकर रखने से स्वर बन्द किया जा सकता है।

(२) **सिरदर्द** हो तो सीधे चित्त लेट जाना चाहिए और दोनों भुजायें लम्बी फैला देनी चाहियें। तत्पश्चात् किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा दोनों भुजाओं की कोहनियां ऊपर कस कर डोरी बांध देवें। ऐसा करने से तमाम दर्द पांच-दस मिनिट में शांत हो जाएगा। जब दर्द ठीक हो जावे तो तुरन्त डोरियां खोल दें।

(३) यदि आधा सीसी (आधे सिर का दर्द) हो तो इस परिस्थिति में जिस तरफ का माथा दुखता हो, मात्र उस तरफ के हाथ की कोहनी पर डोरी बांधनी चाहिए। दोनों कोहनियों पर डोरी बांधने की जरूरत नहीं है। (४) कदाचित दूसरे दिन फिर आधा सीसी का दर्द हो तो पहले दिन जो स्वर चलता था वही स्वर दूसरे दिन भी चलता है, ऐसा हो तब हाथ की कोहनी बांधने के साथ यह स्वर भी बन्द कर दें। (५) **अजीर्ण (बदहज़मी)**—जिसको सदा अजीर्ण की शिकायत रहती हो, उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब उसकी अपनी सूर्य नाड़ी चलती हो तभी भोजन करे। ऐसा करने से धीरे-धीरे अजीर्ण की व्याधि निर्मूल हो जाती है अर्थात् मिट जाती है। फिर पाचन शक्ति बढ़ने से खाया हुआ सब अन्न पच जाता है। भोजन करने के बाद १५-२० मिनिट बाईं करवट लेटने से अधिक लाभ होगा।

(६) **पुराणा अजीर्ण रोग मिटाने के लिए:**—एक अन्य उपाय भी है। नित्य १०-१५ मिनिट पद्मासन से बैठना। दृष्टि को नाभी पर स्थिर रखना।

इसलिए सुखमना स्वर में योगाभ्यास, प्रभु का ध्यान, आत्म तत्त्व विचारणा, संसार से उदासीनता भाव तथा प्राणायाम आदि करना चाहिये, क्योंकि

केवल सात दिन में ही अजीर्ण से छुट्टी पा जावेंगे ।

(७) **हिलते हुए दांतों को मजबूत करना**:—जिसके दांत हिलते या दुखते हों उसे पाखाना (शौच) और पेशाब (लघुशंका) करते समय ऊपर नीचे के दोनों दांतों की पंक्तियों को ज़ोर से दबाकर रखना चाहिए । इस प्रकार थोड़े समय करने से दर्द सम्पूर्ण शांत हो जाता है और हिलते हुए दांत भी ठीक हो जाते हैं ।

(८) **दूसरे रोग**:—जैसे कि छाती, कमर, पेट आदि शरीर के कोई भी भाग पर दर्द होता हो तो उस समय जो स्वर चालू हो उसे एकदम बन्द कर दें । ऐसा करने से चाहे कैसा ही दर्द हो वह थोड़े ही समय में बन्द हो जायेगा ।

(९) श्वास-दमा:—जब श्वास का उपद्रव शुरू होता मालूम पड़े और श्वास नली धमनी के समान फूलती मालूम पड़े तब जो स्वर चालू हो उसे एकदम बन्द कर देना चाहिए । ऐसा करने से १०-१५ मिनिट बाद आराम आ जावेगा । इस रोग को जड़ से दूर करने के लिए एक महीने तक चालू स्वर को बन्द करके दूसरा स्वर चलाने का अभ्यास करें । जितना बन सके उतना अधिक समय तक नित्यप्रति चालू श्वास को बन्द कर दूसरे स्वर को चलाने के अभ्यास से श्वास का रोग अवश्य मिट जायेगा ।

(ज) **कुछ आवश्यक उपचार** :—(१) परिश्रम से थकावट उतारने के लिए अथवा ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की गरमी से शांति पाने के लिए थोड़ा समय दाइं करवट लेट जाने से थकावट और गरमी से शांति मिलेगी । (२) नित्य भोजन करके चन्दन की कंघी से बाल संवारने से सिर रोग, वायु रोग मिट जाता है, और बाल काले रहते हैं, जल्दी पकते नहीं हैं । (३) नित्य आधा घंटा पद्मासन से बैठकर दांतों के मसूड़ों में जीभ चिपटा कर रखने से कोई भी रोग नहीं होता, शरीर अधिक से अधिक स्वस्थ होता जाता है । (४) नित्य आधा घंटा सिद्धासन से बैठकर नाभि पर दृष्टि स्थिर करने से भयंकर से भयंकर स्वप्न-दोष हमेशा के लिए मिट जाता है । (५) सुबह आंख खुलते ही जो स्वर चलता

इस स्वर में बहुत जल्दी ध्यान जमता है। दूसरा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये—२२१

हो उस तरफ के हाथ की हथेली मुख पर रख कर उसी तरफ का पग बिछोने पर से प्रथम धरती पर रखने से इच्छा सिद्धि प्राप्त होती है। (६) जिसे अधिकतर अजीर्ण रहता हो वह प्रातः काल कोई भी वस्तु खाये बिना खाली पेट ८-१० काली मिर्चें धीरे-धीरे चबा जावे। पन्द्रह-बीस दिन तक ऐसा क्रम जारी रखने से पुराने अजीर्ण का रोग नाश पा जाता है। (७) रक्त शुद्धिः—यदि किसी भी कारण से रुधिर में बिगाड़ हो गया हो तो इस रक्त विकार के कारण शरीर में फोड़े फुंसियां आदि निकल आते हों तो अमुक दिनों तक नियम पूर्वक "शीतली कुम्भक" करने से रक्त शुद्धि होती है। और चर्म रोग मिट जाते हैं। (८) जवानी कायम रखने के लिए इच्छानुसार स्वर बदलने का अभ्यास करने से जवानी टिकी रहती है। दिन में जब भी समय मिले जो स्वर चलता हो उसे तुरन्त बदलने का प्रयास करें। इस प्रकार दिन में कई बार स्वर बदलने के अभ्यास से चिर यौवन प्राप्त होता है। ऊपर की क्रिया के साथ-साथ प्रातः सायं **"विपरीत करणी"** मुद्रा भी की जावे तो अतीव लाभ मिलता है। (९) **दीर्घायुष्य के लिएः**—साधारणतया श्वास की साधारण गति का प्रमाण नासिका में से बाहर निकलते १२ अंगुल का होता है तथा नासिका में प्रवेश करते इसकी गति का प्रमाण १० अंगुल का होता है। श्वास को एक बार अन्दर जाकर बाहर जाने तक साधारण कालमान कुल ४ सेकेंड लगभग होता है। यह कालमान और गति का प्रमाण दोनों को जैसे बने वैसे कम करने से मनुष्य दीर्घायु होता है। धातु की दुर्बलता आदि बीमारी वाले मनुष्य के श्वास की गति का प्रमाण अधिक और समय का प्रमाण न्यून होता है। मनुष्य की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं में उसके श्वास की गति का प्रमाण कितना होता है उसकी तालिका नीचे दी जाती है—

(१) गाते हुए श्वास की गति का प्रमाण १६ अंगुल होता है। (२) खाते समय २० अंगुल, (३) चलते हुए २४ अंगुल, (४) सोते हुए ३० अंगुल, (५) मैथुन करते ३६ अंगुल होता है। (६) व्यायामादि कठिन परिश्रम करते

चर (सूर्य स्वर), स्थिर (चन्द्र स्वर) तथा तीसरे द्विस्वभाव (सुखमना स्वर) के विषय में सब बात कह दी है। अनुक्रम से जिस-जिस स्वर में जो-जो कार्य करने के लिए हम कह आये हैं वैसा-वैसा उस-उस स्वर में कार्य प्रारम्भ करने से अवश्य कार्य में सफलता प्राप्त होगी—२२२

हुए श्वास की गति का प्रमाण सब से अधिक बढ़ जाता है। जो मनुष्य श्वास की उपर्युक्त स्वाभाविक गति के प्रमाण में जितनी-जितनी अधिक कमी कर सकेगा अर्थात् घटा सकेगा, वह उतने-उतने प्रमाण में अपनी आयुष्य की वृद्धि कर सकता है।

(ट) **स्वर द्वारा शक्तियों की प्राप्ति**:—(१) श्वास की गति को १२ अंगुल तक लावे तो प्राण स्थिर होता है। (२) श्वास की गति को १२ अंगुल से घटा कर १० अंगुल तक लावे तो महान आनन्द प्राप्त हो। (३) नौ अंगुल तक ले जावे तो उसमें कवित्व शक्ति आती है। (४) आठ अंगुल तक लावे तो वाक् सिद्धि होती है। (५) सात अंगुल तक लावे तो दूर दृष्टि प्राप्त होती है। (६) छः अंगुल तक लावे तो आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त करे। (७) पांच अंगुल तक लावे तो उसमें प्रचंड वेग आता है। (८) चार अंगुल तक लावे तो सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं। (९) तीन अंगुल तक लावे तो उसे नव निधियां प्राप्त होती हैं। (१०) दो अंगुल तक लावे तो अनेक रूप धारण कर सकता है। (११) एक अंगुल तक लावे तो अदृश्य हो सकता है। (१२) श्वास की गति को १२ अंगुल से घटा कर प्राण की गति का प्रमाण नखाग्र भाग जितना रह जाये तब यमराज भी स्पर्श नहीं कर सकता अर्थात् वह अमर बन जाता है।

(ठ) **शब्द ब्रह्म अथवा आंतरिक नाद**:—इसके नौ भेद हैं–यथा घोष, कांस्य, शृंग, घण्टा, वीणा, बांसुरी, दुन्दुभी, शंख और मेघ गर्जना। अभ्यास में पहले इन्हीं शब्दों का अन्तरात्मा से उद्घोष होता है जिसे अभ्यासी सुनता है। किन्तु अभ्यास सिद्ध हो जाने पर इन शब्दों से भी भिन्न एक और शब्द होता है जिसे तुंकार का शब्द ब्रह्म कहा जाता है। उपर्युक्त नौ प्रकार के शब्द, शब्द ब्रह्म की प्रथमावृत्ति के हैं और द्वितीय वृत्ति में शब्द ब्रह्म का तुंकार ही है। तुंकार शब्द से काल का भय सदा के लिए मिट जाता है और प्राणी इच्छानुसार जीवित

पांचों तत्त्वों के ज्ञान की सहज रीतियां

दोहा—तत्त्व स्वरूप निहारवा, कहूं उपाय विचार।
भाव शुभाशुभ तेहनो, अधिक हिये में धार ॥ २२३ ॥
श्रवण अंगूठा मध्यमा, नासा पुट पर थाप।
नयन तर्जनी थी ढकी, भृकुटी में लख आप ॥२२४॥
पड़े बिन्दु भृकुटी विषय, पीत श्वेत अरु लाल।
नील श्याम जैसा हुवे, तैसा तिहां निहाल ॥२२५॥
जैसा वर्ण निहारिये, तैसा तत्त्व विचार।
श्वास गति स्वर में लखी, इच्छा फुनि आकार ॥२२६॥

अर्थ—अब मैं पांचों तत्त्वों का स्वरूप देखेने का उपाय कहता हूं। तत्त्वों को जानकर उनके शुभाशुभ फल का मन में निश्चय करना चाहिये—२२३

दोनों अंगूठों से दोनों कानों को, दोनों मध्यमा अंगुलियों से नासिका के दोनों नथनों को, दोनों तर्जनी अंगुलियों से आखों को बन्द कर लें [और दोनों अनामिकाओं एवं दोनों कनिष्टिकाओं (इन चारों अंगुलियों) से दोनों होटों को

रह सकता है।

(ड) **देवताओं के भिन्न-भिन्न रंगों का रहस्यः**—देवताओं के देहगत पीत, शुक्ल, नीला (हरा) लाल एवं काला आदि रंगों का रहस्य एवं उनका ध्यान फल कहते हैं।

(१) पृथ्वी तत्त्व (शक्ति) प्रधान देवताओं का रंग पीला होता है। पीला रंग स्तंभन कारक है।

(२) जल तत्त्व (शक्ति) प्रधान देवताओं का रंग शुक्ल रंग ज्ञान, शांति श्री, कीर्ति, सौभाग्य और मुक्ति का दाता है। (३) आग्नेय तत्त्व (शक्ति) प्रधान देवताओं का रंग लाल होता है। लाल रंग वश्य, आकर्षण, शांति, श्री, सौभाग्व, और विजय का दाता है। (४) वायु तत्त्व (शक्ति) प्रधान देवताओं का वर्ण धुआं सा, अथवा हरा होता है इस रंग के कार्य उच्चाटन आदि हैं। (५) आकाश तत्त्व (शक्ति) प्रधान देवताओं का रंग काला अथवा नीला होता है। मारण एवं उत्सादन (उच्चाटन) आदि कार्य करता है।

ऊपर नीचे से खूब दबा लें] यह कार्य करके एकाग्र चित्त से गुरु की बतलाई हुई रीति से भ्रकुटी में देखना चाहिये—२२४

भ्रकुटी में जैसा और जिस रंग का बिन्दु दिखलाई दे वही तत्त्व जानना चाहिये । जैसे यदि पीला रंग हो तो स्वर में पृथ्वी तत्त्व जानें, यदि सफेद रंग हो तो जल तत्त्व जानें, यदि लाल रंग हो तो अग्नि तत्त्व जानें, यदि हरा अथवा नीला रंग हो तो वायु तत्त्व जानें और यदि काला रंग हो तो आकाश तत्त्व जानें । [४७] अर्थात् जैसा वर्ण देखे वैसा तत्त्व जानें, इनके साथ श्वास की

४७—तत्त्वों की पहचान के लिये अन्य उपाय भी हैं सो निम्न प्रकार से जानना चाहिये—

(१) दर्पणेन समालोक्य तत्र श्वासं विनिःक्षिपेत् ।
आकारैस्तु विजानीयात् तत्त्वभेद विचक्षण: ॥१५२
चतुरस्त्रं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्तुलं स्मृतम् ।
बिन्दुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्व लक्षणम् ॥१५३

अर्थ—दर्पण अर्थात् मुंह देखने का कांच अपने होठों के पास लगा कर उसके ऊपर बलपूर्वक अपने श्वास को छोड़ें, ऐसा करने से उस दर्पण पर जिस आकार का चिन्ह पड़े उसे देख कर तत्त्व का निर्णय करें—१५२

यदि समचौरस आकार दिखलाई दे तो पृथ्वी तत्त्व, अर्ध चन्द्र का आकार दिखलाई दे तो जल तत्त्व, त्रिकोण दिखलाई दे तो अग्नि तत्त्व, गोल (अथवा ध्वजा) का आकार दिखलाई दे तो वायु तत्त्व, बिन्दुओं का आकार दिखलाई दे अथवा कोई आकार न हो तो आकाश तत्त्व जानना चाहिये—१५३

[तुलना के लिये देखें इसी ग्रंथ का पद्य नं०—११४-११५]

(२) पांच रंगों की गोलियां (पीली, सफेद, लाल, हरी और काली एक-एक रंग की तथा एक गोली विचित्र (चित्तकबरी) बनाकर इन छह गोलियों को अपने पास रख लेना चाहिये और मन में किसी तत्त्व का विचार करना हो उस समय इन गोलियों में से किसी एक गोली को

गति का प्रमाण देखे और साथ ही[४८] आकार एवं [४९]इच्छा को भी ध्यान में रख कर तत्त्व का निर्णय करें—२२५-२२६

विचार करो कि जिस समय तत्त्व चार अंगुल नासिका से बाहर निकलता है तीखी वस्तु पर चित्त चलता है, प्यास लगती है तो उस समय अग्नि तत्त्व होगा। यदि नीचे लिखे चार्ट के[५०] बारहवें कोठे के विचार से इनके साथ

आंख मीच कर उठा लेना चाहिये। यदि मन में बिचारा हुआ और गोली का रंग एक मिल जावे तो जान लेना चाहिये कि तत्त्व मिलने लगा है।

(३) अथवा किसी दूसरे पुरुष को कहना चाहिये कि तुम किसी रंग का विचार करो। जब वह पुरुष किसी रंग का विचार कर ले उस समय अपने नाक के स्वर में तत्त्वों को देखना चाहिये तथा अपने तत्त्व को विचार कर उस पुरुष के विचारे हुए रंग को बतलाना चाहिये कि तुमने अमुक रंग का विचार किया है। यदि उस पुरुष का विचारा हुआ रंग ठीक मिल जावे तो समझ लेना चाहिये कि तत्त्व ठीक मिलता है।

(नोट) जब तत्त्व को देखना हो तब आसन बिछाकर मूलासन अथवा पद्मासन में वैठ कर चित्त को स्थिर करके देखना चाहिये। ऊपर कही हुई रीतियों से मनुष्य को कुछ दिनों तक तत्त्वों का साधन करना चाहिये। क्यों कि कुछ दिनों के अभ्यास से मनुष्य को तत्त्वों का ज्ञान होने लगता है और तत्त्वों का ज्ञान होने से वह पुरुष कार्याकार्य और शुभाशुभादि होने वाले कार्यों को शीघ्र ही जान सकता है।

४८—अनुसंधान के लिये देखें पद्य नं०—१११-११

४९—अनुसंधान के लिये देखें पद्य नं०—२५३

५०—कांति संगम आलस्य भूख प्यास जो होय।
चरणदास पांचों कही, अग्नि तत्त्व सों जोय ॥१६१॥
रक्त वीर्य कफ तीसरो, मेद मूत्र को जान।
चरणदास परकिरत यह, पानी सों पहिचान ॥१६२॥
चाम हाड़ नख कहूं, रोम जान अरु मांस।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२					१३	१४
तत्त्व का नाम	तत्त्व का रंग	तत्त्व का गुण	तत्त्व का समय	तत्त्व की चाल का प्रमाण तथा आकार	तत्त्व का बीज	तत्त्व का रस (स्वाद)	तत्त्व की प्रकृति (स्वभाव)	तत्त्व का द्वार	तत्त्व का भोजन	तत्त्व का स्थान	एक तत्त्व में पांच तत्त्व मिलते हैं तथा उनकी प्रकृति के गुण अलग भेद। नभ	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी	दिशों की प्रीतिष्ठता	दिशों में कार्यों की प्रधानता
आकाश	काला	स्थिर	१० पल (४ मिनट)	नासिका के भीतर रहता है और बाहर नहीं आता। आकार कोई नहीं।	हौं	कड़वे स्वाद की चाह	स्थिर	दोनों कान	शब्द	सिर में रहता है	मोह	काम	क्रोध	लाज	मद	^	ध्यान अथवा कोई कार्य न करें
वायु	हरा अथवा नीला	रजोगुण	२० पल (८ मिनट)	टेढ़ा होकर नासिका से आठ अंगुल बाहर आता है। आकार = ध्वजा समान।	यैं	खट्टे वस्तु की चाह	चर	दोनों नासिकाएं	सूंघना	नाभि में रहता है	बल करना	उठना-बैठना	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	मारण उच्चाटन कार्य करें
अग्नि	लाल	तमोगुण	३० तीस पल (१२ मिनट)	ऊँचा होकर नासिका से चार अंगुल बाहर आता है। आकार = त्रिकोण	रैं	तीखी वस्तु की चाह	तप्त	दोनों नेत्र	देखना	कन्धा में रहता है	नींद	अंगड़ाई कांति	भूख	प्यास	आलस	दक्षिण दिशा में	[illegible]
जल	सफेद	सतोगुण	४० पल (१६ मिनट)	नीचे होकर नासिका से सोलह अंगुल बाहर आता है। आकार = अर्द्ध-चन्द्र जैसा	पैं	कसैली वस्तु की चाह	शीतल	लिंग	मैथुन	पग में रहता है	वीर्य	पेशाब	लहू	पसीना अथवा लार	थूक	पश्चिम दिशा में	चर कार्य तथा सब प्रकार उत्तम कार्य
पृथ्वी	पीला	सतोगुण	५० पल (२० मिनट)	सामने नासिका से बारह अंगुल बाहर आता है। आकार = समचौरस	लैं	मीठी वस्तु की चाह	कठिन (कठोर)	गुदा द्वार	भोजन	जांघ में रहता है	रोम	मांस	नस अथवा नाड़ी	चाम	हाड	पूर्व दिशा में	स्थिर कार्य तथा सम्मान आदि कार्य
पद्य नम्बर	पद्य संख्या	स्वरोदय पद्य १२	पद्य नम्बर	पद्य नम्बर	पद्य संख्या	पद्य नम्बर	शिवस्वरोदय से	पद्य नम्बर	पद्य नम्बर	पद्य नम्बर	चरणदास कृत ज्ञानस्वरोदय से पद्य नम्बर १६० से					पद्य नम्बर	पद्य नम्बर
१०६	११०	[illegible]	११६	१११ से ११५	६४,६५	२२४ ३२६		२३१,२३२	२३२	२३२	१६६					[illegible]	२३१

(नोट।) इस पद्य को देखने से बुद्धिमान मनुष्य प्रत्येक तत्त्व को सहज ही में पहचान सकता है। उदाहरण स्वरूप देखें कोष्ठक नम्बर ५ तथा ८ ने [illegible]

अंगड़ाई भी आती हो तो अग्नि तत्त्व में पवन तत्त्व है। ५ प्यास भी लगती हो तो अग्नितत्त्व में है ऐसे ही सब तत्त्वों का विचार बुद्धि पूर्वक हो सकता है।

पृथ्वी की परकिरत यह, अन्त सबन को नास ॥१६३॥
बल करना अरु धावना, उठना अरु संकोच।
देह बढ़े सो जानिये, वायु तत्त्व है सोच ॥१६४॥
काम क्रोध मोह लोभ, मद आकाश को भाग।
नभ की पांचों जानियै, नित न्यारो तु जाग ॥१६५॥
पांच पचीसों एक ही, इन के सकल स्वभाव।
निर्विकार तू ब्रह्म है, आप आप को पाव ॥१६६॥

अर्थ—(१) कांति, संगम (अंगड़ाई) आलस्य भूख और प्यास ये पांचों अग्नि तत्त्व में होते हैं।१६१

(२) लहू, वीर्य, थूक, पसीना अथवा चर्बी, मूत्र ये पांचों जल तत्त्व में होते हैं।१६२

(३) चाम, हाड, नख अथवा नाड़ी, रोम और मांस ये पांचों पृथ्वी तत्त्व में होते हैं।१६३

(४) बल करना, दौड़ना, उठना, चलना-बढ़ना, सिमटना, संकोच करना, हिलना, ये पांचों वायु तत्त्व में होते हैं।१६४

(५) काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद ये पांचों आकाश तत्त्व में होते हैं।१६५

पांच तत्त्वों में एक-एक तत्त्व में पांच-पांच तत्त्व भुगतते हैं उन की प्रकृति को ऊपर लिखे कोष्टक में स्पष्टतया समझा दिया है। कुल पच्चीस तत्त्व एक ही स्वर में होते हैं। परन्तु तू तो इनसे परे निर्विकार ब्रह्मस्वरूप है अपने स्वरूप को पहचान। (रणजीत-चरणदास कृत स्वरोदय)

५१—अग्नि तत्त्व गुण तामसी, कही रजोगुण वाय।
पृथ्वी नीर सतोगुणी, नभ है स्थिर भाय ॥२१२॥

अर्थ—अग्नि तत्त्व तमोगुणी है, वायु तत्त्व रजोगुणी है, पृथ्वी तथा जल तत्त्व सतोगुणी है तथा आकाश तत्त्व स्थिर है—२१२ (चरणदास स्वरोदय)

हानि लाभ विचारने का भेद

हम पहले लिख आये हैं कि स्वरों के तीन भेद हैं और तिथि वार आदि एक-एक के संग जुदा-जुदा हैं उनको स्पष्ट समझाने के लिये पांच कोठों का यन्त्र लिखा जाता है। पहले कोठे में पद्य नं० दूसरे कोठे में स्वर, पक्ष, वारादि

पद्य नंबर	स्वरादि के नाम	पिंगला के संगतियों के नाम	इंगला की संगतियों के नाम	सुखमना के भेद
१४ से १८	स्वरों के नाम	पिंगला अथवा सूर्य दाहिने स्वर का नाम है। इसकी प्रकृति गरम है।	इड़ा, इंगला अथवा चन्द्र बायें स्वर का नाम है। इस की प्रकृति सौम्य (ठंडी है)	दोनों स्वर चलते हैं।
१९ से २२ तक	पक्षों तथा तिथियों के नाम	कृष्ण पक्ष १५ दिनों में ९ दिन सूर्य के और ६ दिन चन्द्र के हैं जो कि मनुष्य की देह में अपना अपना काम करते हैं। सूर्य के दिन मान= १/२/३/७/८/९/१३/१४/अमावस चन्द्र के दिनमान = ४/५/६/१०/११/१२	शुक्लपक्ष १५ दिनों में ९ दिन चन्द्र के और ६ दिन सूर्य के मनुष्य के शरीर मे अपना अपना राज करते हैं। चन्द्र के दिन= १/२/३/७/८/९/१३/१४/पूर्णमाशी/ सूर्य के दिन= ४/५/६/१०/११/१२	
२३	वारों के नाम	मंगल, शनि, रविवार	सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार	
२१५, २१६	दिशाएं	पूर्व, उत्तर	पश्चिम, दक्षिण	
२४, २५	ओर (तरफ)	पीछे, दाहिने, नीचे	आगे, ऊंचे, बायें	
१०८	तत्वनाम	अग्नि, पवन, आकाश	पृथ्वी, जल	
४४ से ४६	प्रश्न के अक्षर	विषम अक्षर जैसे- १, ३, ५, ७, ९, ११, १३, २१,	सम अक्षर जैसे— २, ४, ६, ८, १०, १२, २०, २४	
३० से ३३	राशियों के नाम	मेष, कर्क, तुला, मकर	वृष, सिंह, वृश्चिक, कुंभ	मिथुन, कन्या, धन, मीन
गमन—(चलते) समय		दायें तीन कदम आगे धरें	बायें चार कदम आगे धरें	कहीं न जावें

के नाम बतलाये हैं। तीसरा कोठा पिंगला का है। इसके नीचे के कोठों में उसके संगतियों का व्योरा दिया है। इसी प्रकार चौथा कोठा इंगला नाड़ी का तथा पांचवां कोठा सुखमना नाड़ी का है। इन तीनों स्वरों के संगती उनके नीचे घरों में है—

तत्त्वों के विषय में कुछ आवश्यक बातें

दोहा—प्रथम वायु सुर में बहे, दुतिये अगन वखान ।
तीजी भू चौथो सलिल, नभ पंचम मन आन ॥२२७॥
वाम दिशा थी सुर उठी, बहे पिंगला मांहि ।
ताकु संक्रम कहत हैं, या में संशय नांहि ॥२२८॥
तत्त्व उदक भू शुभ कहे, तेज मध्य फलदाय ।
हानि मृत्यु दायक सदा, मारुत व्योम कहाय ॥२२९॥
ऊर्ध्व अधो अरु मध्य पुट, तिर्छा संक्रम रूप ।
पंच तत्त्व यह बहत है, जानो भेद अनूप ॥२३०॥
ऊर्ध्व मृत्यु शान्ति अधो, उच्चाटन तिरछाय ।
मध्य स्तभन नभ विषय, वरजित सकल उपाय ॥२३१॥
जंघ मही नाभी अनिल, तेज खंध जल पाय।
मस्तक में नभ जानजो, दिये स्थान बताय ॥२३२॥
थिर काजे प्रधान भू चर में सलिल विचार ।
पावक क्रूर कारज विषय, वायु उच्चाटन मार॥२३३॥
व्योम चलत कारज सहू, करियें नांहि मीत ।
ध्यान योग अभ्यास की, धारो या में रीत ॥२३४॥
पश्चिम दक्षिण जल मही, उत्तर तेज प्रधान ।
पूरब वायु बखानजो, नभ कहिए थिरथान ॥२३५॥
धीरज सिद्धि पृथ्वी विषय, जल सिद्धि तत्काल ।
हीन वायु अग्नि थकी, काज निष्फल नभ भाल ॥२३६॥
सिद्धि पृथ्वी उदक विषय, मृत्यु अगन विचार ।
क्षयकारी वायु सिद्धि, नभ निष्फल चित्तधार ॥२३७॥

अर्थ—(१) स्वर में प्रथम वायु तत्त्व, दूसरे अग्नि तत्त्व, तीसरे पृथ्वी तत्त्व चौथे जल तत्त्व, और पांचवें आकाश तत्त्व क्रमशः एक-एक स्वर में बहते हैं—२२७

(२) बांई तरफ से स्वर उठकर पिंगला में बहने लगे तो उसे संक्रम कहते हैं। इसमें संशय नहीं है—२२८

(३) पृथ्वी और जल तत्त्व शुभ है, अग्नि तत्त्व मध्यम (मिश्र) फल दाता है, वायु तत्त्व हानि करता है, तथा आकाश तत्त्व मृत्यु दायक है—२२९

(४) पृथ्वी तत्त्व सामने, जल तत्त्व नीचे, अग्नि तत्त्व ऊंचे, वायु तत्त्व टेढ़ा, तथा आकाश तत्त्व नासापुट में संक्रम करता है। इस प्रकार पांचों तत्त्व बहते हैं—२३०

(५) ऊर्ध्वतत्त्व में मृत्यु, अधो तत्त्व में शांति, तिरछे तत्त्व में उच्चाट, मध्य तत्त्व में स्तम्भन के कार्य करने चाहिए तथा नभ तत्त्व में कोई काम नहीं करना चाहिए—२३१

(६) पृथ्वी तत्त्व जांघ में, वायु तत्त्व नाभि में, अग्नि तत्त्व कन्धों में, जल तत्त्व पांव में, तथा नभ तत्त्व सिर में वास करते हैं। तत्त्वों के स्थान इस पद्य में बतला दिए हैं—२३२

(७) स्थिर कार्य पृथ्वी तत्त्व में, चर कार्य जल तत्त्व में, क्रूर कार्य अग्नि तत्त्व में, उच्चाटन और मारण कार्य वायु तत्त्व में करने चाहिए। आकाश तत्त्व में कोई कार्य नहीं करना चाहिए। आकाश तत्त्व में मात्र ध्यान ईश्वर भजन, तथा योगाभ्यास करना चाहिए[५२] —२३३-२३४

५२—पद्य नं० २३३-२३४ के वर्णन के अतिरिक्त ज्ञानावर्णव प्र० २९ में इस प्रकार से कहा है—

स्तम्भनादिके महेन्द्रो, वरुणः शस्तेषु सर्व कार्येषु।
चल मलिनेषु च वायुर्वश्यादौ वह्निरुद्देश्यः ॥२८॥

अर्थ—पुरुष को स्तम्भानादि कार्य करने हों तो पृथ्वीमंडल का पवन शुभ है। जल मंडल का पवन समस्त प्रकार के उत्तम कार्यों में शुभ है तथा वायु मंडल का पवन चल कार्यों तथा मलिन कार्यों में श्रेष्ठ है तथा वश्यादि कार्यों में अग्नि मंडल का पवन उत्तम है।

(८) पश्चिम दिशा में जल तत्त्व बलिष्ठ है । दक्षिण दिशा में पृथ्वी तत्त्व बलिष्ठ है । पूर्व दिशा में वायु तत्त्व बलिष्ठ है । उत्तर दिशा में अग्नि तत्त्व बलिष्ठ है । और आकाश स्थिर स्थान में बलिष्ठ[५३] है—२३५

(९) पृथ्वी तत्त्व में कार्य की सिद्धि धीरे-धीरे हो, जल तत्त्व में कार्य की सिद्धि तत्काल हो, पवन तत्त्व हो तो थोड़ा लाभ हो, अग्नि तत्त्व हो तो सिद्ध हुआ कार्य भी नष्ट हो जावे, आकाश तत्त्व में कोई कार्य सिद्ध न हो—२३६

(१०) पृथ्वी तथा जल तत्त्व में सिद्धि, अग्नि तत्त्व में मृत्यु, वायु तत्त्व में क्षयकारी, तथा आकाश तत्त्व निष्फल है—२३७

प्रश्न समय उत्तरदाता के स्वरों से प्रश्नकर्त्ता को फल

(दोहा) संग्रामादिक कृत्य में, प्रबल हुताशन होय ।
चन्द्र स्वर संग्रह विषय, फलदायक अति जोय ।।२३८।।
जीवित[५४] जय धन लाभ पुत्र, मित्र अर्थ जुध रूप ।
गमनागमन विचार में, जानो मही अनूप ।।२३९।।
कलह[५५] शोक दुःख भय तथा मरण कछु हुइ उत्पात ।

५३—शिवस्वरोदय ज्ञान में तत्त्व की बलिष्ठता के विषय में निम्न मतहै—

पूर्वायां पश्चिमे याम्यां उत्तरस्यां यथाक्रमम् ।
पृथिव्यादीनि भूतानि, बलिष्ठानि विनिर्दिशेत् ।।१९०।।

अर्थ—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चारों दिशाओं में क्रम से पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चारों तत्त्व बलिष्ठ हैं ।

५४—छत्र-गज-तुरग-चामर रामा-राज्यादि सकल कल्याणम् ।
माहेन्द्रो वदति फलं मनोगतं सर्वकार्येषु ।।२९।। (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—माहेन्द्र पवन (पृथ्वी मंडल) छत्र, हाथी, घोड़ा, चामर, स्त्री, राज्यादि समस्त कल्याणों को कहता है तथा समस्त कार्यों में मनोगत भावों को प्राप्त कराता है अर्थात् मन में विचारे हुए कार्यों की सिद्धि करता है—२९

५५—सिद्धमपि याति विलयं, सेवा कृष्यादिकं समस्तमपि चैव ।
मृत्यु-भय-कलह-वैरं पवने त्रासादिकं च स्यात् ।।३२।। (ज्ञानार्णवे)

संक्रम भाव समीर में, फल दृष्टि जु विख्यात् ॥२४०॥

राजनाश[56] पावक चलत, पृच्छक नर की हान।
दुर्भिक्ष हो महितत विषय, रोगादिक फुनि जान ॥२४१॥

दुर्भिक्ष घोर विग्रह सुधि, देश भंग भय जान।
चलत वायु आकाश तत, चौपद हानि बखान ॥२४२॥

माहेन्द्र वरुण[57] जुग जोग में, घन-वृष्टि अति होय।
राज-वृद्धि परजा-सुखी, समय श्रेष्ठ अति होय ॥२४३॥

मही उदक दोऊ विषय, चन्द्रथान तिथि रूप।
चिदानन्द फल तेहनुं, जानो परम अनूप ॥२४४॥

अर्थ—१. युद्धादि प्रश्न में अग्नि तत्त्व प्रबल है। महायुद्ध में वैरी हार प्राप्त करे।

२. संग्रह करने के लिए चन्द्र स्वर उत्तम फलदाता है—२३८

३. जीवन, जय, धन, लाभ, पुत्र, मित्र, अर्थ, युद्ध, गमनागमन जाने-आने

अर्थ—वायु मंडल के पवन बहने पर सेवा, कृषि आदि समस्त कार्य सिद्ध हुए हों वे भी नष्ट हो जाते हैं। तथा मृत्यु भय, कलह, वैर, त्रासादिक होते हैं—३२

५६—भय-शोक-दुःख-पीड़ा—विघ्नौघपरम्परां विनाशं च।
व्याचष्टे देहभृतां दहनो दाहस्वभावोऽयम् ॥३१॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—यह अग्नि मंडल का पवन दाह स्वभाव रूप है। यह पवन जीवों को भय, शोक, दुःख, पीड़ा तथा विघ्न समूह की परम्परा तथा विनाशादिक कार्यों को प्रगट कहता है—३१

५७—अभिमतफलानि कुरम्बं विद्यावीर्यादि भूति संकर्णम्।
सुतयुवति वस्तुसारं वरुणो योजयति जन्तूनाम् ॥३०॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—जल पवन जीवों को विद्या वीर्यादि विभूति सहित तथा पुत्र स्त्री आदि में जो सार वस्तु मनोवांछित हो उन सबको प्राप्त कराता है—३०

में पृथ्वी तत्त्व श्रेष्ठ है—२३९

४. वायु तत्त्व में कलह, शोक, दुःख, भय, मृत्यु, उत्पात आदि फल होता है—२४०

५. अग्नि तत्त्व में प्रश्न करता को हानि, राज का नाश, पृथ्वी पर दुर्भिक्ष रोगादि की उत्पत्ति होती है—२४१

६. स्वर में आकाश तत्त्व चलने से दुर्भिक्ष, घोर विग्रह, देश भंग का भय, और चौपायों का नाश हो—२४२

७. पृथ्वी और जल तत्त्व हो तो वर्षा अच्छी हो, राज वृद्धि हो, प्रजा सुखी तथा समय अति श्रेष्ठ होगा—२४३

८. यदि पृथ्वी और जल तत्त्व के साथ चन्द्र तिथि का योग हो जाय तो चिदानन्द जी कहते हैं कि इसका फल बहुत ही उत्तम होता है—२४४

तत्त्वों में पदार्थों की चिन्ता

(दोहा) मही मूल चिन्ता लखो, जीव वायु जल धार।
तेज धातु चिन्ता लखो, शुन्य आकाश विचार।।२४५।।
बहु-पाद पृथ्वी विषय, जुगपद जल अरु वाय।
अग्नि चतुष्पद नभ उदय, विगत चरण कहवाय।।२४६।।

अर्थ—यदि पृथ्वी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि पूछने वाले के मन में मूल की चिन्ता है। यदि जल तत्त्व अथवा वायु तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि पूछने वाले के मन में जीव की चिन्ता है। यदि अग्नि तत्त्व हो तो धातु की चिन्ता जाननी चाहिए। यदि आकाश तत्त्व हो तो विचार शून्य जानना चाहिए—२४५

यदि पृथ्वी तत्त्व हो तो बहुत पैरों वाले की चिन्ता जाननी चाहिए। यदि जल तत्त्व अथवा वायु तत्त्व हो तो दो पैरों वाले की चिन्ता जानना। यदि अग्नि तत्त्व हो तो चौपायों की चिन्ता जानना चाहिए। यदि आकाश तत्त्व हो तो बिना पैर के पदार्थ की चिन्ता जानना चाहिए—२४६

पांचों तत्त्वों के स्वामी ग्रह तथा वार

(दोहा) रवि राहु कुज तीसरो, शनि चतुर्थ बखान।
पंच तत्त्व के भानु घर, स्वामी अनुक्रम जान।।२४७।।

बुध पृथ्वी जल को शशि, शुक्र अग्निपति मीत।
वायु गुरु सुर चन्द में, तत्त्व स्वामि इन रीत ॥२४८॥
स्वामी अपनो आपनो, अपने घर के मांहि।
शुभ फलदायक जानजो, या में संशय नांहि ॥२४९॥

अर्थ—रवि, राहु, मंगल और शनि ये चार सूर्य स्वर के तत्त्वों के स्वामी हैं। अर्थात् पृथ्वी तत्त्व का स्वामी रवि है जल तत्त्व और वायु तत्व का स्वामी राहु है। अग्नि तत्त्व का स्वामी मंगल है। तथा आकाश तत्त्व का स्वामी शनि है—२४७

पृथ्वी तत्त्व का स्वामी बुध, जल तत्त्व का स्वामी चन्द्र, अग्नि तत्त्व का स्वामी शुक्र, और वायु तत्त्व का स्वामी गुरु है—२४८

इसलिए अपने-अपने तत्त्वों में ये ग्रह अथवा वार शुभ फलदाता है—२४९

चन्द्र स्वर की अवस्थाएं

दोहा—जय तुष्टि पुष्टि रति क्रीड़ा हास्य कहाय।
इम अवस्था चन्द्र की, षट् जल भू में थाय ॥२५०॥
ज्वर निद्रा प्रयास फुन, कम्प चतुर्थ पिछान।
वदे अवस्था चन्द की, वायु अग्नि में जान ॥२५१॥
प्रथम गतायु दूसरी मृत्यु नभ के संग।
कही अवस्था चन्द की, द्वादश एम अभंग ॥२५२॥

अर्थ—जय, तुष्टि, पुष्टि, रति, खेलकूद, हास्य ये छः अवस्थाएं चन्द्र स्वर में पृथ्वी तत्त्व और जल तत्त्व में होती हैं—२५०

ज्वर, निन्द्रा, परिश्रम और कम्पन जब चन्द्र स्वर में वायु तत्त्व अथवा अग्नि तत्त्व चलता हो उस समय शरीर में ये चार अवस्थाएं होती हैं—२५१

जब चन्द्र स्वर में आकाश तत्त्व चलता है तब आयु का क्षय और मृत्यु होती है। पांचों तत्त्वों में कुल मिलाकर ये बारह अवस्थाएं चन्द्र की होती हैं—२५२

पांच रसों की तत्त्वों द्वारा पहचान

दोहा—मधुर कसायल तिक्त फुन, खारा रस कहवाय।
नभ कटुक रस पंच के, अनुक्रम दिये वताय ॥२५३॥

जैसा रस आस्वाद की, होय प्रीत मन मांहि ।
तैसा तत्त्व पिछानिये, शंका करजो नांहि ।।२५४।।

अथ—पृथ्वी तत्त्व में मधुर, जल तत्त्व में कसायला, वायु तत्त्व में तीखा, अग्नि तत्त्व में खारा, तथा आकाश तत्त्व में कड़वा स्वाद की चाह होती है। यहां पर पांचों तत्त्वों के रस अनुक्रम से बतला दिये गये हैं—२५३

जिस समय जैसे रस के स्वाद की इच्छा मन में हो उस समय उसी तत्त्व को स्वर में समझना चाहिए । इसमें ज़रा भी शंका को स्थान नहीं है—२५४

तत्वों में नक्षत्र

दोहा—श्रवण धनिष्टा रोहिणी, उत्तराषाढ़ा ऽभीच ।
ज्येष्ठा अनुराधा सप्त, श्रेष्ठ मही के बीच ।।२५५।।
मूल उत्तरा-भाद्रपद, रेवती आद्रा जान ।
पूर्वाषाढ़ अरु शतभिषा, अश्लेषा जल ठान ।।२५६।।
मघा पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वा-भाद्रपद स्वात ।
कृतिका भरणी पुष्य ये, सप्त अग्नि विख्यात ।।२५७।।
हस्त विशाखा मृगशिरा, पुनरवसु चित्राय ।
उत्तराफाल्गुण अश्विनी, अनिल धाम सुखदाय ।।२५८।।

अर्थ—१. श्रवण, धनिष्टा, रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, अभिजित, ज्येष्ठा, और अनुराधा ये सात नक्षत्र पृथ्वी तत्त्व के हैं तथा शुभ फलदायी हैं—२५५

२. मूल, उत्तरा भाद्रपद, रेवती, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा और अश्लेषा ये सात नक्षत्र जल तत्त्व के हैं—२५६

३. मघा, पूर्वाफाल्गुणी, पूर्वभाद्रपद, स्वाति, कृतिका, भरणी और पुष्य ये सात नक्षत्र अग्नि तत्त्व के हैं—२५७

४. हस्त, विशाखा, मृगशिरा, पुनरवसु, चित्रा, उत्तराफाल्गुणी और अश्विनी ये सात नक्षत्र वायु तत्व के हैं—२५८

स्वरों में तत्त्वों का क्रम

दोहा—नभ थी पवन-पवन थकी पावक तत परकास ।
पावक थी पानी लखो, मही लखो फुनि तास ।।२५९।।

अर्थ—आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथ्वी तत्त्व का प्रकाश होता है—२५९

तत्त्वों में गुणों की उत्पत्ति

दोहा—क्रोधादिक अग्नि उदय, इच्छा वायु मंझार।
क्षान्त्यादिक गुण मन विषय, जल भू मांहि विचार ॥२६०॥

अर्थ—अग्नि तत्त्व में क्रोध का उदय, वायु तत्त्व में इच्छा का उदय, जल और पृथ्वी तत्त्व में क्षमादि[५८] दस प्रकार के यति धर्म रूप दस गुणों की उत्पत्ति होती है—२६०

तत्त्वों के द्वार

दोहा—गुदा द्वार धरती तणो, लिंग उदक नो जान।
तेज द्वार चक्षु सुधी, वायु घ्राण बखान ॥२६१॥
श्रवण द्वार नभ का कह्या, शब्दादिक आहार।
चिदानन्द इन पांच को, जानो उर निहार ॥२६२॥

अर्थ—पृथ्वी तत्व का द्वार गुदा है, जल तत्त्व का द्वार लिंग है, अग्नि तत्त्व का द्वार नेत्र है, वायु तत्त्व का द्वार नासिका है—२६१

आकाश तत्त्व का द्वार कान है, इनके शब्दादिक आहार हैं। चिदानन्द जी महाराज कहते हैं कि इनको अपने मन में चिन्तन करो—२६२

युद्ध के लिए प्रस्थान

दोहा—चन्द्र[५९] चलत नहीं चालिए, युद्ध करन कुं मीत।
चलत चन्द में तेहना, शत्रु की होय जीत ॥२६३॥

५८—दस प्रकार के यति धर्म—क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य।

५९—घोरतरः संग्रामो हुताशने, मारुति भंग एव स्यात्।
गगने सैन्य विनाशं, मृत्युर्वा युद्ध पृच्छायाम् ॥५६॥
ऐन्द्रे विजयः समरे ततोऽधिको वाञ्छितश्च वरुणे स्यात्।
सन्धिर्वा रिपुंभंगात्स्वसिद्धिसंसूचनोपेतः ॥५७॥　　(ज्ञानार्णवे)

दिवसपति स्वर मांहि जो, युद्ध करन कुं जाय।
विजय लहे संग्राम में, शत्रु सेन पलाय।।२६४।।
अपना सुर दक्षिण चले, शत्रु का फुनि तेह।
जीत लहे संग्राम में, प्रथम चढ़े नर जेह।।२६५।।
शशि चलत कोऊ भूपति, मत जावो रण मांहि।
खेत जीत अरियण लहे, या में संशय नांहि।।२६६।।
सुखमन सुर संग्राम में, होय शीश पर वार।
निकस युद्ध में प्राण जो, कौन बचावन-हार।।२६७।।
दूर देश संग्राम में, जातां शशि परधान।
निकट युद्ध में जानजो, जयकारी स्वर भान।।२६८।।

अर्थ—१. हे मित्र ! चन्द्र स्वर चलते हुए युद्ध करने के लिए कदापि नहीं जाना चाहिए। यदि चन्द्र स्वर चलते समय युद्ध करने को जाओगे तो शत्रु की जीत होगी—२६३

२. यदि कोई सूर्य स्वर चलते समय लड़ाई करने को जाएगा तो उसकी अवश्य जीत होगी। और शत्रु की सेना मैदान छोड़कर भाग जाएगी—२६४

३. यदि अपना और शत्रु दोनों के दक्षिण (सूर्य) स्वर चलते हों तो जो नर पहले चढ़ाई करे उसकी जीत हो—२६५

४. चन्द्र स्वर में युद्ध करने को कभी नहीं जाना चाहिए। जो व्यक्ति जाएगा वह अवश्य हारेगा और शत्रु की जीत होगी। यह निःसन्देह है—२६६

५. सुखमन स्वर में गमन करने वाले के सिर का छेदन होगा जिससे वह लड़ाई में मारा जाएगा। उसे कोई भी नहीं बचा सकता—२६७

६. बहुत दूर देश में संग्राम के लिए चन्द्र स्वर में तथा निकट देश में सूर्य स्वर में प्रस्थान करना चाहिए। ऐसा करने से अपनी विजय होगी—२६८

अर्थ—युद्ध के प्रश्न में अग्नि तत्त्व में तीव्र संग्राम, वायु तत्त्व में भंग होना, आकाश तत्त्व में सेना का विनाश अथवा मृत्यु कहे—५६

पृथ्वी तत्व में संग्राम विजय, जल तत्त्व में वांछित से भी अधिक जय, अथवा सन्धि हो तथा शत्रु के भंग होने से अपनी सिद्धि की सूचना करे—५७

युद्ध के विषय में प्रश्न

दोहा—सन्मुख[६०] उर्ध्व दिशा रही, युद्ध प्रश्न करे कोय।
सम अक्षर शशि सुर हुआ, जीत तेहनी होय ॥२६९॥

पूछे दक्षिण पूठ थी, दूत प्रश्न करे कोय।
विषमाक्षर भानु हुआ, खेत विजय लहे सोय ॥२७०॥

युद्ध युगल की पूर्ण दिशी, रही प्रश्न करे कोय।
प्रथम नाम जस उच्चरे, जीत लहे नर सोय ॥२७१॥

रिक्त पक्ष में आय के, मिथुन युद्ध परसंग॥
पूछत[६१] पहिला हारि है, दूजा रहत अभंग ॥२७२॥

युद्ध प्रयाण के विषय में प्रश्न

करत युद्ध परियाण वा, रिक्त मांहि लहे हार।
अल्प बली भूपति थकी, महाबली चित्त धार ॥२७३॥

६०—पूर्णे पूर्वस्य जयो रिक्ते त्वितरस्य कथ्यते तज्ज्ञैः।
उभयोर्युद्धनिमित्ते दूते नाशंसिते प्रश्ने ॥४७॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—कोई दूत आकर युद्ध के निमित्त भरे स्वर में प्रश्न करे तो पहले पूछने वाले की जीत हो। यदि रिक्त (खाली) स्वर में पूछे तो दूसरे की जय हो और दोनों चलें तो दोनों की जय हो—४७

६१—जयति समाक्षरनामा वामावाहस्थितेन दूतेन।
विषमाक्षरस्तु दक्षिणदिक्संस्थेनास्त्रसंपाते ॥४९॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—दूत आकर जिसके लिए पूछे उसके नाम के अक्षर सम हों (दो चार, छः, चौदह इत्यादि) और बांई नाड़ी बहती हुई की तरफ खड़ा होकर पूछे तो शस्त्रपात होते हुए भी जीते तथा जिसके नाम के विषमाक्षर (१, ३, ५ इत्यादि) हों और दाहिनी नाड़ी बहती हुई में खड़ा रहकर पूछे तो उसकी भी जीत हो। इस प्रकार जय पराजय के प्रश्न का उत्तर कहें—४९

महा कटक सन्मुख चले, थोड़ा सा दल जोड़ ।
पूरण तत प्रकाश में, जीत लहे विधि कोड़ ॥२७४॥

अर्थ—१. यदि कोई चन्द्र स्वर चलते समय—सामने अथवा ऊंचे रहकर लड़ाई के विषय में प्रश्न करे और प्रश्न के अक्षर सम (२, ४, ६, ८, १० इत्यादि) हों तो कह देना चाहिए कि तुम्हारी जीत होगी—२६९

२. यदि कोई दाहिने अथवा पीछे रहकर लड़ाई के विषय में प्रश्न करे और प्रश्न के अक्षर विषम (१, ३, ७, ९ इत्यादि) हों और उस समय सूर्य स्वर चलता हो तो कह देना चाहिए कि तुम्हारी जीत होगी—२७०

३. यदि कोई युद्ध के विषय में पूर्ण स्वर की तरफ से आकर दोनों पक्ष के लिए प्रश्न पूछे तो जिसका नाम पहले बोले उसकी जीत होगी—२७१

४. यदि खाली स्वर की तरफ से दोनों पक्षों के लिए युद्ध का प्रश्न करे तो जिसका नाम पहले लिया जाएगा उसकी हार होगी और दूसरे पक्ष की जीत होगी—२७२

१. अथवा यदि खाली स्वर में युद्ध के लिए प्रयाण करे तो महाबली राजा भी अल्पबली से हार जाए—२७३

२. यदि पूर्ण स्वर में युद्ध के लिए प्रयाण करे तो उसके पास थोड़ी-सी सेना होने पर भी बहुत बड़ी सेना को हराकर सब प्रकार से विजय प्राप्त करे—२७४

युद्ध करने तथा युद्ध प्रयाण के विषय में पश्न

दोहा—मही तत्त्व में युद्ध वा, करे प्रश्न परियाण ।
दोऊ दल सम उतरें, इम निश्चय करि जान ॥२७५॥
करे प्रश्न परियाण वा, वरुण तत्त्व के मांहि ।
दोय मिलें तिहां परस्पर, युद्ध जानजो नांहि ॥२७६॥
महि उदक होय एक कुं, दूजा कुं जो नांहि ।
महि वरुण तिहां जीतिये, या में संशय नांहि ॥२७७॥
प्रश्न करे अथवा लड़े, अथवा करे प्रयाण ।
बहत हुताशन तेहनी, रण में होवे हान ॥२७८॥

प्रश्न पयाण जुध करे, अनिल तत्त्व में कोय।
निश्चय थी संग्राम में, भागे पहला सोय ॥२७९॥
व्योम बहत कोऊ भूपति, करे प्रश्न परियाण।
अथवा युद्ध तिण अवसरे, करत मरण तस जान ॥२८०॥
चन्द्र चलत भूपति मरण, सम जोधा रवि मांहि।
वायु बहत भाजे कटक, संशय करजो नांहि ॥२८१॥
नाम ध्येय सदृश कही, पूछे पूरण मांहि।
प्रथम नाम जस उच्चरे, तस जय संशय नांहि ॥२८२॥

अर्थ—(१) यदि पृथ्वी तत्त्व में कोई युद्ध के लिए प्रश्न करे अथवा युद्ध के प्रयाण के लिए प्रश्न करे या प्रयाण करे तो कह देना चाहिए कि दोनों दल बराबर रहेंगे—२७५

(२) यदि प्रश्न कर्त्ता युद्ध में जाने के लिए प्रश्न पूछे और उत्तर देने वाले के स्वर में जल तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि दोनों दलों में सन्धि होगी—२७६

(३) पृथ्वी तत्त्व अथवा जल तत्त्व का एक को उदय हो और दूसरे को उदय न हो तो जिसका उदय हो उसकी जीत हो इसमें सन्देह नहीं—२७७

(४) युद्ध के लिए प्रश्न करे, लड़ाई करे अथवा प्रयाण करे उस समय यदि अग्नि तत्त्व बहता हो तो उसकी युद्ध में अवश्य हार हो—२७८

(५) यदि वायु तत्त्व में कोई युद्ध के लिए प्रश्न करे, लड़ाई करे अथवा युद्ध के लिए प्रयाण करे तो उसे युद्ध में हार कर भागना पड़ेगा—२७९

(६) आकाश तत्त्व में कोई राजा युद्ध के लिए प्रश्न करे, लड़ाई करे अथवा युद्ध के लिए प्रयाण करे तो युद्ध में उस राजा की मृत्यु होगी—२८०

(७) चन्द्र स्वर चलते समय युद्ध सम्बन्धी प्रश्न करे, लड़ाई करे अथवा प्रयाण करे तो राजा की मृत्यु हो। सूर्य स्वर में यदि वायु तत्त्व बहता हो तो बराबर के योद्धा होते हुए भी प्रश्नादि कर्ता की सेना हार खाकर भाग जावे। इसमें संशय नहीं है—२८१

(८) पूर्ण नाड़ी में दोनों के नाम लेकर प्रश्न करे तो जिसका पहले नाम

लेवे उसकी जय हो, इसमें संशय नही—२८२

युद्ध में घायल सम्बन्धी प्रश्न

दोहा—रण में जो घायल हुए, तेहनी पूछे बात।
चिदानन्द ते पुरुष कुं, उत्तर एम कहात ॥२८३॥
अपनी दिशा से आयके, पूछे पूरण मांहि।
जास नाम कहे तास सुन, घाव जानजो नांहि ॥२८४॥
पूछे खाली सुर विषय, घायल का परसंग।
जस पूछे तस रण विषय, घाव कहिजे अंग ॥२८५॥
पृथ्वी उदर बताइये, जल चलता पग जान।
पावक उर हिरदय विषय, वायु जंघा बखान ॥२८६॥
घाव शीश में जानजो, चलत तत्त्व आकाश।
सुर में तत्त्व विचार के, पृच्छक कुं इम भाष ॥२८७॥

अर्थ—यदि कोई युद्ध में घायल होने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे तो उसे इस प्रकार उत्तर देना चाहिए—२८३

(१) पूर्ण दिशा में आकर पूर्ण दिशा में ही जिस घायल के लिए प्रश्न करे उस घायल को कोई घाव नहीं है। ऐसा कह देना चाहिए—२८४

(२) खाली स्वर की तरफ घायल का नाम लेकर प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि घायल के शरीर में घाव है—२८५

(३) यदि पृथ्वी तत्त्व में प्रश्न करे तो पेट ये घाव है। यदि जल-तत्त्व में प्रश्न करे तो पग में घाव है। यदि अग्नि तत्त्व में प्रश्न करे तो छाती तथा हृदय में घाव है। यदि वायु तत्त्व में प्रश्न करे तो जांघ में घाव है। ऐसा कह देना चाहिए—२८६

(४) यदि आकाश तत्त्व में प्रश्न करे तो घायल को सिर में घाव है। स्वर के तत्त्व को पहचान कर प्रश्न कर्ता को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए—२८७

युद्ध करते समय तत्त्व विचार

दोहा—पूरण प्राण प्रवाह में, निज तत घर सुर होय।
प्रबल गयो आन मिला, सुख से जय ले सोय ॥२८८॥

अपने सुर जल तत्त्व में, शत्रु कुं नहीं होय।
रिपु मरण निज हाथ थी, विजय अपनी होय ॥२८९॥

अर्थ—(१) अपने पूर्ण स्वर में चलते समय यदि स्वर में संगाति तत्त्व आदि हों तो समझ लेना चाहिए कि यह योग अति प्रबल है। उस समय युद्ध के लिए चढ़ाई कर देने से चढ़ाई करने वाले को अवश्य ही सुखपूर्वक विजय प्राप्त हो—२८८

यदि अपने स्वर में जल तत्त्व हो और शत्रु के न हो तो युद्ध के लिए चढ़ाई कर देने पर शत्रु को अपने हाथों से मार कर विजय प्राप्त होगी—२८९

गर्भ[६२] सम्बन्धी प्रश्न विचार

दोहा—गर्भ तणा प्रसंग अब, सुनना चित्त लगाय।
स्वर विचार तासुं कहो, जो कोई पूछे आय ॥२९०॥
क्लीव कन्यका सुत जनम, गर्भ पतन वा धार।
दीर्घ अल्प आयु तणा, भाखो एम विचार ॥२९१॥

६२—गर्भ सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर देने से पहले इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए कि गर्भ है या नहीं :—

बन्ध ओर जो आय करि, है पूछे जो कोय।
बन्ध ओर तो गर्भ है, बहते स्वर नहीं होय। (चरणदास)

अर्थ—पृच्छक यदि चलते स्वर की तरफ आकर प्रश्न करे तो स्त्री के गर्भ नहीं है। यदि बन्द स्वर की तरफ से आकर प्रश्न करे तो गर्भ है।

वरुण-महेन्द्रौ शस्तौ प्रश्ने गर्भस्य पुत्रदौ ज्ञेयौ।
इतरौ स्त्री—जन्मकरौ शून्यं गर्भस्थ नाशाय ॥६४॥
नासा प्रवाह दिग्भागे गर्भार्थी यस्तु पृच्छति।
पुरुषः पुरुषादेशं शून्यभागे तथांगना ॥६५॥
विज्ञेयः सन्मुखे षण्ढः सुषुम्नायामुभौ शिशू।
गर्भहानिस्तु संक्रान्तौ समे क्षेमं विनिर्दिशत् ॥६६॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—जल तथा पृथ्वी इन दोनों तत्त्वों में प्रश्न हो तो पुत्र जन्मेगा।

चन्द्र चलत पूछे कोउ, पूरण दिशि में आय।
गर्भवती के गर्भ में, तो कन्या कहवाय ।।२६२।।
दिवसपति पूरण चलत, पूछे पूरण मांहि ।
पुत्र कूख में जानजो, या में संशय नांहि ।।२६३।।
सुर सुखमन में आय के, पूछे गर्भ विचार ।
नारी केरी कूख में, गर्भ नपुंसक धार ।।२६४।।
भानु चलत पूछे कोउ, वाकुं चन्दा होय ।
पुत्र जन्म तो जानजो, फुनि जीवे नहि सोय ।।२६५।।
दिवसपति संचार में, करे प्रश्न कोउ आय ।
सुर सूरज वाकुं हुआ, सुखदायक सुत थाय ।।२६६।।
करे प्रश्न शशि सुर विषय, वाकुं जो रवि होय ।
होय सुता जीवे नहीं, कहो एम तस जोय ।।२६७।।
चन्द्र चलत आवी कहे, वाकुं चन्दा उद्योत ।
कन्या निश्चय तेह ने, दीर्घ स्थिति धर होत ।।२६८।।
चलत मही सुत जानजो, प्रश्न करे तिन वार ।
राजमान सुखिया घना, रूपे देव-कुमार ।।२६९।।
उदक तत्त्व में आय के, करे प्रश्न जो कोय ।
सुत सुखिया धनवन्त तस, षट् रस भोगी होय ।।३००।।

अग्नि तथा वायु तत्त्व में प्रश्न हो तो कन्या होगी । खाली स्वर में प्रश्न हो तो गर्भ नष्ट हो जाएगा—६४

जिस तरफ का स्वर चलता हो उसी तरफ होकर प्रश्न करे और वह प्रश्न करने वाला पुरुष हो तो पुत्र हो तथा खाली स्वर की तरफ होकर प्रश्न करे तो पुत्री हो—६५

यदि सन्मुख होकर प्रश्न करे तो नपुंसक सन्तान होगी ऐसा कहे । तथा दोनों स्वर पूर्ण भरे हों तो दो बालक होना कहे । पवन के पलटने के समय पूछे तो गर्भ की हानि हो और दोनों तरफ पवन सम बहती हुई में पूछे तो क्षेम कुशल कहे—६६

तत्त्व युगल जो भानु धर, चलत पुत्र पहिछान ।
निशानाथ घर होय तो, कन्या हिरदे आन ॥३०१॥
पूछत पावक तत्त्व में, गर्भ पतन तस होय ।
जन्मे तो जीवे नहीं, विगत-पुण्य नर सोय ॥३०२॥
प्रश्न प्रभंजन तत्त्व में, करतां छाया होय ।
अथवा विज्ञ विचारजो, गले गर्भ में सोय ॥३०३॥
पूछत नभ परकास में, गर्भ नपुंसक जान ।
चलत चन्द कन्या कहो, बांझ भाव चित्त आन ॥३०४॥
शून्य युगल सुर मांहि जो, गर्भ प्रश्न करे कोय ।
ता थी निश्चय करि कहो, कन्या उपजे दोय ॥३०५॥
चन्द्र सूर दोउ चलत, रवि होय बलवान ।
गर्भवती के गर्भ में, पुत्र युगल पहिचान ॥३०६॥
चन्द्र सूर दोउ चलत, चन्द्र होय बलवान ।
गर्भवती के गर्भ में, सुता युगल पहिचान ॥३०७॥

अर्थ—अब गर्भ के विषय में स्वर विचार द्वारा फल कहते हैं यदि कोई आकर प्रश्न करे तो स्वर का विचार करके उस-उस प्रकार उत्तर देना चाहिये—२९०

नपुंसक, पुत्री अथवा पुत्र का जन्म होगा ? गर्भ स्थिर रहेगा अथवा गिर जायेगा ? सन्तान दीर्घायु वाली होगी अथवा अल्पायुवाली होगी ? इन सब बातों का उत्तर स्वरोदय विचार से वर्णन करते हैं—२९१

१. यदि चन्द्र स्वर चलता हो तथा चलते स्वर की तरफ आकर कोई प्रश्न करे कि गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा या पुत्री तो कह देना चाहिए कि पुत्री होगी—२९२

२. यदि सूर्य स्वर चलता हो तथा उसी चलते स्वर की तरफ आकर कोई प्रश्न करे कि गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा अथवा पुत्री ? तो कह देना चाहिए कि पुत्र होगा—२९३

३. यदि सुखमना स्वर चलता हो उस समय कोई आकर प्रश्न करे कि

गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा या पुत्री ? तो कह देना चाहिए कि नपुंसक होगा—२६४

४. यदि अपना सूर्य स्वर चलता हो तथा उधर से ही आकर कोई गर्भ विषयक प्रश्न पूछे परन्तु पूछने वाले का चन्द्र स्वर चलता हो तो पुत्र का जन्म होगा परन्तु जीवेगा नहीं—२६५

५. यदि दोनों (अपना और पूछने वाले) के सूर्य स्वर चलते हों तो कह देना चाहिये कि पुत्र होगा उसकी दीर्घ आयु होगी एवं सुख देने वाला होगा—२६६

६. यदि अपना चन्द्र स्वर चलता हो और पूछने वाले का सूर्य स्वर चलता हो तो कह देना चाहिए कि पुत्री का जन्म होगा परन्तु जीवेगी नहीं—२६७

७. यदि दोनों (अपने और पूछने वाले) के चन्द्र स्वर चलते हों तो कह देना चाहिए कि कन्या का जन्म होगा और उसकी दीर्घ आयु होगी—२६८

८. यदि सूर्य स्वर में पृथ्वी तत्त्व चलता हो और उस समय कोई गर्भ संबंधी प्रश्न पूछे तो कह देना चाहिए कि पुत्र जन्म होगा वह रूपवान राजमान्य तथा सुखी होगा—२६६

६. यदि सूर्य स्वर में जल तत्त्व चलता हो और उस समय गर्भ सम्बन्धी प्रश्न पूछे तो कह देना चाहिए कि पुत्र का जन्म होगा वह सुखी, धनवान और छः रसों का भोगी होगा—३००

१०. यदि सूर्य स्वर में पृथ्वी तत्त्व अथवा जल तत्त्व चलता हो तो पुत्र जन्म, और यदि ये दोनों तत्त्व चन्द्र स्वर में चलते हों तो कन्या का जन्म होगा, और वह सुखी, धनवती, रूपवती तथा छः रसों को भोगने वाली होगी—३०१

११. यदि गर्भ सम्बन्धी प्रश्न करते समय स्वरों में अग्नि तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि गर्भ गिर जायेगा अथवा यदि सन्तान हो भी जायेगी तो तुम्हारे पापोदय के कारण यह सन्तान जीवेगी नहीं—३०२

१२. यदि गर्भावस्था सम्बन्धी प्रश्न करने पर स्वरों में वायु तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि पिण्डाकृति बनी है वह गिर जायेगी अथवा गर्भ ही गल जायेगी—३०३

१३. यदि सूर्य स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो प्रश्न कर्त्ता को कह देना चाहिए कि नपुंसक का जन्म होगा। यदि चन्द्र स्वर में आकाश तत्त्व चलता होगा तो बांझ कन्या का जन्म होगा—३०४

१४. यदि दोनों (अपने और प्रश्न कर्त्ता) के सुखमना स्वर चलते हों तो कह देना चाहिए कि दो कन्याओं का जन्म होगा—३०५

१५. चन्द्र सूर्य दोनों स्वर चलते समय गर्भ सम्बन्धी प्रश्न करे और उस समय यदि सूर्य स्वर तेज़ चलता हो तो कह देना चाहिए कि दो पुत्रों का जन्म होगा—३०६

१६. कोई दोनों स्वर चलते समय गर्भ विषयक प्रश्न करे और उस समय यदि चन्द्र स्वर तेज़ चलता हो तो कह देना चाहिए कि दो कन्याओं का जन्म होगा—३०७

तत्त्वों में स्त्री के गर्भ धारण[६३] तथा सन्तान जन्म सम्बन्धी

दोहा—जौन तत में नारी कुं, रहे गर्भ अवधान।
अथवा जन्मे तेहनो, फल अनुक्रम पहिचान॥३०८॥

६३—शिव स्वरोदय में लिखा है कि—

शंखवल्लीं गवां दुग्धे पृथ्व्यापो बहते यदा।
भर्तु रेव वदे वाक्यं गर्भं देहि त्रिभिर्वचः॥२८७॥

अर्थ—जिस समय स्वर में पृथ्वी अथवा जल तत्त्व बहता हो उस समय स्त्री को गौ के दूध में शंखावली को पिलावे फिर स्त्री अपने भर्ता को तीन बार भोग की प्रार्थना करे—२८७

ऋतुस्नाता पिवेन्नारी ऋतुदानं तु योजयेत्।
रूपलावण्यसम्पन्नो नरसिंहः प्रसूयते॥२८८॥

अर्थ—जब स्त्री ऋतु स्नान के अनन्तर उक्त औषध को पीले तब पुरुष ऋतुदान दे तो रूपवान, लावण्ययुक्त, (सुन्दर), पराक्रमी और पुरुषों में सिंह समान बालक पैदा होता है—२८८

सुषुम्ना सूर्यवाहेन ऋतु योजयेत्।
अंगहीनः पुमान यस्तु, जायते त्रासविग्रहः॥२८९॥

राजमान सुखिया महा, अथवा आपहु भूप।
रहे गर्भ धरणी चलत, होवे काम सरूप ॥३०९॥
धनवन्ता भोगी सुखी, चतुर विचक्षण तेह।
नीतिवंत नारी गरभ, जल चलतां रहे जेह ॥३१०॥
रहे गर्भ पावक चलत, अल्प उमर ते जान।
जीवे तो दुखिया हुवे, जनमत माता हान ॥३११॥
दुखी देश भ्रमण करे, विकल चित्त बुद्धि हीन।
रहे गर्भ जो वायु में, इम जानो परवीन ॥३१२॥
रहे गर्भ नभ चालतां, गर्भ तणी होय हान।
जन्म तेण फल तत्त्व में, इम ही अनुक्रम जान ॥३१३॥
सुत पृथ्वी जल में सुता, चलत प्रभंजन जान।
गर्भ पतन पावक विषय, क्लीव गगन मन आन ॥३१४॥
अपने अपने स्वर विषय, है परधान विचार।
तत पक्ष अवलोकतां, यह दूजा निरधार ॥३१५॥
संक्रम अवसर आयके, प्रश्न करे जो कोय।
अथवा गर्भ रहे तदा, नाश अवश्य तस होय ॥३१६॥
कह्या एम संक्षेप से, गर्भ तणा अधिकार।

अर्थ—जिस तत्त्व में नारी को गर्भ रहता है अथवा सन्तान का जन्म होता है, उसका फल हम अनुक्रम से कहते हैं उसे समझ कर निश्चय करें—३०८

अर्थ—जो पुरुष सूर्य स्वर के प्रवाह के संग सुषुम्ना स्वर के बहने के समय ऋतुदान देता है उसको अंगहीन और कुरूप पुत्र उत्पन्न होता है—२८९

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां शुक्रान्ते वा सुधाकरः।
अनेन क्रम-योगेन नादत्ते दैव दारुकम् ॥२९२॥

अर्थ—यदि स्त्री को ऋतुदान देने के प्रारम्भ में पुरुष का सूर्य स्वर चले और वीर्यपात के अनन्तर चन्द्र स्वर बहने लगे तो इस क्रम योग में स्त्री गर्भ धारण नहीं करती है—२९२

(१) यदि स्त्री को पृथ्वी तत्त्व में गर्भ रहे तो उस समय जो जीव गर्भ में आवेगा वह जन्म लेने पर राज्यमान्य, महान् सुखी, अथवा स्वयं ही राजा हो और कामदेव के समान रूप लावण्य युक्त होगा—३०६

(२) यदि स्त्री को जल तत्त्व में गर्भ रहे तो उस समय जो जीव उसके गर्भ में आवेगा वह जन्म लेने पर धनवान, भोगी, सुखी, चतुर, विचक्षण, नीतिवान होगा—३१०

(३) यदि नारी को अग्नि तत्त्व में गर्भ रहे तो उस जीव की उल्पायु होगी। यदि जीवित रहेगा तो अति दुखिया होगा और उसके जन्म लेने पर उसकी माता मर जायेगी—३११

(४) यदि नारी को वायु तत्त्व में गर्भ रहे तो वह जीव जन्म लेने पर दुःखी, देश भ्रमण करने वाला, विकल चित्त वाला, और मूर्ख होगा। यह बात बुद्धिमानों को निःसन्देह जाननी चाहिए—३१२

(५) यदि आकाश तत्त्व में गर्भ रहे तो गर्भ गिर जायेगा।

तथा इन उपर्युक्त तत्त्वों में जो फल बतलाया गया है यदि इन तत्त्वों में सन्तान का जन्म हो तो भी वैसा ही फल समझ लेना चाहिए—३१३

(६) पृथ्वी तत्त्व में पुत्र, जल तत्त्व में पुत्री का जन्म हो। वायु तत्त्व में गर्भ चल जायेगा अर्थात् जो पिण्डाकृति बनी है वह गल जायेगी। अग्नि तत्त्व में गर्भ गिर जायेगा तथा आकाश तत्त्व में नपुंसक का जन्म होगा—३१४

(७) अपने अपने स्वरों में इसका प्रधान विचार है, तत्त्व का विचार करना यह दूसरा आधार है—३१५

(८) स्वर के संक्रम समय यदि कोई आकर गर्भ सम्बन्धी प्रश्न करे अथवा उस समय यदि गर्भ रहे तो उसके गर्भ का अवश्य नाश हो जायेगा—३१६

इस प्रकार हमने यहां पर संक्षेप से गर्भ सम्बन्धी विवेचन किया है।[६४]

६४—स्वरोदय में कुछ विशेष ज्ञातव्य प्रश्न जो कि इस ग्रन्थ में नहीं दिये गये यहां संक्षेप से लिखते हैं।

(१) वर्षा सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर स्वरोदय के मत से :—

वर्षा सम्बन्धी प्रश्न पृथ्वी तत्त्व में किया जावे तो वर्षा बरसेगी। जल

परदेश गमन समय स्वरों में तत्वों का विचार

दोहा—करत गवन परदेश में, ताका कहूं विचार ॥३१७॥
दक्षिण पश्चिम दिशि विषय, चन्द्र योग में जाय।
गमन रहे परदेश में, सुख विलसे घर आय ॥३१८॥

तत्त्व में प्रश्न किया जावे तो मन इच्छित वर्षा हो। पवन मंडल में बादलों से दूर्दिन हो (बादल तो घिरें किन्तु वर्षा न हो) अग्नि तत्त्व में थोड़ी-सी वृष्टि हो।

ज्ञानार्णव प्र० २९ में कहा है कि :—

वर्षति भौमे मघवा वरुणेऽभिमतो मतस्तथाजस्रम्।
दुर्दिन घनाश्च पवने, वन्हौ वृष्टिः कियन्मात्रा ॥५८॥

अर्थ—पृथ्वी तत्त्व में मेघ बरसना कहे। जल तत्त्व में मनोवांछित वर्षा निरन्तर होगी ऐसा कहे। वायु तत्व में दुर्दिन होगा, बादल होगा पर बरसेगा नहीं तथा अग्नि तत्त्व में किंचिन्मात्र वृष्टि होना कहे—५८

(२) धान्य प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रश्न—

धान्य प्राप्ति के सम्बन्ध में जल तत्त्व में प्रश्न करे तो धान्य प्राप्त हो। पृथ्वी तत्त्व में बहुत सरस धान्य प्राप्त हो। पवन तत्त्व में किसी स्थान में धान्य हो किसी स्थान में न हो। अग्नि तत्त्व में थोड़ा भी अन्न न हो।

ज्ञानार्णव प्र० २९ में कहा है कि—

सस्यानां निष्पत्तिः स्याद्वरुणे पार्थिव च सुश्लाघ्या।
स्वल्पापि न चाग्नेये वायवाकाशे तु मध्यस्था ॥५९॥

अर्थ—कोई मनुष्य अनाज उत्पन्न होने का प्रश्न करे तो पृथ्वी तत्त्व और जल तत्त्व में धान्य की उत्पत्ति अच्छी होगी। अग्नि तत्त्व में स्वल्प अनाज भी न हो। वायु तत्त्व और आकाश तत्त्व में मध्यस्थ हो—५९

(३) विपरीत पवन बहने के विषय में—

ज्ञानार्णव प्र० २९ में कहा है कि—

व्यस्तः प्रथमे दिवसे चित्तोद्वेगाय जायते पवनः।
धन हानिकृद् द्वितीये प्रवासदः स्यात्तृतीयेऽन्हि ॥४१॥

पूरब उत्तर दिशि विषय, भानु जोग बलवन्त।
वंछितदायक कहत है, जो स्वरवेदी सन्त॥ ३१६॥

विदिशि अपनी-अपनी, अपने घर में लीन।
शुभ अरु इतर उभय विषय, समझ लेहु परवीन॥ ३२०॥

चलत चन्द नवि जाइये, पूरब उत्तर देश।
गया न पीछे बाहुड़े, अथवा लहे क्लेश॥ ३२१॥

दक्षिण पश्चिम मत चलो, भानु जोग में कोय।

इष्टार्थनाशविभ्रमस्वपद भ्रंशास्तथा महायुद्धम्।
दुःखं च पञ्चदिवसैः क्रमशः संजायते त्वपरैः॥४२॥

अर्थ—पवन प्रथम दिवस में विपरीत बहे तो चित्त को उद्वेग होता है और दूसरे दिन विपरीत बहे तो धन की हानि को सूचित करता है। तीसरे दिन विपरीत बहे तो परदेश गमन कराता है—४१

यदि पांच दिन तक विपरीत चले तो क्रम से इष्ट प्रयोजन का नाश, विभ्रम, अपने पद से भ्रष्ट होना, महायुद्ध और दुःख ये पांच फल होते हैं तथा इसी प्रकार अगले पांच-पांच दिन का फल विपरीत अर्थात् अशुभ जानना—४२

४—भूतादि सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर स्वरोदय से—

भूतादिगृहीतानां रोगार्त्तानां च सर्प-दंष्टानाम्।
पूर्वोक्त एव च विधिर्बोद्धव्यो मान्त्रिकावश्यम॥ ५०॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—यदि मंत्रवादी को दूत आकर पूछे कि अमुक भूतादि से गृहीत है तथा अमुक रोग से पीड़ित है, सर्प ने काटा है तो पूर्वोक्त विधि ही जाननी। यह आवश्यक है कि सम अक्षर वाले का बाईं नाड़ी के चलते हुए पूछना शुभ है और विषमाक्षर वाले का दाहिनी बहती हुई नाड़ी में पूछना शुभ है—५०

५—ग्राम, पुर, युद्ध, देश, गृह प्रवेश में तथा राजकुलादि में प्रवेश समय अथवा निकलते समय जिस तरफ के नासिका छिद्र में से पवन बहता हो उस तरफ के पग को आगे रखकर चलने से इच्छित फल की प्राप्ति होती है।

1900

मरे न तौहु मरण सम, कष्ट अवश्य तस होय ॥ ३२२ ॥
दूर गमन में सर्वदा, प्रबल योग चितधार ।
निकट पंथ में मन्द, जानिजे सुखकार ॥ ३२३ ॥

६—कार्य सिद्धि की इच्छा रखने वाले मनुष्य को चाहिये कि गुरु, बन्धु, राजा, प्रधान तथा दूसरे भी जो अपने को इच्छित वस्तु देने वाले हों उनको अपने पूर्णाङ्ग [चलते स्वर की तरफ रखना चाहिए। अर्थात् अपने बहते स्वर] की तरफ रखकर स्वयं बैठें।

७—आसन तथा शयन के समय अपने चलते स्वर की तरफ बैठाई हुई स्त्री अपने अधीन हो जाती है। इसके समान दूसरा कोई कार्मण नहीं है।

८—अपना अन्नदाता, गुरु आदि मालिक, अथवा मुरब्बी (बुर्जुग) किसी भूल पर क्रोधित होकर दण्ड अथवा सजा देने को बुलावे तो जाने के समय जो स्वर चलता हो उस तरफ का पग प्रथम उठाकर चले और मालिक आदि के सामने पहुंचे, वहां पहुंच कर फिर अपना स्वर देखे। यदि अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो मालिक की दाहिनी ओर खड़ा हो। यदि सूर्य स्वर चले तो मालिक की बांई ओर खड़ा होकर उनके प्रश्नों का उत्तर दे। ऐसा करने से निःसन्देह कुशलता पूर्वक विदा हो आवे और स्वामी आदि अधिकाधिक प्यार करें।

९—शत्रु के शस्त्र प्रहार करते समय का विचार—

रिपु शस्त्रसंप्रहारे रक्षति यः पूर्णगात्रभूभागम् ।
बलिभिरपि वैरिवर्गैर्न भेद्यते तस्य सामर्थ्यम् ॥ ६३ ॥ (ज्ञानार्णव)

अर्थ—शत्रु के शस्त्र प्रहार होते समय अपना जो स्वर भरा हो उस स्वर की तरफ वैरी रहे तो उस पुरुष की सामर्थ्य बलवान शत्रु से भी भेदी नहीं जा सकती अर्थात् वैरी के साथ लड़ाई होते वैरी की तरफ अपना भरा स्वर हो वही रखने से अपनी जीत होती है।

१०—छिपी वस्तु के विषय में प्रश्न निर्णय—

पवनप्रवेशकाले जीव इति प्रोच्यते महामतिभिः ।

तत्त्व युगल शुभ है सुधी, करत प्रश्न परियाण।
नाम तेह नुं चित्त में, मही उदक मन आन ॥ ३२४ ॥
उर्ध्व दिशापति चन्द्र है, अधो दिशापति भान।
क्रूर सौम्य कारज लखी, गमन भाव पहिचान ॥ ३२५ ॥
सुखमन चलत न कीजिये, सुधि परदेश पयाण।
जावे तो जीवे नहीं, कारज हानि पिछान ॥ ३२६ ॥
तत्त्व पंच के गमन में, होत भंग पचवीस[६५]।
देशिक ग्रंथ करि सदा, बीतत जान जोतीष ॥ ३२७ ॥

अर्थ—(१) यदि चन्द्र स्वर चलता हो तो दक्षिण और पश्चिम दिशा में गमन करने से खूब सुख भोग कर घर वापिस लौट आयेगा – ३१८

निष्क्रमणे निर्जीवः फलमपि च तयोस्तथा ज्ञेयम् ॥ ७२ ॥

(ज्ञानार्णवे)

अर्थ—किसी छिपी वस्तु के विषय में पवन के प्रवेश काल में प्रश्न करे तो जीव है ऐसा कहना चाहिये और पवन के निकलते हुए काल में प्रश्न करे तो निर्जीव है ऐसा बड़े बुद्धिमान पुरुषों ने कहा है। तथा इनका फल भी वैसा ही कहा जाता है।

जीवे जीवति विश्वं मृते मृतं सूरिभि समुद्दिष्टम्।
सुख-दुःख-जय-पराजय-लाभालाभादि मार्गोऽयम् ॥ ७३ ॥

(ज्ञानार्णवे)

अर्थ—जो पवन के प्रवेश काल में जीव कहा सो जीते हुए समस्त वस्तु भी जीवित कहना, पवन के निकलते हुए मृतक कहा तो समस्त वस्तु निर्जीव ही कहना चाहिये। तथा सुख-दुःख, जय-पराजय, लाभ-अलाभ आदि का भी यही मार्ग है—७३

६५—पांच तत्त्वों में पच्चीस भेदों के लिए देखें फुटनोट ४६ यानि पृथ्वी तत्त्व में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये पांचों तत्त्व क्रमशः भुगतते हैं। इसी प्रकार जल आदि तत्त्वों में भी पांच-पांच तत्त्व भुगतते हैं। इस प्रकार पांचों तत्त्वों में पच्चीस तत्त्व भुगतते हैं।

(२) सूर्य स्वर चल रहा हो तो पूर्व और उत्तर दिशा में गमन करने से मन की इच्छा पूरी होगी, ऐसा स्वर विज्ञान के जानकारों का कहना है—३१९

(३) विदिशाओं में अपनी-अपनी नाड़ी के अनुसार जाने से ही कार्य की सिद्धि होगी। नाड़ी के विपरीत विदिशाओं में जाने से कार्य की सिद्धि कदापि नहीं होगी—३२०

(४) चन्द्र स्वर चलता हो तो पूरब और उत्तर दिशा को नहीं जाना चाहिए जो जायगा वह या तो परदेश में ही मर जायेगा अथवा भारी कष्ट पायेगा—३२१

(५) यदि सूर्य स्वर चलता हो तो दक्षिण और पश्चिम दिशा की तरफ नहीं जाना चाहिए यदि जायेगा तो उसकी मृत्यु होगी और यदि मौत से बच भी जायेगा तो मृत्यु तुल्य कष्ट को भोगना पड़ेगा—३२२

(६) दूर गमन के लिए हमेशा प्रबल योग में प्रयाण करना चाहिये और निकट में जाने के लिए मध्यम योग में भी प्रस्थान कर सकते हैं—३२३

(७) कोई परदेश जाने के लिए प्रश्न पूछे, यदि पृथ्वी तत्त्व अथवा जल तत्त्व चलता हो तो शुभ है—३२४

(८) ऊर्ध्व दिशा का स्वामी चन्द्र है, अधो दिशा का स्वामी सूर्य है। क्रूर और सौम्य कार्यों के विचार के साथ दिशा का विचार करके परदेश गमन करते समय तत्त्व को देखकर शुभ फलदाता तत्त्व में जाना चाहिये—३२५

(९) सुखमना स्वर में कभी भी परदेश नहीं जाना चाहिये यदि जायेगा तो कार्य में हानि तथा मरण होगा—३२६

(१०) पांच तत्त्वों में एक-एक के पांच भंग होने से कुल पच्चीस भंग होते हैं। इनका स्वरूप बड़े ग्रन्थों से ज्योतिषी को जानना चाहिये—३२७

[६६]परदेश गये हुए के लिये प्रश्न विचार

दोहा—जो नर वसत विदेश में, ताकी पूछे बात।
सुखी है अथवा दुःखी, ता थी एम कहात ॥ ३२८ ॥

६६—आयाति गतो वरुणे भौमे तत्रैव तिष्ठति सुखेन।
यात्यन्यत्र श्वसने मृत इति वह्नौ समादेश्यम् ॥ ५५ ॥ (ज्ञानार्णवे)

उदक तत्त्व जो होय तो, कहो तास धरी नेह।
सुख सिद्ध कारज करी, वेगे आवे तेह ॥ ३२६ ॥
होय मही सुर में उदय, पूछे प्रश्न तिवार।
तो निश्चय से भाखिये, दुःख नहीं तास लगार ॥ ३३० ॥
पर वासी निज थान तजि, गया दूसरे थान।
कछु चिन्ता चित्त तेह ने, चलत वायु कहो आन ॥ ३३१ ॥
रोग पीड़ तन में महा, पावक चलत बखान।
नभ परकाश विदेश में, मरण अवश तस जान ॥ ३३२ ॥

अर्थ—यदि कोई आकर परदेश गये हुए मनुष्य के विषय में प्रश्न पूछे कि यह सुखी है अथवा दुःखी है तो उस समय निम्न प्रकार से तत्त्वों का विचार कर उत्तर देना चाहिए—३२८

(१) यदि स्वर में जल तत्त्व हो तो प्रश्न पूछने वाले को प्रेमपूर्वक कहो कि परदेश गया मनुष्य सब कार्यों को सिद्ध कर शीघ्र घर वापिस लौट आयेगा—३२६

(२) यदि स्वर में पृथ्वी तत्त्व चलता हो उस समय विदेश गये हुए के लिए प्रश्न करे तो निश्चय पूर्वक कह देना चाहिये कि परदेश गया व्यक्ति आनन्दपूर्वक है उसे किसी प्रकार का दुःख अथवा कष्ट नहीं है—३३०

(३) यदि स्वर में वायु तत्त्व चलता हो उस समय कोई परदेश गये व्यक्ति के लिए आकर पूछे तो कहना चाहिए कि वह व्यक्ति अपने स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को चला गया है और उसके मन में कुछ चिन्ता है—३३१

(४) यदि स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो उस समय कोई परदेश गये व्यक्ति के लिए आकर पूछे तो कहना चाहिए कि परदेश गये व्यक्ति के शरीर में महान

अर्थ—कोई परदेश गये हुए का प्रश्न करे तो इस प्रकार उत्तर देना चाहिए। प्रश्न करने वाला यदि जल तत्त्व में प्रश्न करे तो गया हुआ मनुष्य आता है। पृथ्वी तत्त्व में प्रश्न करे तो वहां ही सुखपूर्वक रहता है। पवन तत्त्व में पूछे तो जहां रहता था वहां से कहीं अन्यत्र गया है। यदि अग्नि तत्त्व हो तो मरण को प्राप्त हुआ है। ऐसा कहे—५५

रोग और पीड़ा है।

(५) यदि स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो उस समय परदेश गये व्यक्ति के लिए कोई आकर पूछे तो कह देना चाहिए कि उसकी परदेश में मृत्यु हो गई है—३३२

परदेश गमन समय का विचार

दोहा—भानु विषम शशि मांहि सम, पगला भरतां मीत।
वार तिथि इन विधि करत, होवे सुन तस रीत॥ ३३३॥
चन्द चलत आगल घरी, डाबा पगला चार।
गमन करत तिन अवसरे, होय उदधिसुत वार॥ ३३४॥
सुर सूरज में जीमणा, पग आगल धरे तीन।
चलत गमन में होत है, दिनकर वार प्रवीन॥ ३३५॥
सुर विचार कारज करत, सफल होय तत्काल।
तत्त्वज्ञान एहना कह्या, चमत्कार चित्त भाल॥ ३३६॥
तिथि वार नक्षत्र फुनि, करण जोग दिगशूल।
लक्षण पात होरा लिए, दग्ध तिथि अरु मूल॥ ३३७॥
विष्टि काल कुलिका लगन, व्यतिपात स्वर भान।
शुक्र अस्त अरु चोवड़ी, यम घंटादिक जान॥ ३३८॥
इत्यादिक अपयोग को, या में नहीं विचार।
ऐसो ये सुरज्ञान नित, गुरुगम थी चित्त धार[६७]॥ ३३९॥

अर्थ—१. परदेश गमन समय यदि सूर्य स्वर में प्रयाण करना हो तो विषम पग से आगे चलना चाहिए तथा चन्द्र स्वर में गमन करना हो तो सम पग से आगे चलना चाहिए। यानि सूर्य स्वर में एक तीन, पांच, सात इत्यादि कदम आगे

६७—चरणदास कृत स्वरोदय ज्ञान में स्वर के विषय में इस प्रकार कहा है—
धरनि टरै गिरिवर टरै, ध्रुव टरै सुन मीत।
वचन स्वरोदय न टरै, कहे दास रणजीत॥

अर्थ—रणजीतदास (चरणदास) कहते हैं कि धरती, मेरु पर्वत, ध्रुव तारा, चाहे अपने स्थान से भ्रष्ट हो जावे परन्तु स्वरोदय का वचन नहीं टल सकता।

चलना चाहिए तथा यदि चन्द्र स्वर चलता हो तो दो, चार, छः आठ आदि कदम आगे धरना चाहिए। एवं वार और तिथि का भी स्वर के साथ मेल का विचार करना चाहिए—३३३

जैसे कि चन्द्र स्वर में प्रयाण करते समय बांयें पग से चार कदम आगे बढ़ना चाहिए तथा उस समय वार एवं तिथियों में से चन्द्र स्वर के अनुकूल होने चाहिए। जैसे कि सोम, बुध, वृहस्पति अथवा शुक्रवार में से कोई वार हो तथा तिथि का विचार भी पहले लिख आए हैं सो भी चंद्र की तिथि हो ऐसे योग में प्रस्थान करने से सब प्रकार की मनोकामनाएं प्राप्त होती है—३३४

यदि सूर्य स्वर में प्रयाण करना हो तो दाहिने पग से तीन कदम आगे बढ़ना चाहिए तथा उस दिन वार और तिथि भी सूर्य की होनी चाहिए। ऐसा योग मिलने से परदेश जाने वाले की सब प्रकार की मनोकामनाएं सिद्ध होती है—३३५

जो व्यक्ति स्वर का विचार करके कार्य करता है उसे तत्काल ही सफलता प्राप्त होती है। इसका तत्वज्ञान जो हमने यहां वर्णन किया है उसके चमत्कार का अनुभव करें—३३६

इस स्वरोदय के अनुसार विचार करके प्रस्थान करने वाले के लिए तिथि, वार, नक्षत्र, करण, योग, दिशाशूल, लक्षणपात, होरा, दग्ध तिथि तथा मूल—३३७

विष्टिकाल, कुलिका, लग्न, व्यतिपात, शुक्र अस्त, चौघड़िया, यमघट आदि ज्योतिष के कुयोगों का कोई विचार नहीं है क्योंकि स्वरोदय रूपी सूर्य के सामने सब हतप्रभ हो जाते हैं—३३८

अतः उपर्युक्त अपयोगों का स्वरोदय में कोई विचार नहीं है। ऐसे यह स्वरोदय ज्ञान किसी इस विषय के जानकार गुरु से प्राप्त करके सदा चिन्तन तथा मनन करते रहना चाहिए—३३९

स्वरोदय ज्ञान बिना ज्योतिषी

दोहा—विगत उदक सर हंस बिन काया तरु बिन पात।
देव रहित देवल यथा, चंद्र बिना जिम रात ॥ ३४० ॥

शोभित नहीं तप बिन मुनि, जिम तप समता टार।
तिम सुर ज्ञान बिना गणक, शोभत नहीं लगार।। ३४१।।
साधन बिन सुर ज्ञान को, लहे न पूरण भेद।
चिदानन्द गुरुगम बिना, साधन हु तन खेद।। ३४२।।

अर्थ—जिस प्रकार जल बिना तालाब प्यास को बुझाने में साधन रूप नहीं। जिस प्रकार आत्मा के बिना का शरीर मुर्दा हो जाता है, जिस प्रकार पत्तों के बिना वृक्ष शोभा नहीं पाता। जिस प्रकार देव मूर्ति के बिना मंदिर की कोई शोभा नहीं होती; जिस प्रकार चंद्रमा के बिना रात में अन्धेरा ही अन्धेरा सर्वत्र भरा रहता है अर्थात् चन्द्र बिना रात शोभा नहीं पाती—३४०

जिस प्रकार तपस्या बिना मुनि सुशोभित नहीं होता; जिस प्रकार समता बिना का तप आत्मा का कल्याण करने में असमर्थ रहता है; वैसे ही स्वरोदय ज्ञान के बिना ज्योतिषी की किंचिन्मात्र भी शोभा नहीं होती—३४१

क्योंकि स्वरोदय ज्ञान को साधन किये बिना ज्योतिषी वास्तविक तथा पूर्ण भेद को नहीं जान सकता। अतः प्रत्येक गणितज्ञ ज्योतिषी को इस स्वरोदय ज्ञान को किसी स्वरोदय ज्ञान के जानकार सुयोग्य गुरु के पास रह कर सीखना चाहिए। चिदानन्द जी कहते हैं कि सुयोग्य गुरु से इसका ज्ञान प्राप्त किये बिना मात्र काय क्लेश ही है—३४२

स्वर में तत्त्वों के अनुसार आरोग्य प्राप्ति

दोहा—दक्षिण स्वर भोजन करे, डावे पीवे नीर।
डावे करवट सोवतां, होय निरोग सरीर।। ३४३।।
चलत चंद्र भोजन करे, अथवा नारी भोग।
जल पीवे सूरज विषय, तो तन आवे रोग।। ३४४।।
होय अपच भोजन करत, भोग करत बल हीन।
जल पीवत विपरीत इम, नेत्रादिक बल क्षीण।। ३४५।।
पांच सात दिन इनि परे, चले रीत विपरीत।
होय पीड़ तन में कछु, जानो धरि परतीत।। ३४६।।
बहिर भूमि इंगला चलत, पिंगला में लघुनीत।

शयन दिसा सूरज विषय, करिये निस दिन मीत ।। ३४७ ।।
दिवस चंद सुर संचरे, निशा चलावे सूर ।
स्वर अभ्यास ऐसो करत, होय उमर भरपूर ।। ३४८ ।।

अर्थ—दाहिने [सूर्य] स्वर में भोजन करना चाहिए, बांयें [चंद्र] स्वर में पानी पीना चाहिए। तथा बांई करवट सोना चाहिए। ऐसा करने से शरीर निरोग रहता है—३४३

चंद्र स्वर में भोजन करने से अथवा नारी को ऋतुदान देने से, सूर्य स्वर में पानी पीने से शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है—३४४

चंद्र स्वर में भोजन करने से अपच [बदहज़मी] हो जाती है। तथा चंद्र स्वर में स्त्री से संभोग करने से शरीर का बल क्षीण हो जाता है एवं विपरीत [सूर्य] स्वर में पानी पीने से नेत्रों आदि का बल क्षीण हो जाता है—३४५

यदि पांच सात दिन तक इसी प्रकार विपरीत स्वरों में उपर्युक्त कार्य करोगे तो यह बात निश्चित है कि शरीर में अवश्य ही कोई रोग अथवा पीड़ा हो जायेंगे—३४६

इंगला [चंद्र] स्वर में बड़ी नीति [टट्टी] जाना चाहिए। पिंगला [सूर्य] स्वर में पेशाव करना तथा सोना चाहिए, उपर्युक्त आचरण सदा करते रहो—३४७

दिन में चन्द्र स्वर चले, रात को सूर्य स्वर चले इस प्रकार के अभ्यास करने से आयु लम्बी होती है अर्थात् चंद्र स्वर में दिन का उदय हो तथा सूर्य स्वर में रात्रि का उदय हो तो उसकी आयु लम्बी होगी—३४८

स्वरों[६८] का समय

दोहा—कथित भाव विपरीत जो, सुर चाले तन मांहि ।
मरण निकट तस जानजो, यामें संशय नांहि ।। ३४९ ।।

---

६८. स्वरों सम्बन्धी कुछ आवश्यकीय ज्ञातव्य—

(१) वायु जब मंडल में प्रवेश करती है तो उसको जीव कहते हैं। जब मंडल में से निकलती है तब उसको मृत्यु कहते हैं। इसलिए इन दोनों का फल-ज्ञानी पुरुषों ने वैसा ही कहा है। यथा-ज्ञानार्णव में—

यस्मिन्न सति म्रियते जीवति सति भवति चेतना कलित: ।

सार्ध युगल घटिका चले, चन्द सूर सुर वाय।
श्वास त्रयोदश सुखमन, जानो चित्त लगाय ॥ ३५० ॥

जीवस्तदेव तत्त्वं विरला जानन्ति तत्त्वविदः ॥ ७६ ॥

(२) चन्द्र नासिका में प्रवेश करते हुए वायु में पृथ्वी और जल तत्त्व सर्व सिद्धि को देने वाले हैं और सूर्य स्वर से निकलते हुए तथा प्रवेश करते हुए वायु में पृथ्वी तथा जल तत्त्व मध्यम फलदाता हैं। यथा—ज्ञानार्णवे:—

नेष्ट घटने समर्था राहु-ग्रह-काल-चन्द्र-सूर्याद्याः।
क्षिति-वरुणौ त्वमृतगतौ समस्त कल्याणदौ ॥ ४६ ॥

(३) शरीर के सर्व भाग में मानों निरन्तर अमृत बरसाती हो वैसे अभिष्ट (मन वांछित) कार्य को सूचित करने वाली बांई नाड़ी (चन्द्र स्वर) को अमृतमय माना हुआ है। वैसे ही दाई नाड़ी (सूर्य स्वर) चलती हुई शांति कार्यों को नष्ट करने वाली तथा अनिष्ट सूचक है। तथा ज्ञानार्णवे

अमृते प्रवहति नूनं केचित्प्रवदन्ति सूरयोऽत्यर्थम्।
जीवन्ति विषासक्ता म्रियते च तथान्यथा भूते ॥ १ ॥

अर्थ—अमृत जो चन्द्रमां की नाड़ी चलती हो तो निश्चय से विष से आसक्त पुरुष भी जीता है और अन्य प्रकार जो सूर्य की नाड़ी चले तो मरता है। इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने अधिकता से कहा है।

(४) सुखमना नाड़ी अनिमा और महान सिद्धियां तथा मोक्ष फल रूप कार्य करने के लिए है।

(५) सर्गुण में जो कार्य किया जाता है उसमें बड़ा लाभ है जैसे दीपक में तेल भर कर वत्ती जलावें तो वह दीपक सन्ध्या से सवेरे तक जलता रहता है। ऐसे ही जब कहीं आग लगे तो एक लोटा जल का मंगवा कर आग की तरफ मुंह करके एकदम में नाक के द्वारा सर्गुण से साथ चढ़ावें तो अग्नि आगे नहीं बढ़े, जहां की तहां शीतल हो जावे। [देखें टिप्पणी ५६]

(६) तथा किसी वैरी से मिलाप करने की इच्छा हो तो बरतन में जल लेकर सामने नासिका के रास्ते सर्गुण में चढ़ाये जाया करें तो थोड़े ही दिनों में वैरी के चित्त से वैर भाव जाता रहे।

अर्थ—यदि" ऊपर कहे हुए से विपरीत स्वर चले तो जानना चाहिए कि मृत्यु समीप है । इसमें संशय नहीं है—३४६

लाभालाभ प्रश्न

(७) वरुणे त्वरितो लाभश्चिरेण भौमे तदार्थिने वाच्यम् ।
तुच्छतरः पवनाख्ये सिद्धोऽपि विनश्यते वह्नौ ।। ५४ ।। (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—जल तत्त्व के होने पर तुरत ही लाभ कहे तथा पृथ्वी तत्त्व हो तो देरी से लाभ कहे । पवन तत्त्व हो तो बहुत थोड़ा लाभ कहे। यदि अग्नि तत्त्व हो तो सिद्ध हुआ लाभ भी नाश को प्राप्त होता है—५४

(८) नाड़ी बदलना हो तो—ज्ञानार्णव प्र० २६ में—

दक्षिणामथवा वामां यो निषद्धुं समीप्सति ।
तदङ्गं पीडयेदन्यां नासा-नाडी समाश्रयेत् ।। ६६ ।।

अर्थ—दाईं अथवा बाईं नाड़ी को बदलना चाहें तो उस नाड़ी की नासिका को पीडें तथा दाबें तो नाड़ी बदल जावेगी अर्थात् बांईं से दाहिनी तथा दाहिनी से बांईं नाड़ी हो जावेगी ।

(६) नाड़ी का संक्रमन—यथा ज्ञानार्णव प्र० २६ में

संचरति यदा वायुस्तत्त्वात्तत्वान्तरं तदा ज्ञेयम् ।
यत्त्यजति तद्धि रिक्तं तत्पूर्णं यत्र संक्रमति ।। ७४ ।।

अर्थ—जिस समय पवन एक तत्त्व से दूसरे तत्त्व में संचरती-बदलती हो उस समय जिसको छोड़े सो रिक्त पवन कहा जाता है। जिसमें संचरे उसे पूर्ण पवन कहा जाता है—७४

६६. यहां पर शिव स्वरोदय से वशीकरण लिखते हैं—जिससे गृह कलह शान्त होकर पति-पत्नी परस्पर प्रेम-पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें इसी लिए यह प्रकरण दिया जाता है।

चन्द्र सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीव-मंडले ।
आजन्मवशगा रामा कथिते यं तपोधनैः ।। २७६ ।।

अर्थ—स्त्री के चन्द्र स्वर को अपने सूर्य स्वर से आकर्षण करके अपने जीव स्वर के मंडल में टिकावे तो स्त्री जन्म भर अपने वश में होती

है यह योगी पुरुषों का कहना है—२७६

जीवेन गृह्यते जीवो-जीवो जीवस्य दीयते ।
जीवस्थाने गतो जीवो बाला जीवान्त कारकः ।। २७७ ।।

अर्थ—पुरुष अपने जीव स्वर में स्त्री के जीव स्वर को पकड़े और स्त्री के जीव स्वर से इस प्रकार जीव के स्थान में गया हुआ जीव जिसको हो ऐसा पुरुष जन्म भर उस स्त्री के वश में रहता है—२७७

रात्र्यन्तयाम वेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने ।
ब्रह्मजीवं पिवेद्यस्तु बाला प्राणहरो नरा ।। २७८ ।।

अर्थ—रात्री के पिछले पहर जब स्त्री सोई रहती है उस समय जो पुरुष ब्रह्मा जीव (सुखमना स्वर) को पीता है वह पुरुष स्त्री के प्राणों को वश में करता है—२७८

अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन् काले गते सति ।
तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी ।। २७९ ।।

अर्थ—उस काल के व्यतीत होने पर अष्टाक्षर मत्र को जप कर जो पुरुष अपना चन्द्र स्वर स्त्री को देता है तो वह कामिनी उसी क्षण मोह को प्राप्त होती है—२७९

अथ अष्टाक्षर मंत्रः—ॐ नमो अरिहंताणं ।

शयने वा प्रसंगे वा युवत्यालिंगनेऽपि वा ।
यः सूर्येण पिवेच्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः ।। २८० ।।

अर्थ—सोते समय अथवा स्त्री संग करते समय अथवा आलिगन करते समय जो पुरुष अपने सूर्य स्वर से स्त्री के चन्द्र स्वर को पीता है वह पुरुष कामदेव के समान मोह करने वाला होता है—२८०

शिव आलिंग्यते शक्तया प्रसंगे दक्षिणेऽपि वा ।
तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तु मोह्येत्कामिनी शतम् ।। २८१ ।।

अर्थ—पुरुष यदि अपने सूर्य स्वर में स्त्री के चन्द्र स्वर से स्त्री संग के समय मिल जाय अथवा स्त्री के सूर्य स्वर में अपना चन्द्र स्वर स्त्री को

तथा तेरह श्वास तक सुखमन स्वर चलता है—३५०

दे दे तो वह पुरुष सौ कामिनियों को मोह सकता है—२८१

सप्त-नव-त्रयः पंचवारान् संगस्तु सूर्य भे।
चन्द्रे द्वि-तुर्य-षट् कृत्वा वश्या भवति कामिनी ॥ २८२ ॥

अर्थ—स्त्री के चन्द्र स्वर चलता हो तथा पुरुष का सूर्य स्वर चलता हो इन दोनों स्वरों के मेल से सात, नव, तीन, पांच वार संगम हो जाय अथवा स्त्री से चन्द्र स्वर में अपना सूर्य स्वर हो तो दो, चार, छः बार मिल जाय तो वह कामिनी वश में होती है—२८२

सूर्य-चन्द्रौ समाकृष्य सर्पाक्रान्त्याऽधरोष्ठयोः।
महापद्म मुखं स्पृष्ट्व वारं वारमिदं चरेत् ॥ २८३ ॥

अर्थ—अपने सूर्य और चन्द्र स्वर को सर्प की गति से खींच कर अधरोष्ठों पर स्त्री के मुख से अपना मुख स्पर्श करके वारम्वार पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्र और सूर्य का मेल करे—२८३

आप्राणमिति पद्मस्य यावन्निद्रावशं गता।
पश्चाज्जागृति वेलायां चोष्येते गल चक्षुषी ॥ २८४ ॥

अर्थ—जब तक स्त्री निद्रा के वश रहे तब तक पूर्वोक्त प्रकार से स्त्री मुख कमल का पान करे पीछे जागने के समय गले और नेत्रों का चुनम्ब करे—२८४

ज्ञानार्णव प्र० २९ से वशीकरण लिखते हैं—

नृपति-गुरु-वन्धु वृद्धा अपरेऽप्यभिलषित स्त्रीलोकः।
पूर्णांगे कर्त्तव्या विदुषा वीत—प्रपञ्चेन ॥ ६० ॥

अर्थ—यहां वशीकरण प्रयोग है—सो राजा, गुरु, बंधु, वृद्धपुरुष तथा अन्य लोगों से भी अपने वांछित को प्राप्त करना चाहते हों तो प्रपंच रहित पंडित पुरुषों को चाहिए कि वशीकरण प्रयोग करे अर्थात् भरे स्वर की तरफ उन्हें बिठा कर वार्तालाप करने से वे अपने अनुकुल हो जायेंगे—६०

शयनासनेषु दक्षैः पूर्णांगनिवेशितासु योषासु।
ह्रियते चेतस्त्वरितं नातोऽन्यद्वश्य—विज्ञानम् ॥ ६१ ॥

कालज्ञान[७०]

अष्ट पहर जो भान घर, चले निरन्तर वाय।
तीन बरस का जीवना, अधकी रहे न काय ॥ ३५१ ॥
चले निरन्तर पिंगला, सोल पहर परमाण।
दोय बरस काया रहे, पीछे जावे प्राण ॥ ३५२ ॥
भान निरन्तर जो चले. रात दिवस दिन तीन।
बरस एक ही होय फुनि, दीरघ निद्रा लीन ॥ ३५३ ॥

प्रवीण पुरुषों के द्वारा भरे स्वर में निवेशित स्त्रियों के चित्त त्वरित ही हरे जाते हैं। इससे अन्य वश करने का कोई भी उत्तम विज्ञान नहीं है—६१

अरि-ऋणिक-चौर-दुष्टा अपरेप्युपसर्ग-विग्रहाद्याश्च।
रिक्तांगे कर्त्तव्या जय-लाभ-सुखार्थिभिः पुरुषैः ॥ ६२ ॥

अर्थ—शत्रु, ऋण वाला, चोर, दुष्ट पुरुष तथा अन्य भी ऐसे लोग वश करने के लिए तथा उपसर्ग, युद्ध इत्यादि कार्य जय लाभ सुख के अर्थियों को रीते (खाली) स्वर में करने चाहिए—६२

७०—अन्य रीति से काल ज्ञान इस टिप्पणी में लिख रहे हैं सो ज्ञात करें—

(क) १. स्वर द्वारा आयुष्य ज्ञान

(कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य कृत योग शास्त्रे)

(१) विपरीत वायु चले तो उसका फल—

यदि तीन पक्षों तक (१५ दिनों का पक्ष) वायु विपरीत उदय हो (अर्थात् सूर्य के बदले चन्द्र का और चन्द्र के बदले सूर्य का उदय हो) तो उस मनुष्य की छः मास में मृत्यु हो। दो पक्ष विपरीत स्वर चले तो प्रिय बन्धुको विपदा आवे। एक पक्ष तक यदि वायु विपरीत चले तो भयंकर व्याधि उत्पन्न हो। यदि दो तीन दिन विपरीत चले तो क्लेशादि पैदा हो।

(२) यदि चन्द्र नाड़ी में तीन दिन रात वायु चले तो रोग पैदा हो।

(३) एक महीने तक चंद्र नाड़ी में ही पवन चले तो रोग पैदा हो।

(४) यदि दस दिन निरन्तर चन्द्र नाड़ी में ही पवन चले तो उद्वेग तथा

अर्थ—(१) यदि आठ पहर तक (दिन-रात—चौबीस घंटे) सूर्य स्वर ही चलता रहे बीच में बिल्कुल न बदले तो तीन वर्ष की आयु जाननी चाहिए—३५१

रोग हो।

(५) यदि सूर्य चन्द्र एक-एक नाड़ी में वारी-वारी डेढ़-डेढ़ घण्टा वायु चले तो लाभ और पूजा आदि फल हो।

(६) विषुवत्[1] समय में जिसकी आंखें फरकें तो वह एक दिन रात में मृत्यु पावे। वायु के विकार से फरके तो उसका ऐसा फल नहीं। पर स्वाभाविक फरकें तो उसका फल होता है।

(७) दिन में पांच संक्रांति[2] बीतने के बाद यदि वायु मुख से चले तो मित्र हानि, धन की हानि, निस्तेज आदि सब अनर्थों को प्राप्त करे, मृत्यु के विना।

(८) तेरह स्वर सक्रांतियों के बाद वायु यदि बांई (डावी) नासिका में से चले तो वह रोग और उद्वेगादि होने की सूचना है।

(९) मगसिर सक्रांति काल से लेकर यदि एक ही नाड़ी में पांच दिन तक निरन्तर पवन चलता रहे तो उस दिन से अठारहवें वर्ष मृत्यु होगी। (१०) शरद् सक्रांति (आसोज मास की सक्रांति) से एक ही नाड़ी में पांच दिन तक पवन चले तो उस दिन से पन्द्रहवें वर्ष में मृत्यु हो। (११) श्रावण सक्रांति से पांच दिन एक ही नाड़ी में पवन चले तो बारहवें वर्ष मृत्यु हो। (१२) जेठ महीने की सक्रांति के दिन से दस दिनों तक पवन एक ही नाड़ी में चले तो नवें वर्ष मृत्यु हो। (१३) चैत्र मास की सक्रांति[3] से पांच दिन एक ही नाड़ी में पवन चले तो छठे वर्ष मृत्यु हो। (१४) माघ सक्रांति पांच दिन तक एक ही नासिका में से पवन चले तो तीन वर्ष के अन्त में मृत्यु हो।

नोट १—बारह घण्टों का दिन और बारह घण्टों की रात हो तो वह विषुवत् समय कहलाता है। कोई विषुवत् काल का ऐसा अर्थ करते हैं कि सूर्य और चन्द्र नाड़ी एक साथ दोनों चलें तो वह विषुवत काल है।

नोट २—एक नाड़ी से दूसरी नाड़ी में पवन जाय उसे स्वर सक्रांति कहते हैं।

नोट ३—शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से स्वरोदय में मास की सक्रांति होती है।

(२) जिस मनुष्य का सूर्य स्वर सोलह पहर (दो दिन-रात—४८ घंटे) तक बराबर चलता रहे बीच में बिल्कुल न बदले तो उसकी दो वर्ष में मृत्यु होगी—३५२

---

(१५) उपर्युक्त महीनों की सक्रांति से यदि दो-तीन-चार दिनों तक एक नासिका में से पवन चले तब जितने वर्षों में मृत्यु कही है उसको पांच से भाग देकर जो उत्तर आवे उसको उतने वर्षों से गुणा करके जो उत्तर आवे उतने वर्ष की आयु जानें।

२. पौष्ण काल द्वारा मृत्यु निर्णय

सूर्य नाड़ी में पवन

पौष्णकाल में यदि आधे दिन तक सूर्य नाड़ी में पवन चले तो चौदहवें वर्ष में मृत्यु हो। यदि सारा दिन सूर्य नाड़ी में पवन चले तो १२ वर्षों में मृत्यु हो। यदि दिन रात (चौबीस घण्टे सूर्य नाड़ी में पवन चले तो दसवें वर्ष में मृत्यु हो। यदि चार दिन रात सूर्य नाड़ी में वायु चले तो चौथे वर्ष में मृत्यु हो, पांच दिन चले तो तीन वर्ष में मृत्यु हो।

पौष्ण काल में यदि छह दिन पवन सूर्य नाड़ी में चले तो १०५६ दिन, सात दिन से १००८ दिन, आठ दिन से ९३६ दिन, दस दिन से ७२० दिन, ग्यारह दिन से ६९६ दिन, बारह दिन से ६४८ दिन, तेरह दिन से ५७६ दिन, चौदह दिन से ४८० दिन, पंद्रह दिन से ३६० दिन, सोलह दिन से ३४८ दिन, सत्तरह दिन से ३२४ दिन, अठारह दिन से २८८ दिन, उन्नीस दिन से २४० दिन, बीस दिन से १८० दिन, इक्कीस दिन से १७४ दिन, बाईस दिन से १६२ दिन, तेईस दिन से १४४ दिन, चौबीस दिन से १२० दिन, पच्चीस दिन से ९० दिन, छब्बीस दिन से ६० दिन, सत्ताईस दिन से ३० दिन, अट्ठाईस दिन से १५ दिन, उनत्तीस दिन से १० दिन, तीस दिन से ५ दिन, इकत्तीस दिन से ३ दिन, बत्तीस दिन से २ दिन, तेतीस दिन से १ दिन में मृत्यु होती है। पौष्ण काल में यह सूर्य नाड़ी में पवन चलने का मृत्यु सम्बन्धी जानकारी (निर्णय)

(३) जिस मनुष्य को तीन रात दिन बराबर सूर्य स्वर चलता रहे बीच

दिया है ।

पौष्ण[४] काल में चन्द्र नाड़ी में पवन

पौष्ण काल में यदि उपर्युक्त दिनों में चन्द्र नाड़ी में पवन चले तो उतने समय के हिसाब से मृत्यु के बदले-व्याधि, मित्र विनाश, महाभय, परदेश गमन, धन विनाश, पुत्र विनाश तथा दुर्भिक्ष आदि उत्पन्न हों ।

इस प्रकार शरीर में रहे हुए चन्द्र सूर्य सम्बन्धी प्रत्येक वायु का अभ्यास कर आयुष्य का निर्णय जानना चाहिये । कदाचित व्याधि अथवा रोग होने से भी शरीर सम्बन्धी वायु का विपर्यास हो जाता है इसलिए कालज्ञान निश्चय करने के लिए आयुष्य जानने के लिए बाह्य कारणों को भी कहते हैं ।

रोग के कारण से कई बार एक नाड़ी अधिक समय चलती रहती है दूसरी नाड़ी चलती नहीं । ऐसा होने से आयुष्य निर्णय करने के लिए दूसरे लक्षण बतलाते हैं । यह भी प्रयोग के साथ विचार करने से काल का निश्चित निर्णय करने में सहयोगी हो सकते हैं ।

नेत्र, श्रोत (कान) तथा मस्तक के भेद से तीन प्रकार के लक्षणों को बतलाने वाले इस बाह्य काल को सूर्य के आलम्बन से देखें । तथा इस तीन प्रकार से अन्य काल के भेद को अपनी इच्छानुसार देखें ।

३—नेत्र लक्षण द्वारा कालज्ञान

बांयें (डाबे) चक्षु में सोलह पंखड़ियों वाला चन्द्र सम्बन्धी कमल है । ऐसा सोचें तथा दाहिने (जीमने) नेत्र में बारह पंखड़ियों वाला सूर्य सम्बन्धी कमल है ऐसा सोचें ।

नोट ४—पौष्ण काल का लक्षण—जन्म नक्षत्र में चन्द्रमा हो और अपनी राशी से सातवीं राशी में सूर्य हो तथा जितनी चन्द्रमा ने जन्म राशी भोगी हो उतनी ही सूर्य ने सातवीं राशी भोगी हो तब पौष्ण नाम का काल होता है । यह पौष्ण काल मृत्यु निर्णय करने में कारणभूत है । अर्थात् इस काल में मृत्यु का निर्णय किया जा सकता है ।

में बिल्कुल न बदले तो उसकी एक वर्ष में मृत्यु जाननी चाहिए—३५३

गुरु द्वारा बतलाई हुई विधि से अपनी अंगुली से आंख के अमुक भाग को दबाने से प्रत्येक कमल की चार पंखड़िया कांति के समान जगमगाहट करती हुई दिखलाई देंगी; उनको देखना।

(१) चन्द्र सम्बन्धी कमल में उन चार पांखड़ियों में से जो नीचे की पांखड़ी न दिखाई दे तो छः मास में मृत्यु हो। भ्रकुटी के पास की पांखड़ी दिखलाई न दे तो तीन मास में मृत्यु हो। आंख के कोने की तरफ की पांखड़ी न दिखलाई दे तो दो मास में मृत्यु हो। नासिका की तरफ की पांखड़ी न दिखलाई दे तो एक मास में मृत्यु हो।

(२) दाहिनी आंख को अंगुली से दबाने से सूर्य सम्बन्धी बारह पांखड़ियों वाला कमल दिखलाई देगा। इन बारह में से चार पांखडियां खद्योत (जुगनुं) के समान देदीप्यमान दिखलाई देंगी। इनमें से यदि नीचे की पांखड़ी दिखलाई न दे तो दस दिनों में मृत्यु हो। ऊपर की भ्रकुटी की तरफ की पांखड़ी दिखलाई न दे तो पांच दिन में मृत्यु हो। कान तरफ की—आंख के कोने की तरफ की पांखड़ी दिखलाई न दे तो तीन दिन में मृत्यु हो। यदि नाक की तरफ की पांखड़ी दिखलाई न दे तो दो दिन में मृत्यु हो।

(३) अंगुली से आंखों को दबाये बिना जो दोनों आंखों के कमलों की पांखड़ियां दिखलाई देवें तो सौ दिन में मृत्यु हो।

४—कान द्वारा आयु ज्ञान

(१) हृदय में आठ पांखड़ी वाले कमल का ध्यान करके फिर एक-एक हाथ की तर्जनी (अंगूठे के पास वाली) अंगुली एक-एक कान में (अर्थात् एक हाथ की तर्जनी एक कान में तथा दूसरे हाथ की तर्जनी दूसरे कान में) दोनों कानों के छेदों में डालकर ज़ोर से दबावें। तब ज़ोर से जलती हुई अग्नि के समान गड़गड़ाहट जैसा शब्द सुनाई देगा।

यदि ऐसा शब्द पांच दिन तक सुनाई न दे तो ५ वर्ष आयु बाकी समझें। इस प्रकार हम यहां जितने दिन गड़गड़ाहट शब्द सुनाई न दे उसकी आयु का

सोलह दिन जो भान घर, चले रात दिन श्वास ।
चिदानन्द निश्चय करी, जीवे ते इक मास ।। ३५४ ।।

समय लिखते हैं—

दिन गड़गड़ाहट सुनाई न दे	आयु वर्ष	मास	दिन	दिन गड़गड़ाहट सुनाई न दे	आयु वर्ष	मास	दिन
५ दिन	५	०	०	१८ दिन	२	७	६
६ दिन	४	११	६	१९ दिन	२	४	०
७ दिन	४	९	१८	२० दिन	२	०	०
८ दिन	४	७	६	२१ दिन	१	११	६
९ दिन	४	४	०	२२ दिन	१	९	१८
१० दिन	४	०	०	२३ दिन	१	७	६
११ दिन	३	११	६	२४ दिन	१	४	०
१२ दिन	३	९	१८	२५ दिन	१	०	०
१३ दिन	३	७	६	२६ दिन	०	११	६
१४ दिन	३	४	०	२७ दिन	०	९	१८
१५ दिन	३	०	०	२८ दिन	०	७	६
१६ दिन	२	११	६	२९ दिन	०	४	०
१७ दिन	२	९	१८	३० दिन	०	०	०

५—मस्तक द्वारा आयुष्य ज्ञान

ब्रह्मद्वार में फैलने वाली धुएं की श्रेणी यदि पांच दिन तक न दिखलाई दे तो तीन वर्षों में मृत्यु होगी ।

यह धुएं की श्रेणी ब्रह्मद्वार में कैसे जाती हैं यह गुरुगम से जान लेनी चाहिये ।

६—दोनों हाथों द्वारा मृत्यु ज्ञान

(१) काल चक्र जानने के लिए शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन पवित्र होकर अपने दाहिने (जीमने) हाथ को शुक्ल पक्ष की कल्पना करें । कनिष्टा अंगुली के नीचे के पर्व (पोरे) में एकम, बीच के पोरे में छठ तथा उपर के पोरे में एकादशी की कल्पणा करें । अंगूठे के निचले पर्व में पंचमी, बीच के पर्व में

अर्थ—(४) यदि सोलह दिनों तक निरन्तर सूर्य स्वर ही चलता रहे तो उस मनुष्य की एक महीने में मृत्यु जाननी चाहिए—३५४

दशमी, ऊपर के पर्व में पूर्णमासी की कल्पणा करें। अनामिका अंगुली में क्रमश: दूज, सप्तमी, द्वादशी; मध्यमा में तीज, अष्टमी, त्रयोदशी; तथा तर्जनी में क्रमश: चौथ, नवमी, चौदस की तिथियों की कल्पणा करें।

(२) कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा (एकम) के दिन बायें (डावे) हाथ को कृष्ण पक्ष की कल्पना करें तथा (शुक्ल पक्ष के हाथ के अनुसार) तिथियों की कल्पना करें[५] फिर जहां पर मनुष्यों का आवागमन न हो उस स्थान पर जाकर पद्मासन में बैठकर मन की प्रसन्नतापूर्वक उज्जवल ध्यान कर दोनों हाथों को कमल के डोडे के समान आकार बनाकर हाथों के अन्दर काले वर्ण के एक बिन्दु की कल्पना करें।

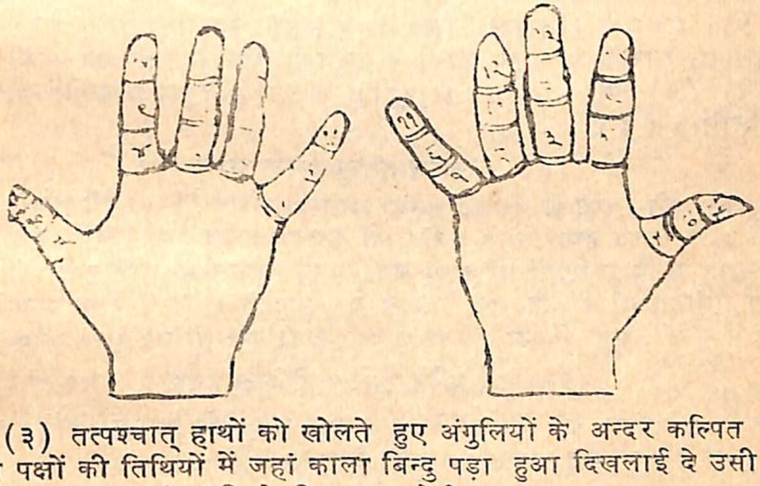

(३) तत्पश्चात् हाथों को खोलते हुए अंगुलियों के अन्दर कल्पित शुक्ल कृष्ण पक्षों की तिथियों में जहां काला बिन्दु पड़ा हुआ दिखलाई दे उसी शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष की तिथि के दिन मृत्यु होगी।

७—आयुष्य निर्णय का दूसरा उपाय

जिस मनुष्य के छींक, विष्टा, वीर्यस्राव तथा मूत्र ये चारों एक साथ हो जावें तो एक वर्ष के बाद उसी महीने और उसी पक्ष और उसी तिथि में मृत्यु हो।

नोट ५—तिथियों की तथा शुक्ल-कृष्ण पक्षों की कल्पना के लिए देखें ऊपर दिये हुए दोनों हाथों के चित्र।

मास एक अह निस वहे, सूरज सुर मन मांहि ।
दोय दिनों का जीवना, या में संशय नांहि ।। ३५५ ।।

अर्थ—(५) यदि एक मास तक निरन्तर सूर्य स्वर ही चलता रहे तो दो दिन की आयु जाननी चाहिए । (योगशास्त्र हेमचन्द्राचार्य कृत में) एक दिन की आयु कही है—३५५

८—अन्य उपाय से आयुष्य निर्णय

(१) रोहिणी नक्षत्र, (२) चन्द्रमा का लांछन, (३) छाया पुरुष, (४) अरुंधती (सप्त ऋषि तारों के समीप दूसरा छोटा तारा), (५) ध्रुव तारा ये पांच अथवा इनमें से एकाद कोई भी देखने में न आवे तो एक वर्ष में मृत्यु हो ।

९—अन्य आचार्यों के मत से आयुष्य ज्ञान

(१) अरुंधती (जिह्वा), (२) ध्रुव (नासा का अग्रभाग), (३) विष्णु पद (तारा–दूसरे के आंख की कीकी में देखने से अपनी आंख की कीकी दिखलाई दे), (४) तथा मातृमंडल (भृकुटी) ये चार आयुष्य क्षय होने वाली हो तो दिखलाई न दें ।

१०—स्वप्न द्वारा मृत्यु ज्ञान

(१) यदि स्वप्न में गिद्ध, कौआ तथा निशाचर (रात को चलने वाले) प्राणी द्वारा स्वप्न दृष्टा अपने शरीर को भक्षण करता हुआ देखें, अथवा गधा, ऊंट, सूअर आदि प्राणियों पर स्वयं सवारी करे अथवा वे स्वप्न दृष्टा को खेंचते अथवा घसीटते हों तो एक वर्ष के अन्त में मृत्यु हो । (२) रोगी मनुष्य यदि स्वप्न में उल्टी, मूत्र, विष्टा, सोना अथवा चांदी देखे तो नव मास जीवे ।

११—सूर्य और अग्नि से मृत्यु ज्ञान

यदि सूर्य मंडल को किरणों के बिना तथा अग्नि को किरणों सहित जाग्रत अवस्था में देखे तो वह मनुष्य ११ मास में मृत्यु पावे ।

१२—पिशाचादि देखने से मृत्यु ज्ञान

यदि किसी स्थान पर वृक्ष के अग्र भाग पर गन्धर्व नगर देखे अथवा प्रेत पिशादि को देखे तो दसवें महीने मृत्यु हो ।

१३—अकस्मात परिवर्तन से काल ज्ञान

जो मनुष्य अकस्मात् बिना कारण के एकदम मोटा हो जावे, अकस्मात् कृष (दुर्बला) हो जावे, शांत प्रकृति वाला अकस्मात् क्रोधी स्वभाव वाला हो जावे, अकस्मात् भय पाए (डरे) तो आठ महीने की आयु शेष समझे ।

चले निरन्तर सुखमना, पांच घड़ी सुर भाल।
पांच घड़ी सुखमन चलत, मरण होय ततकाल ॥ ३५६ ॥

१४—धूल-कीचड़ द्वारा आयुष्य ज्ञान

धूल अथवा कीचड़ में पूरा पग पड़ा हो तो भी वह अधूरा दिखलाई दे तो सात महीने जीवे।

१५—शरीर विकृति द्वारा काल ज्ञान

यदि आंख की कीकी काली अंजन जैसी दिखलाई दे, रोग बिना अकस्मात् होंठ और तालु सूख जावें, मुंह खोलने पर ऊपर और नीचे के दांतों के बीच अन्तर में अपनी तीन अंगुलियां न समावें, गिद्ध, कौआ, कबूतर, और दूसरा कोई मांस भक्षण करने वाला पक्षी सिर पर बैठे तो छः महीने के बाद मृत्यु हो।

१६—छः मास में मृत्यु

(१) बादल बिना के दिन में मुख में पानी भरकर आकाश के सामने फुतकार करके पानी को बाहर ऊंचे उछालें। इस प्रकार कई दिनों तक करें और उस उछलते हुए पानी में कई दिनों तक देखने से इन्द्रधनुष जैसा आकार दिखलाई न दे तो छः मास में मृत्यु होगी।

(२) दूसरे मनुष्य की आंख की कीकी में यदि अपना शरीर दिखलाई न दे तो भी छः मास में मृत्यु हो।

(३) दोनों घुटनों (जानू-गोड़ों) पर दोनों कोहनियों को स्थापन करें और हाथ के दोनों पंजे मस्तक पर स्थापन करें। उन दोनों हाथों के अन्तर में केले के डोडे के आकार जैसी छाया में यदि डोडे का एक पत्र विकसित (खिला हुआ) दिखलाई दे तो जिस दिन ऐसा स्वयं देखे उसी दिन से छः मास के अन्त में उसी तिथि में मृत्यु हो।

(४) बादल बिना के स्वच्छ दिनों में इन्द्रनील रत्न के समान कांति वाले, बांके-टेढ़े हज़ारों मोतियों के अलंकार वाले, सूक्ष्म आकृति वाले सर्प आकाश सन्मुख आते हुए दिखलाई देते हैं। जब ऐसे सांप बिल्कुल न दिखलाई दें तब छः महीनों के अन्त में मृत्यु हो।

(५) जो मनुष्य स्वप्न में अपना सिर मुंडा हुआ, तैल से मालिश किया हुआ, लाल पदार्थ से शरीर लिप्त, गले में लाल माला पहने हुए और लाल कपड़े पहन कर गधे पर बैठ कर अपने आपको दक्षिण दिशा पर जाते हुए देखे तो छः महीने आयु शेष समझें।

अर्थ—(६) यदि निरन्तर सुखमना स्वर पांच घड़ी चले और पांच घड़ी श्वास ठहर जाय, फिर पांच घड़ी सुखमना चले तो तत्काल मृत्यु हो—३५६

नहीं चन्द सूरज नहीं, सुखमन फुनि नहीं होय ।
मुख सेती स्वासा चलत, चार घड़ी थिति जोय ॥ ३५७ ॥

१७—पांच मास में मृत्यु

(१) विषय सेवन (स्त्री-पुरुष समागम) करने के बाद शरीर में घंटे के नाद के समान नाद सुनाई दे तो पांच महीनों के अन्त में निश्चय से मृत्यु हो ।

(२) सरठ (गिरगट-किरला) वेग (झड़प) से सिर पर चढ़कर चला जाए और जाते-जाते यदि शरीर की चेष्टाएं तीन प्रकार की करे तो पांच महीनों के अन्त में मृत्यु हो ।

१८—चार मास से एक मास के अन्त में मृत्यु

(१) **चार मास के अन्त में मृत्यु**—यदि नासिका टेढ़ी हो जावे, आंखें गोल हो जावें और कान अपने स्थान से ढीले पड़ जावें तो चार मास में मृत्यु हो ।

(२) **तीन मास के अन्त में मृत्यु**—यदि स्वप्न में काले वर्ण वाला, काले परिवार वाला तथा लोहे के दण्ड को धारण करने वाला मनुष्य दिखलाई दे तो तीन मास में मृत्यु हो ।

(३) **दो मास के अन्त में मृत्यु**—यदि चन्द्र को गरम, सूर्य को ठंडा, ज़मीन और सूर्य मंडल में छिद्र, जीभ काली, चेहरे को लाल कमल के समान देखे, तालु कांपे, मन में शोक हो, शरीर में अनेक प्रकार के वर्ण बदला करें, तथा नाभी से अकस्मात् हिचकी (हेड़की) उत्पन्न हो तो ऐसे लक्षणों वाले की दो मास में मृत्यु हो ।

(४) **एक मास के अन्त में मृत्यु**—जीभ स्वाद को न जान सके, बोलते हुए बार-बार स्खलना हो, कान शब्द न सुनें, नासिका गन्ध न जान सके, निरन्तर नेत्र फरका करें, देखी हुई वस्तु में भी भ्रम हो, रात को इन्द्रधनुष दिखलाई दे, दर्पण में अथवा पानी में अपनी आकृति न दिखलाई दे, बादल बिना की बिजली देखे, बिना कारण सिर जला करे, हंस, कौए अथवा मोर को

अर्थ—(७) यदि चन्द्र, सूर्य और सुखमना ये तीनों ही स्वर न चलें और मुख से श्वास लेना पड़े तो चार घड़ी में मृत्यु हो—३५७

मैथुन करते देखे, सर्द-गरम, खुरदरा-मुलायम स्पर्श को जान न सके। इन सब लक्षणों में से कोई भी एक लक्षण मनुष्य को दिखलाई दे तो उस मनुष्य की मृत्यु एक महीने में हो। इसमें संशय नहीं।

१६—दस दिन से एक दिन तक मृत्यु

(१) **दस दिनों में मृत्यु**—हकार अक्षर बोलते हुए यदि श्वास ठण्डा हो, फुत्कार करते हुए श्वास बाहर निकालते हुए गरम हो, स्मरण (याद) शक्ति बिलकुल न रहे, चलने-फिरने की गति क्षीण हो जाए तथा शरीर के पांचों अंग ठण्डे हो जावें तो दस दिनों में मृत्यु हो।

(२) **सप्ताह (सात दिनों) के अन्त में मृत्यु**—शरीर आधा गरम और आधा ठण्डा हो जावे तथा बिना कारण के अकस्मात् शरीर में ज्वाला जला करे तो सात दिनों में मृत्यु हो।

(३) **छः दिनों के अन्त में मृत्यु**—यदि स्नान करने के बाद तुरन्त हृदय और चरण सूख जावे तो छटे दिन मृत्यु हो।

(४) **तीसरे दिन मृत्यु**—कड़कड़ करते दांत घिसें, शरीर में से मुर्दे के समान महा दुर्गन्ध निकला करे तथा शरीर के वर्ण में विकृति हो तो तीसरे दिन मृत्यु हो।

(५) **दूसरे दिन मृत्यु**—यदि मनुष्य अपनी नाक, जीभ, ग्रह, नक्षत्र, तारे, निर्मल दिशा तथा आकाश में रहे हुए सप्त ऋषियों के तारों को न देख सके तो उसकी दो दिन में मृत्यु हो।

२०—छाया पुरुष द्वारा मृत्यु आदि ज्ञान

सुबह, सायं अथवा प्रकाश वाली रात को प्रकाश में खड़े रहकर अपने हाथ लम्बे (काउसग्ग मुद्रा के समान) रखकर अपने शरीर की छाया के सामने खुली आंखों से कुछ समय तक देखा करे। तत्पश्चात धीरे-धीरे आंखों को छाया पर से हटाकर खुली आंखों से ऊंचे या सामने आकाश में देखें, तो पुरुष के समान सफेद आकृति आकाश में रही हुई दिखलाई देगी। यदि इस आकृति का सिर

दिन में तो शशि स्वर चले, निशा भानु परकाश।
चिदानन्द निश्चय अति, दीरघ आयुष तास ॥ ३५८ ॥

अर्थ—(८) यदि सारे दिन में चन्द्र स्वर चले और सारी रात में सूर्य स्वर चले तो बड़ी आयु जाननी चाहिए—३५८

दिखलाई न दे तो अपनी मृत्यु हो। यदि बांयी भुजा दिखलाई न दे तो पुत्र अथवा स्त्री की मृत्यु हो। यदि दाहिनी [जिमनी] भुजा दिखलाई न दे तो भाई की मृत्यु हो। हृदय न दिखलाई दे तो अपनी मृत्यु हो। पेट का भाग दिखलाई न दे तो धन का नाश हो। गुह्य स्थान दिखलाई न दे तो अपने पिता की मृत्यु हो। दोनों उरु न दिखलाई दें तो व्याधि हो। पग न दिखलाई दें तो विदेश जाना पड़े। यदि सारा शरीर न दिखलाई दे तो तत्काल अपनी मृत्यु हो।

२१—विद्या द्वारा काल आदि का ज्ञान

(१) विद्या द्वारा दर्पण, अंगूठे के नख अथवा भींत (दीवाल) आदि में उतारे हुए देवता द्वारा विधि पूर्वक पूछने से आयु आदि अनेक प्रश्नों का निर्णय प्राप्त हो जाता है।

(२) अथ विद्या—"ॐ नरवीरे ठः ठः स्वाहा" ॥ (३) साधन विधि—सूर्य ग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण में इस विद्या का १००८ बार जाप करके सिद्ध करे। (४) पश्चात् कार्य पड़ने पर १००८ बार इस विद्या को जप कर दर्पणादि में देवता को उतारें। फिर इस दर्पणादि को एक क्वारी कन्या को दिखलावे। (५) उसमें वह कन्या देवता का रूप देखे तब उसके द्वारा आयुष्य का निर्णय पूछे, वह कन्या सब बतला देगी। (६) इसी प्रकार अन्य प्रश्नों का निर्णय भी पा सकते हैं। (७) अथवा उत्तम साधक के गुण से आकर्षित वह देवता अपने आप निर्णयात्मक तथा संशय रहित त्रिकाल सम्बन्धी आयुष्य ज्ञान बतलावे। अथवा अन्य प्रश्नों का भी समाधान करे।

२२—निरोगी मनुष्य के लिए शकुन द्वारा काल ज्ञान

रोगी हो अथवा निरोगी, अपने से अथवा पर से, घर में अथवा बाहर शकुन से शुभाशुभ का निर्णय जानें। (१) सांप, बिच्छू, कृमी, चूहे, छपकलियां, (गिरोली) कीड़िया (च्युंटियां), जुएं, खटमल (माकन), लुता, दीमक (उदही)

दिवानाथ हो दिवस में, निशा निशाकर श्वास।
चिदानन्द षट् मास तक, जीवितव्य की आस॥ ३५६॥

अर्थ—(६) यदि दिन भर सूर्य स्वर चले और रात भर चन्द्र स्वर चले तो छः महीने की आयु जानना चाहिए—३५६

के घर, घीमेल तथा भ्रमरियां एकदम विशेष संख्या में दिखलाई दें तो उद्वेग, क्लेश, व्याधि अथवा मृत्यु हो। (२) जूते, हाथी, घोड़ा आदि वाहन, छत्र, शस्त्र, शरीर और केश (सिर के बाल) इनमें से किसी को कौआ चोंच से स्पर्श करे तो समझ लें कि मृत्यु समीप है। (३) आंखों से आंसू बहाती गाय बहुत ज़ोर से अपने खुर से पृथ्वी को खोदे तो गाय के स्वामी की रोग से मृत्यु हो।

२३—रोगी मनुष्य के लिए शकुन द्वारा काल ज्ञान

(१) रोगी जब अपनी आयुष्य सम्बन्धी शकुन देखता हो तब यदि कुत्ता दक्षिण दिशा सन्मुख जाकर अपनी गुदा को चाटे तो एक दिन में मृत्यु हो। (२) यदि कुत्ता अपना हृदय चाटे तो दो दिनों में रोगी मरे। (३) यदि कुत्ता अपनी पूंछ चाटे तो रोगी तीन दिन में मरे। यदि कुत्ता अपना सारा शरीर संकुचित करके सोवे अथवा कानों को फड़फड़ावे और शरीर को धुंजावे तो रोगी की मृत्यु हो। (५) यदि कुत्ता मुंह ढीला करके लाल टपकावे और आंखें मीचकर शरीर को संकुचित करके सोवे तो रोगी की निश्चय मृत्यु हो।

२४—कौए के शकुन द्वारा आयुष्य ज्ञान

(१) यदि रोगी के घर पर प्रातः, दोपहर और सायं तीन काल कौओं का समुदाय (टोले) मिलकर कोलाहल करें तो रोगी की निश्चय मृत्यु हो। (२) रोगी के रसोईघर पर, शयनागार (सोने के घर) पर कौए चमड़ा, हड्डी, रस्सी-रस्सा, केश (सिर के बाल) लाकर फैंके तो रोगी की मृत्यु नज़दीक है।

२५—उपश्रुति द्वारा काल ज्ञान

उपश्रुति द्वारा आयुष्य निर्णय करने की विधि बतलाते हैं—(१) भद्रादि अपयोग न हों ऐसे उत्तम दिन, रात को सोने के समय (तीन घंटे रात बीतने के बाद) पूर्व, उत्तर अथवा पश्चिम दिशा की तरफ जावें। जाने से पहले नवकार मंत्र से अथवा सूरि मंत्र से कान पवित्र (मंत्रित) करें तत्पश्चात् घर से निकलें।

चार आठ द्वादश दिवस सोलस वीस विचार ।
चलत चन्द नितमेव इम, आयु दीरघ धार ॥ ३६० ॥

अर्थ—(१०) यदि चार आठ, बारह, सोलह अथवा बीस दिन रात निरंतर चन्द्र स्वर चलता रहे तो दीर्घ आयु जाननी चाहिए—३६०

रास्ते में किसी के शब्द कानों में न आवे इस प्रकार कानों को ढांक कर शिल्पियों के घर की तरफ अथवा बाजार में पहले कही हुई तीनों दिशाओं में से किसी एक दिशा की तरफ जावें। वहां जाकर भूमि को चन्दन द्वारा पूजन करके उस पर गंध-अक्षत (बरास-चावल) डालकर सावधान होकर किसी भी मनुष्य का शब्द होता हो तो कानों को खोलकर सुने। उनको सुनकर आयुष्य का निर्णय जाने।

(२) उपश्रुति के शब्द दो प्रकार के हैं—अर्थांतरापदेश्य उपश्रुति और स्वरूप-उपश्रुति। अर्थांतरापदेश्य उपश्रुति अर्थात् जो शब्द सुनाई दें उसका कोई दूसरा अर्थ हो। स्वरूप उपश्रुति अर्थात् जैसा शब्द सुनाई दे वैसा ही अर्थ हो। अथवा वैसा ही अर्थ ग्रहण करना। पहली अर्थांतरापदेश्य उपश्रुति विचार से जानी जाती है और दूसरी स्वरूप उपश्रुति अर्थ से जानी जाती है। अर्थांतरापदेश्य उपश्रुति बतलाती है जैसे कि इस घर का स्तम्भ पांच-छः दिनों में अथवा पांच-छः पक्षों; महीनों; वर्षों में टूट जायेगा अथवा नहीं टूटेगा। वह बहुत मजबूत था पर जल्दी टूट जावेगा इत्यादि। इस पर से अपनी आयुष्य का वैसा ही निर्णय कर लेना कि इतने दिनों, पक्षों, महीनों अथवा वर्षों में मृत्यु होगी।

दूसरी स्वरूप उपश्रुति कहती है कि—(१) यह पुरुष अथवा स्त्री इस स्थान से नहीं जावेगा, हम इसे जाने भी नहीं देंगे और वह जाना भी नहीं चाहता। (२) जाने की इच्छा करता है, मैं भी उसे भेजना चाहता हूं, इसलिए अब वह यहां से जल्दी जायेगा। इससे समझ लेना चाहिये कि यदि जाने का सुने तो मृत्यु समीप है और यदि रहने का सुने तो अभी मृत्यु नहीं है।

इस प्रकार कान खोलकर अपने द्वारा सुनी हुई उपश्रुति द्वारा कुशल समझदार व्यक्ति समीप या दूर अपनी आयुष्य का निर्णय जान सकता है।

रात दिवस जो तीन दिन, चले तत्त्व आकाश।
बरस दिवस काया स्थिति, तस उपरांत विनाश ।। ३६१ ।।

अर्थ – (१) यदि तीन दिन रात निरन्तर आकाश तत्त्व चलता रहे तो एक वर्ष की आयु जाननी चाहिए—३६१

२६—शनिश्चर पुरुषाकृति द्वारा काल ज्ञान

(१) शनिश्चर की पुरुष जैसी आकृति बनाकर निमित्त देखने के अवसर पर जिस नक्षत्र में शनि हो, वह नक्षत्र मुख में लिखें तत्पश्चात् क्रमशः चार नक्षत्र दाहिने हाथ में, दायें-बायें पैरों में क्रमश: तीन-तीन नक्षत्र, बायें हाथ में चार नक्षत्र, पांच नक्षत्र छाती में, तीन नक्षत्र सिर में, दो-दो नक्षत्र दोनों नेत्रों में, एक नक्षत्र गुह्य स्थान (जननेन्द्रिय) में लिखे। इस प्रकार आकृति (चित्र) तैयार करें।

(२) निमित्त देखने के समय स्थापना के अनुक्रम से जन्म नक्षत्र अथवा नाम नक्षत्र यदि गुह्य भाग में आया हो तथा दुष्टग्रहों की उस पर दृष्टि पड़ती हो अथवा उसके साथ मिलाप होता हो, वह मनुष्य निरोगी हो अथवा रोगी हो तो भी उसकी मृत्यु हो।

२७—पृच्छा लग्न के अनुसार काल ज्ञान

(१) आयुष्य सम्बन्धी प्रश्न पूछते समय जो चालू लग्न हो यदि उसका तत्काल अस्त हो जाये तथा क्रूर ग्रह चौथे, सातवें अथवा दसवें हों एवं चन्द्रमा छठा अथवा आठवां हो तो उसकी मृत्यु हो। (२) आयुष्य सम्बन्धी प्रश्न पूछते समय यदि लग्नाधिपति मेषादि राशि में कुज, शुक्रादि हो अथवा चालू लगन का अधिपति ग्रह का अस्त हो गया हो तो मृत्यु हो। (३) प्रश्न करते समय यदि चन्द्रमा लग्न में हो, बारहवें शनि हो, नवमे मंगल हो, आठवें सूर्य हो, और गुरु बलवान न हो तो मृत्यु हो। (४) प्रश्न पूछते समय छठा अथवा तीसरा सूर्य हो और चन्द्रमा दसवें हो तो तीसरे दिन मृत्यु हो। (५) प्रश्न पूछते समय यदि लग्न से पाप ग्रह चौथे अथवा बारहवें हों तो उसकी तीसरे दिन मृत्यु हो। (६) प्रश्न समय चालू लग्न में अथवा पांचमें यदि क्रूर ग्रह हों तो आठ अथवा दस दिनों में मृत्यु हो। (७) प्रश्न समय अथवा वर्ष फल में सातमें

अहोरात दिन चार जो, चले तत्त्व आकाश।
थिरता तन की जानजो, उत्कृष्टि षट् मास ॥ ३६२ ॥

अर्थ—(१२) यदि चार दिन रात तक बराबर आकाश तत्त्व चलता रहे तो अधिक से अधिक छः महीने की आयु जाननी चाहिए—३६२

धन राशि और मिथुन राशि में जो अशुभ ग्रह आये हों तो व्याधि अथवा मृत्यु हो।

२८—यंत्र द्वारा काल का स्वरूप

(१) यंत्र विधि—पहले ॐ कार करना, इस ॐ कार के अन्दर अपना अथवा जिसकी आयु पूछना हो उसका नाम लिखे। यह ॐ कार छः कोण वाले यंत्र में लिखें। इस यंत्र के कोणों में छः "र" कार लिखना। "अं आं इं ईं उं ऊं" ये छः स्वर इन कोणों के पास बाहर लिखना, कोणों के बाहर छः "साथिया" लिखें। साथिये और स्वरों के बीच में अन्तर में छः "स्वा" लिखना। चारों तरफ "यः" लिखना। "यकार" के ऊपर चारों तरफ वायु के पूर से आवृत संलग्न चार रेखाएं करना। ऐसा यंत्र बनाकर उसे पैरों में हृदय में, सिर में सन्धियों में स्थापन करें।

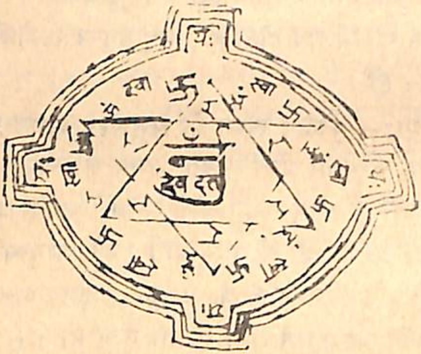

(२) फिर सूर्योदय समय सूर्य की तरफ पीठ करके पश्चिम दिशा में बैठ कर अपनी अथवा पर की आयुष्य का निर्णय करने के लिये यदि स्वयं के लिए पूछना हो तो स्वयं अथवा दूसरे के लिए पूछना हो तो उसे बिठला कर उसकी छाया को उसे दिखलावें यदि छाया पूर्ण दिखलाई दे तो एक वर्ष तक मृत्यु नहीं है और रोग रहित सुख में वर्ष व्यतीत करेगा। यदि कान न दिखाई दे तो बारह वर्षों के अन्त में मृत्यु होगी। यदि हाथ न दिखलाई दे तो दस वर्ष, अंगुलियां न दिखलाई दें तो आठ वर्ष; कन्धे न दिखलाई दें तो सात वर्ष, केश (बाल)

अरुंधति ध्रुव बालिका, मातृ मंडले जोय।
ये चारों न लखी सके, आयु हीन नर सोय॥ ३६३॥

अर्थ—(१३) अरुन्धती, ध्रुव, बालिका, तथा मातृका मंडल ये चारों जिस पुरुष को न दीख पड़ें, उसकी आयु अत्यल्प जाननी चाहिए—३६३

न दिखलाई दें तो पांच वर्ष, पार्श्व (पड़खे) न दिखलाई दें तो तीन वर्ष, यदि नाक न दिखलाई दे तो एक वर्ष में मृत्यु हो। यदि सिर अथवा चिबुक (ठोड़ी) न दिखलाई दे तो छः मास, यदि ग्रीवा (गर्दन) दिखलाई न दे तो एक मास, यदि आंखें न दिखलाई दें तो ग्यारह दिन, हृदय में छिद्र दिखलाई दे तो सात दिन में, यदि दो छाया दिखलाई दें तो तत्काल मृत्यु हो।

२६—विद्या द्वारा काल ज्ञान

(१) पहले चोटी में "स्वा" शब्द; मस्तक में "ॐ" शब्द; नेत्र में "क्षि" शब्द; हृदय में "पं" शब्द; नाभि कमल में "हा" शब्द स्थापन करें।

(२) **विद्या**—ॐ जुंसः ॐ मृत्युंजयाय ॐ वज्रपाणिने शूलपाणिने हर हर दह दह स्वरूपं दर्शय दर्शय हुं फुट्।

(३) **विधि**—उपर्युक्त विद्या से एक सौ आठ (१०८) बार दोनों नेत्र तथा अपनी छाया को मन्त्रित करके सूर्योदय समय सूर्य की तरफ पीठ करके पश्चिम दिशा तरफ मुख करके दूसरे के लिए दूसरे की छाया और अपने लिए अपनी छाया देखें।

(४)यदि सम्पूर्ण छाया दिखलाई दे तो चालू सम्पूर्ण वर्ष में मृत्यु न हो। पग, जांघें, घुटने न दिखलाई दें तो क्रमशः तीन, दो, एक वर्ष के अन्त में मृत्यु हो। (५) उरु न दिखलाई दे तो दस मास, कमर दिखलाई न दे तो आठ अथवा नव मास, पेट दिखलाई न दे तो पांच मास के अन्त में मृत्यु हो। (६) गर्दन न दिखलाई दे तो चार, तीन, दो अथवा एक मास में मृत्यु हो। कक्षा (बगल) न दिखलाई दे तो पन्द्रह दिन, भुजा न दिखलाई दे तो दस दिन में मृत्यु हो। (७) छाया में कन्धे न दिखलाई दें तो आठ दिन, हृदय न दिखलाई दे तो चार पहर (आधा दिन), सिर न दिखलाई दे तो दो पहर, यदि सर्वथा शरीर न दिखलाई दे तो तत्काल मृत्यु हो।

अन्य आचार्यों के मत से

(ख) यदि दूत किसी वैद्य को रोगी के लिये बुलाने जावे अथवा किसी ज्योतिषी से रोगी सम्बन्धी प्रश्न पूछने जावे तब उसके मार्ग में खाली घड़ा अथवा तैली आदि अशुभ शकुन सामने पड़ जावें तो ऐसा रोगी प्रायः मर ही जाया करता है।

(ग) जिस रोगी के घर वाले तथा सम्बन्धी लोग भोजन करने बैठें और

जिह्वा नासा अग्रे फुनि, भ्रू को मध्य विचार ।
सुर जोयन कीकी कही, अनुक्रम थी चित्त धार ।। ३६४ ।।

अर्थ—इस श्लोक का पद्य नं० ३६३ से सम्बन्ध है अर्थात् जिह्वा को अरुन्धती, नासिका के अग्रभाग को ध्रुव तारा, आंख की कीकी को बालिका तथा भ्रकुटी को मातृमंडल कहा है—३६४

रसना शशि, दिवस स्थिति, घ्रान हुताशन जान ।
बालिका नव तारका, पंच काल पहिचान ।। ३६५ ।।

उनकी भोजन में रुचि न हो अथवा खाया न जावे या खा कर वमन कर दे तो बहुधा वह रोगी मर जाता है।

(घ) जो मनुष्य सुखमना स्वर में बीमार होता है वह बहुधा स्वस्थ नहीं होता ।

(ङ) रोगोत्पत्ति काल में जिस मनुष्य का प्रथम सुषुम्ना स्वर चलता हो और आकाश तत्त्व का प्रवाह हो तो वह रोगी शीघ्र मरेगा ।

(च) दाहिने हाथ की मुट्ठी बांध कर मस्तक पर लगा कर देखे तो छः मास आयु बाकी रहने पर मुट्ठी और हाथ न्यारे-न्यारे दिखलाई पड़ेंगे ।

(छ) यदि दूत किसी वैद्य या ज्योतिषी के घर बुलाने या प्रश्न पूछने को जावे और उस समय वैद्य तथा दूत अथवा दूत तथा ज्योतिषी का सुषुम्ना (दोनों नथनों वाला) स्वर चले तो उस रोगी का बचना बड़ा कठिन है।

(ज) हाथ की मध्यमा अंगुली को मोड़ कर अंगूठे की जड़ में लगा कर बाकी अंगुलियों को धरती पर जमावें । फिर एक अंगुली उठावें फिर जहां की तहां स्थित करें । यदि केवल अनामिका ही उठे तो समझना कि दोपहर में मृत्यु हो जायगी ।

(झ) जो पुरुष स्वप्न में काले और लाल रंग के वस्त्र पहने हुए तथा लाल और काले रंग के पदार्थों से विलेपन किये हुए स्त्री को आलिंगन करे तो उसकी मृत्यु होगी । जो मनुष्य स्वप्न में डरावना, विकार वाला मुंह, काला और नग्न पिंजर वाला अथवा हंसता दीख पड़े तो उसकी मृत्यु होती है ।

अर्थ—(१४) यदि जिह्वा न दीखे तो एक दिन में, नासिका का अग्र भाग न दीखे तो तीन दिनों में, तारा (दूसरे की आंख की कीकी में अपनी आंख की कीकी) न दीखे तो पांच दिनों में तथा भ्रकुटी न दीखे तो नव दिनों में मृत्यु जानना चाहिए—३६५

(ञ) तिलक देखने के लिये या मांगलिक के हेतु कांच में देखना चाहिये। यदि सिर रहित धड़ दिखलाई पड़े तो १५ दिनों में मृत्यु समझें।

(ट) ॐ ऐं श्रीं मर्त्य मर्त्यांगुले नमः ।। प्रथम मन्त्र ।।

ॐ श्रीं ऐं क्लीं मर्त्य मर्त्यांगुले नमः ।। दूसरा मन्त्र ।।

इस मन्त्र का प्रातःकाल उठ कर प्रत्येक दिन पाठ करें। जब पाठ (मन्त्र) विसर जाय तो ६ महीने आयु बाकी समझना चाहिये।

(ठ) "ॐ नमो प्रतिचक्रे कुटिवचत्ताय नमः स्वाहाः ।।" इस मन्त्र को १०८ बार पढ़ कर—कपूर, काली मिर्च, भीमसेती नाभ की जड़ इन तीनों को घिस कर आंख में अंजन करें आंसू आवें तो जीवे, आंसू न आवें तो मरे।

(ड) दोपहर के समय पानी से थाली को भर कर धूप में रखे और उसमें सूर्य के प्रतिबिम्ब को देखे। यदि दक्षिण दिशा से खंडित दिखलाई देवे तो छः मास आयु समझें। यदि पश्चिम दिशा से खंडित दीख पड़े तो **दो मास आयु** समझें। यदि प्रतिबिम्ब में छिद्र दिखलाई देवें (एक अथवा अनेक) तो **दस दिन जीवे**। यदि उत्तर दिशा में खंडित दीख पड़े तो **तीन मास की आयु** समझें। यदि पूर्व दिशा से खंडित दिखलाइ देवे तो **एक मास की आयु** समझें। यदि सूर्य का प्रतिबिम्ब धूएं में व्याप्त दिखलाई देवे तो **उसी दिन मृत्यु** समझें। यदि पूर्ण बिम्ब दिखलाई दे तो एक वर्ष बाद फिर देखे।

जब सूर्य सिर पर आवे तब थाली मांज कर पानी भर कर देखें। यदि प्रतिबिम्ब छिद्र वाला दीख पड़े तो **एक दिन जीवे**।

(ढ) निम्नलिखित यन्त्र को आयु का निर्णय करने के लिये प्रभात काल में देखें—

इस यन्त्र को—चन्दन, कपूर, कस्तूरी, केसर आदि सुगन्धित पदार्थों से कांसी की थाली में लिख कर प्रातः काल प्रभात समय "ॐ नमो भगवते वासु-

लघुनीति बड़ीनीति फुनि, वायुश्रव समकाल।
होय दिवस दस तेहनी, काय स्थिति बुध भाल ॥ ३६६ ॥

पूज्याय'' का १०८ बार जाप करे तत्पश्चात् यन्त्र को देखे—

(१) यदि इस यन्त्र का प्रथम अक्षर 'ॐ' दिखलाई न पड़े तो मार्गशिर सुदि ४ अथवा मार्गशिर शुक्ल पक्ष के बुधवार को मृत्यु होगी।

(२) यदि इस यन्त्र का द्वितीय अक्षर 'न' दिखलाई न पड़े तो पोष सुदि रविवार को मृत्यु होगी।

(३) यदि इस यन्त्र का तीसरा अक्षर 'मो' दिखलाई न पड़े तो माघ सुदि ५ अथवा माघ सुदि रविवार को मृत्यु होगी।

(४) यदि इस यन्त्र का चौथा अक्षर 'भ' दिखलाई न दे तो फाल्गुण सुदि ९ अथवा फाल्गुण सुदि शुक्रवार को मृत्यु होगी।

(५) यदि इस यन्त्र का पांचवां अक्षर 'ग' दिखलाई न दे तो चैत्र सुदि १४ अथवा मंगलवार को मृत्यु होगी।

(६) यदि इस यन्त्र का छटा अक्षर 'व' दिखलाई न दे तो वैसाख सुदि १३ अथवा गुरुवार को मृत्यु होगी।

अर्थ—लघुनीति (पेशाब) बड़ीनीति (पाखाना) तथा वायु का सरना ये तीनों बातें समकाल में हों तो जान लेना चाहिए कि दस दिन की आयु बाकी रह गई है—३६६

(७) यदि इस यन्त्र का सातवां अक्षर 'ते' दिखलाई न दे तो जेठ सुदि १४ अथवा शनिवार को मृत्यु होगी।

(८) यदि इस यन्त्र का आठवां अक्षर 'वा' दिखलाई न दे तो आषाढ़ सुदि बुधवार को मृत्यु होगी।

(९) यदि इस यन्त्र का नवां अक्षर 'सु' दिखलाई न दे तो श्रावण सुदि मंगलवार को मृत्यु होगी।

(१०) यदि इस यन्त्र का दसवां अक्षर 'पू' दिखलाई न दे तो भादों सुदि रविवार को मृत्यु होगी।

(११) यदि इस यन्त्र का ग्यारहवां अक्षर 'ज्या' दिखलाई न दे तो आश्विन सुदि रविवार को मृत्यु होगी।

(१२) यदि इस यन्त्र का बारहवां अक्षर 'य' दिखलाई न दे तो कार्तिक सुदि को अतिसार रोग से मृत्यु होगी।

(ग) घृत—तैल—दर्पण इन तीनों में से किसी एक में अपने शरीर को देखें—सिर न दिखलाई दे तो **एक मास में मृत्यु हो**। (इसी रहस्य से भारतवर्ष के विद्वानों ने विवाह के समय वर और कन्या का घी में से चेहरा दिखलाने की प्रथा चलाई हैं।) शरीर दुबला दिखलाई दे अथवा शक्तिहीन दिखलाई दे, अथवा सांस लेने से पैरों के तलवे जलें तो **एक मास में मृत्यु हो**। यदि लघुनीति (पैशाब) करने पर सीधी धार न पड़े तो **सातवें दिन मृत्यु हो**। यदि सारा शरीर कांपे-धूजे—शरीर का रंग पलटे तो **एक वर्ष जीवे**। यदि आंख की विरौनी, नासिका, जीभ न दिखलाई दे तो **तत्काल मरे**। (अनुसंधान के लिये देखें पद्य नं० ३६५)। जीभ काली हो मुख लाल हो तो तत्काल मरे। सूर्य चन्द्रमा के समान दीख पड़े तो **१५ दिनों में मृत्यु हो**।

गाज बीज दोऊ नहीं, मेघ न खंचे धार।
काग वास आवास तस, हंसा गमन विचार ॥ ३६७ ॥

(त) जिस मनुष्य की शीघ्र मृत्यु होने वाली है उसे छः मास पूर्व ध्रुवतारा तथा अरुन्धती का तारा (अनुसंधान के लिये देखें पद्य नं० ३६४ में तरिकाओं का) न दिखलाई देने से समीप मृत्यु कही है। (इसी रहस्य से भारतवर्ष के विद्वानों ने विवाह के समय वर और कन्या के लिये ध्रुव तारा के दर्शन का विधान किया है।) यदि विवाह के समय वर या कन्या में से किसी एक को अथवा दोनों को ही उपर्युक्त तारों के दर्शन न हों तो कदापि विवाह की शेष (बाकी) क्रिया नहीं करानी चाहिये।

(थ) यदि रोगी के विषय में प्रश्न करने वाला दूत काले अथवा भगवे वस्त्र धारण करके अथवा उस दूत के दांतों में घाव हो, या मुंडन कराये हो अथवा तैल लगाये हो, हाथ में रस्सी लिये हो, उत्तर देने में समर्थ हो और भस्म, अंगार, कपाल, मूसल ये हाथ में लिए हुए हो यदि सूर्यास्त समय आवे और वह पैरों में कुछ न पहने हुए हो। इतने प्रकार का दूत पूछने वाला आवे तो रोगी काल रूपी अग्नि से आहत होता है अर्थात् मर जाता है।

(द) जिस मनुष्य के हाथ के तलुवे पर, जिह्वा के मूल में रुधिर काला हो जाय और जिसके शरीर को नोचने से दुःख न हो वह मनुष्य सात मास जीवेगा।

(ध) जिस मनुष्य की बीच की तीन अंगुली न मुड़ें, रोग के बिना ही कण्ठ सूख जाय, और जिसको बार-बार पूछने से जड़ता हो अर्थात् पूर्वापर का अनुसंधान न रहे वह मनुष्य छः महीने में मृत्यु पाता है।

(न) जिस मनुष्य के स्तनों का चाम बधिर हो जाय वह मनुष्य पांचवें महीने में मरेगा। जिस मनुष्य के नेत्रों की ज्योति प्रकाशित न हो और दोनों नेत्रों में पीड़ा हो उसकी मृत्यु चौथे मास में अवश्य होती है। जिस मनुष्य के दांत और अण्डकोशों को दबाने से पीड़ा कुछ भी न हो उसकी तीसरे महीने में मृत्यु होगी।

अर्थ—यदि बादलों के बिना ही बिजली दिखाई दे तथा उसके घर पर कौए आकर कोलाहल करें तो समझ लेना चाहिए कि मृत्यु समीप है—३६७

अधिक चन्द्र सुख भाल जस, चलत काय में जान।
चन्द सूर दोऊ गया, मरण समो पहिचान ॥ ३६८ ॥

(प) आयुर्वेद के मतानुसार काल ज्ञान—

जब देखे निज वरण कर, हीन आपको आप।
जान आयु की हीनता, निश्चय तन संताप ॥१॥

अर्थ—जिस समय अपने शरीर के वर्ण को हीन (क्षीण) होता देखे तो समझना चाहिये कि आयु अल्प है।

जीव न छंडे निज प्रकृति, तौलौं दीर्घ आऊ।
प्रकृति विकार भजै जबै, तब ही आयु घाऊ ॥२॥

अर्थ—जब तक जीव का स्वभाव (प्रकृति) नहीं बदलता तब तक उसकी आयु दीर्घ समझना चाहिये। जब उसकी प्रकृति में विकार आ जाय तो समझ लेना चाहिये कि इसकी अल्प आयु है।

हृदय नाभि अरु नासिका, पाणि चरण युग सीत।
सिर शीतल याको रहे, ता को मृत्यु की भीत ॥३॥

अर्थ—हृदय, नाभि, नाक, दोनों हाथ तथा दोनों पग एवं सिर जिसके ठण्डे हो जावें उसकी मृत्यु समीप समझनी चाहिए।

उष्ण होय उसास जसु शीतल होय निसास।
महातीव्र तनु ताप होय, ताको यमपुर वास ॥४॥

अर्थ—जिसका श्वास गरम हो तथा निश्वास ठण्डा हो एवं शरीर में बहुत जोरों का ज्वर हो तो उसकी मृत्यु होने वाली है। ऐसा समझना चाहिये।

अंग कम्प गति भंग होय, वर्ण परावर्त होय।
गन्ध स्वाद जाने नहीं, ताकी मृत्यु ज होय ॥५॥

अर्थ—जिसका सिर कांपे, गति (चाल) लड़खड़ाये, वर्ण परिवर्तन हो जाय, गन्ध तथा स्वाद का ज्ञान करने की शक्ति न रहे अर्थात् इन्द्रियां अपने-अपने

अर्थ—यदि चन्द्र स्वर चले तो शरीर में अधिक सुख की प्राप्ति होती है। और यदि चन्द्र स्वर तथा सूर्य स्वर दोनों ही न चलें तो समझ लेना चाहिए कि मृत्यु का समय समीप आ गया है—३६८

एक पक्ष विपरीत स्वर, चलत रोग तन थाय।
दोऊ पक्ष सज्जन अरि, तीजे मरण कहाय ।। ३६९ ।।

विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ हो जांय तो वह व्यक्ति अवश्य मरे। ५

मस्तक होय प्रस्वेद जसु, मुख से बहे जु वायु।
नाडी की निर्वाह नहीं, नष्ट होय तसु आयु ।।६।।

अर्थ—जिसके मस्तक पर पसीना हो तथा मुख से श्वास ले, नाड़ी अपनी गति छोड़ गई हो तो समझ लेना चाहिये कि उसकी आयु समाप्त होने वाली है। ६

श्यामा होय जिह्वा संकुचे, मुख आरक्त कछु न रुचे।
ऐसे जाके लक्षण होय, निश्चय सु यम ग्रहि है सोय ।।७।।

अर्थ—जिसकी जीभ काली हो कर सिकुड़ गई हो और मुंह लाल हो गया हो तथा कोई वस्तु रुचिकर न हो। इस प्रकार के लक्षण वाले की अवश्य मृत्यु होती है ।।७।।

नाभि कुण्डली बीच हो पीड़, वीर्य बन्धु की हो बहु भीड़।
अरुचि आहार हृदय में रहे, वर्ष मांहि सो नर मृत्यु लहे ।।८।।

अर्थ—नाभि में पीड़ा हो, वीर्य का अभाव हो जाय, खाने पीने की मन में रुचि न रहे तो उस व्यक्ति की एक वर्ष में मृत्यु हो।८

मूत्रधार थमे नहीं, गिरे महीतल बूंद।
सो रोगी त्रय मास में, परि हैं यम के फंद।।
वर्णहीन होय तासु तन, कामहीन होय गात।
स्वादहीन रसना हुए, तीन मास में घात ।।९।।

अर्थ—पैशाब रुके नहीं, अपने आप उसकी बूंदें टपकती रहें। ऐसा रोगी तीन मास में मर जायगा। जिसका शरीर कांतिहीन हो जाय, शरीर में काम करने की शक्ति न रहे, जीभ स्वाद का अनुभव करने में असमर्थ हो जाय तो उसकी मृत्यु तीन मास में हो। ९

अर्थ—यदि एक पक्ष तक विपरीत स्वर चले तो शरीर में रोग हो, दो पक्ष तक विपरीत स्वर चले तो मित्र शत्रु बने तथा तीन पक्ष तक विपरीत स्वर चले तो अपनी मृत्यु समीप जाननी चाहिए—३६९

होय असमर्थ काम जब, पांडु वर्ण होय श्वास।
हो तस कल बल हीनता, एक मास तस नास ॥१०॥

अर्थ—शरीर में काम की शक्ति न रहे, शरीर का रंग सफेद हो जाय, शरीर शक्ति तथा गति हीन हो जाय तो उसकी एक मास में मृत्यु हो।१०

उदर वह्नी जस उपसमे, मुख की अग्नि जु होय।
बन्ध खिरो मेहन झरे, मरे पंच दिन सोय ॥११॥

अर्थ—मुख की भूख तो हो किन्तु खाया न जाय, सदा दस्त लगें और पेशाब टपकता रहे तो रोगी की मृत्यु पांच दिनों में हो।११

नीला वरण होठ होय दोय, कफ जु जम्बूफल सरिखो होय।
रोगी रोग जीते सो जान, मरण कह्यो तसु तव काल ज्ञान ॥१२

अर्थ—जिसके दोनों होंठ नीले हो जायें, जिसका थूक जामुन के रंग समान हो जाय तो समझ लेना चाहिए कि उस रोगी को रोग ने जीत लिया है। अर्थात् उसकी मृत्यु तत्काल होगी।१२

ये दोनों तब कहे असाध्य, इनको लगी मरण की व्याध।
नारी वदन सोफ जब चढ़े, पगे सोफ जब नर के बढ़े ॥१३॥

अर्थ—स्त्री के मुख पर तथा पुरुष के पैरों पर जब सूजन आ जावे तो इन दोनों के रोग को असाध्य समझना चाहिए। अर्थात् इनकी मृत्यु अवश्य हो।१३

भरणी मघा पूर्वा ये तीन, हस्त शतभिषा आद्रा कीन।
इन नक्षत्रों में उपजे रोग, तो जानिये काल संजोग ॥१४॥

अथ—भरणी, मघा, तीनों पूर्वा, हस्त, शतभिष, आद्रा इन नक्षत्रों में यदि रोग हो तो रोगी की अवश्य मृत्यु हो।१४

आद्रा शताभिष अरु अश्लेष, पूर्वा तीन धनिष्टा लेख।

अग्नि बाण बिन्दु लखन, इत्यादिक बहु रीत।
काल परीक्षा की सहु, जानो गुरुगम मीत ॥ ३७० ॥

कृतिका भरणी विशाखा धार, मंगल सूर्य शनीश्चर वार ॥१५॥
तिथि नवमी षष्टि द्वादशी, चौथ अष्टमी अमावसी।
रोग उपजे ऐसे जोग, तो जानहु यम को पुर भोग ॥१६॥

अर्थ—आद्रा, शतभिष, अश्लेष, पूर्वा तीन (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वा भाद्रपद) धनिष्टा, कृतिका, भरणी, विशाखा नक्षत्र, मंगल, रवि तथा शनिवार। नवमी, छठ, बारस, चौथ, अष्टमी, अमावस तिथियां, इन योगों में रोग हो तो रोगी की मृत्यु हो।१५-१६

(फ) (१) यदि नाक का भाग बाईं ओर झुक जाय तो उसकी मृत्यु शुक्ल पक्ष में होती है। यदि नाक दाईं ओर को टेढ़ी हो जाय तो कृष्ण पक्ष में मृत्यु अवश्यम्भावी है।

(२) सप्त ऋषि मंडल में अरुन्धती (सबसे छोटा तारा) तथा ध्रुव तारा यदि दिखलाई न दे तो समझ लेना कि आयुष्य समाप्त होने जा रही है।

(३) मृत्यु समीप होने पर आंखों से नाक का अग्रभाग, ऊपर की ओर देखने पर भोहों के बीच का भाग तथा जीभ का अग्रभाग दिखलाई नहीं दे तो—

(४) भोहों के न दिखलाई पड़ने पर नौ दिन की; कानों में अंगुली लगा लेने पर यदि भीतर की ध्वनि सुनाई न पड़े तो सात दिन में; अरुन्धती तारा न दिखलाई पड़ने पर पांच दिन में, नाक का अग्रभाग न दिखलाई पड़ने पर तीन दिन में और जीभ का अग्रभाग न दिखलाई पड़ने पर एक दिन में मृत्यु अवश्यम्भावी है।

(५) जिसके दांतों और अण्डकोश को दबाने पर भी दर्द न हो उसकी आयु केवल तीन मास बाकी है।

(६) जिसकी दृष्टि तिलमिलाती है और देखने में पीड़ा का अनुभव हो वह चार महीने तक जीता है।

(७) जिसके भोहों के ऊपर (मस्तक) की चमड़ी सुन्न पड़ जाती है और उस में सूई आदि की नोक चुभाने पर भी पीड़ा का अनुभव नहीं होता, उसकी

अर्थ—यदि अग्नि बाण, बिन्दु दिखलाई पड़ें तो भी मृत्यु समीप समझनी चाहिए। इस प्रकार काल ज्ञान की परीक्षा बहुत प्रकार से कह दी है। अतः सब प्रकार का काल परीक्षा सम्बन्धी ज्ञान किसी योगी गुरु से जान लेना चाहिए—३७०

आयु पांच महीने है।

(८) जिस व्यक्ति के दोनों हाथों की अथवा किसी एक हाथ की कनिष्टा (सब से छोटीं) अंगुली तथा अंगूठे के बीच की तीन अंगुलियां मोड़ने से न मुड़ें, कण्ठ सूखता सा प्रतीत हो, थोड़ी-थोड़ी देर में प्यास का अनुभव हो उसकी आयु छः महीने की होती है।

(९) जिसके हाथों की हथेली (गदेली) और जीभ की जड़ में पीड़ा का अनुभव हो, खून का रंग बदल कर काला या मटमैला हो जाय अथवा शरीर में कांटा या सूई आदि के चुभने से पीड़ा का अनुभव न हो उसकी मृत्यु सात महीने में अवश्यम्भावी है।

(१०) जिसको दीपक की लौ कभी चमकती हुई और कभी काले रंग की दिखलाई पड़े अथवा जिसे संसार के सभी पदार्थों के रूप विकृत प्रतीत हों, उसकी मृत्यु नौ महीने के अन्दर हो जाती है।

(११) नाक टेढ़ी होना या कान छोटे बड़े हो जाना। अथवा बायें नेत्र से बिना रोग के ही आंसू बहते रहना—

(१२) मुंह गरम और नाभी का यकायक शीतल हो जाना अथवा अपने सफेद वस्त्र काले या लाल रंग के दिखाई पड़ना—

(१३) जिसे सूर्य अथवा चन्द्रमा की बढ़ती हुई किरणों का अनुभव न हो और दहकती हुई अग्नि का ताप भी प्रतीत न होता हो, उसकी आयु ग्यारह महीने तक की होती है।

(१४) जिसे स्वच्छ आकाश भी कुहरे से भरे हुए के समान दिखलाई देता हो अथवा चन्द्रमा के मध्य का श्याम रंग स्पष्ट न दिखलाई देता हो अथवा शुक्र तारा छोटा और साधारण तारा गणों की तरह प्रतीत होता हो तो उसकी मृत्यु साल भर में हो जाती है।

अवसर निकट मरण तणो, जब जाने बुध लोय।
तब विशेष साधन करे, सावधान अति होय ॥ ३७१ ॥

अर्थ—जब बुद्धिमान नर अपना मृत्यु समय निकट समझे तब विशेष रूप से सावधान होकर आत्म कल्याण के मार्ग में लग जावे—३७१

---

(१५) बिना धूली के ही धूल वर्षा का अनुभव हो अथवा अपनी छाया खंडित या विकृत दिखलाई पड़े तो आयु चार पांच महीने की होती है।

दाहिने हाथ की मुट्ठी बन्द करके नासाग्र भाग पर अर्थात् नाक के बराबर सीध में माथे पर रख कर नीचे की तरफ उस हाथ की कोहनी तक देखने से भुजा का अग्रभाग बहुत ही पतला, सूखा दिखाई देगा। इस प्रकार नित्य प्रति देखने से जिस दिन अपने हाथ की कलाई दिखलाई न दे और मुट्ठी कलाई से एक दम अलग दिखलाई दे तो उस दिन से लेकर छः मास के अन्दर मृत्यु होगी ही, यह निश्चित है अथवा उस दिन से व्यक्ति की आयु अधिक से अधिक छः मास की समझें।

दोनों नेत्र बन्द करके दोनों हाथों की तर्जनी (अंगूठे के पास की) अंगुलियों से दोनों आंखों के कानों के तरफ के किनारे दबाने से आंखों के अन्दर चमकते हुए सितारे दिखलाई देंगे जिस दिन तारे दिखलाई देना बन्द हो जावें उस दिन से लेकर केवल १० दिन की आयुष्य समझें।

स्वप्न में बन्दर अथवा भालू (रीछ) पर बैठ कर गाता हुआ दक्षिण की ओर जायें तो अल्पायु समझे।

स्वप्न में अपने आपको सिर से पैर तक कीचड़ में डूबे हुए दिखाई पड़ना, अल्पायु समझें स्वप्न में आग या जल में प्रवेश कर उसमें से फिर न निकलना अल्पायु समझें। स्वभाव अथवा प्रकृति का एकदम उल्टा हो जाना, अल्पायु समझें। यह स्वप्न अपने लिए देखे तो अपने को, यदि दूसरे के लिये देखे तो दूसरे को फल होता है।

चार पुरुषार्थ

धर्म अर्थ अरु काम शिव, साधन जग में चार।
व्यवहारे व्यवहार लख, निहचे निजगुण धार ॥३७२॥

अर्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार साधन जगत में हैं। बहिर्दृष्टि लोग इनका जगत के व्यवहार में आने वाली प्रवृत्तियों का अर्थ लगाते हैं। तथा अन्तर्दृष्टि महात्मा इन चारों का निज गुणों का अर्थ धारण करते हैं—३७२

मूरख कुल आचार को, जानत धर्म सदीव।
वस्तु सुभाव धर्म सुधी, कहत अनुभवी जीव ॥३७३॥

अर्थ—अज्ञानी लोग धर्म का अर्थ कुलाचार करते हैं किन्तु बुद्धिमान और अनुभवी लोग धर्म का अर्थ वस्तु स्वभाव ("वत्थु सहावो धम्मो") करते हैं।

खेह खजाना को अर्थ, कहत अज्ञानी जीव।
कहत द्रव्य दरसाव को, अर्थ सुज्ञानी भीव ॥३७४॥

अर्थ—अज्ञानी लोग धन दौलत को अर्थ कहते हैं, परन्तु ज्ञानी पुरुष द्रव्य के स्वरूप के समझने को अर्थ कहते हैं--३७४

दम्पति रति क्रीड़ा प्रत्ये, कहत दुर्मति काम।
काम चित्त अभिलाष को, कहत सुमति गुण धाम ॥३७५॥

अर्थ—अज्ञानी लोग विषय सेवन—रति क्रीड़ा को काम कहते हैं, किन्तु ज्ञानी लोग चित्त की अभिलाषा को काम कहते हैं—३७५

इन्द्रलोक को कहत शिव, जो आगम दृग हीन।
बन्ध अभाव अचल गति, भाषत नित परवीन ॥३७६॥

अर्थ—अज्ञानी लोग इन्द्रलोक को शिव कहते हैं परन्तु ज्ञानी महात्मा कर्म बन्धन से सर्वथा छूट जाने से स्थिर गति अर्थात् जहां जन्म-मरण का सर्वथा अभाव है ऐसे मोक्ष को शिव कहते हैं—६७६

इम अध्यातम पद लखी, करत साधना जेह।
चिदानन्द निज धर्म नो, अनुभव पावे तेह ॥३७७॥

अर्थ—इस प्रकार अध्यात्म पद को जान कर जो प्राणी साधना करते हैं वे आत्मा के अनन्त आनन्द रूप निज धर्म का अनुभव प्राप्त करते हैं—३७७

धर्माधर्म विवेक

समय मात्र प्रमाद नित, धर्म साधना मांहि।
अथिर रूप संसार लख, रे नर करिये नाहिं ॥३७८॥

अर्थ—हे मानव। इस संसार को अस्थिर जानकर—धर्म साधना के लिए सदा तत्पर रहो, एक समय मात्र भी प्रमाद में मत जाने दो—३७८

छीजत छिन-छिन आऊखो, अंजली जल जिम मीत।
काल-चक्र माथे भ्रमत, सोवत कहा अभीत ॥३७९॥

अर्थ—हे मित्र! जिस प्रकार अंजली में लिया हुआ जल क्षण-क्षण में सदा छीजता रहता है उसी प्रकार तुम्हारी आयु भी क्षण-क्षण में क्षय होती रहती है। काल का चक्र हर समय तुम्हारे मस्तक पर घूम रहा है अतः तू निर्भय होकर क्यों सो रहा है—३७९

तन धन जोबन कारिमा, संध्या राग समान।
सकल पदारथ जगत में, सुपन सरूप चित्त धार ॥३८०॥

अर्थ—यह तुम्हारा शरीर, धन दौलत तथा जवानी संध्या समय की लालिमा के समान अस्थिर हैं। जगत में जितने भी पदार्थ हैं वे सब स्वप्न के समान नाशवान हैं—३८०

मेरा मेरा मत करे, तेरा है नहि कोय।
चिदानन्द परिवार का, मेला है दिन दोय ॥३८१॥

अर्थ—रे जीव! तू मेरा मेरा मत कर, जगत में तेरा कोई नहीं है। संसार में जिसे तू अपना परिवार मान रहा है वे सब स्वार्थ के साथी हैं। अन्त समय में तेरी इनसे रक्षा न होगी। तू इन्हें दो दिन का साथी समझकर अपनी आत्मा का कल्याण कर—३८१

ऐसा भाव निहारि नित, कीजे ज्ञान विचार।
मिटे न ज्ञान विचार बिन, अन्तर भाव विचार ॥३८२॥

अर्थ—मन में इस संसार को असार समझ कर सदा ज्ञान का विचार करना चाहिए क्योंकि ज्ञान के बिना आत्मा के अन्तर भाव का विकार नहीं मिट सकता—३८२

ज्ञान रवि वैराग्य जस, हिरदे चंद्र समान।
तास निकट कहो किम रहे? मिथ्या तम दुख खान ॥३८३॥

अर्थ—जिसके हृदय में ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश द्वारा वैराग्य रूपी चंद्रमा का उदय हुआ है उसके निकट दुःखों की खान रूप जो मिथ्यात्व है वह कैसे रह सकता है? अर्थात् ज्ञान का प्रकाश होने से मिथ्यात्व रूपी अन्धकार का स्वयमेव नाश हो जाता है—३८३

आप अपने रूप में, मगन ममत मल खोय।
रहे निरन्तर समरसी, तास बन्ध नवि कोय ॥३८४॥

अर्थ—जो व्यक्ति मोह का त्याग कर अपने निज स्वभाव में लीन होकर राग-द्वेष का त्याग कर समता भाव में रहता है उसे कर्म का बन्ध नहीं होता—३८४

पर परिणति परसंग सुं, उपजत विणसत जीव।
मिट्यो मोह परभाव का, अचल अबाधित शिव ॥३८५॥

अर्थ—पर परिणति (आत्मा के सिवाय दूसरे पदार्थों में ममत्व भाव) से जीव इस संसार में अनादि काल से जन्म मरण प्राप्त कर रहा है। आत्मा के सब प्रकार के पर पदार्थों पर से ममत्व भाव के हट जाने से उसे अक्षय (कभी नाश न होने वाला) तथा संक्लेश रहित (शाश्वत सुख सहित) मोक्ष की प्राप्ति होती है—३८५

जैसे कंचुक त्याग थी, विणसत नहीं भुजंग।
देह त्याग थी जीव पिण, तैसे रहत अभंग ॥३८६॥

अर्थ—जैसे कांचली छोड़ देने से सर्प का नाश नहीं होता उसी प्रकार मोक्ष अवस्था प्राप्त कर (आत्मा) शरीर रहित होकर भी अनन्त काल तक मौजूद रहता है—३८६

जो उपजे सो तू नहीं, विणसत ते पिण नांहि।
छोटा मोटा तू नहीं, समझ देख दिल मांहि ॥३८७॥
वरण भांति तो में नहीं, जात-पांत कुल रेख।
राव रंक तू है नहीं, नहीं बाबा नहीं भेख ॥३८८॥

तू सहु में सहु थी सदा—न्यारा अलख सरूप।
अकथ कथा तेरी महा, चिदानन्द चिद रूप ॥३८६॥
जनम मरण जहां है नहीं, ईति भीति लवलेश।
नहीं सिर आन नरिंद की, सो ही अपना देश ॥३६०॥

अर्थ—हे जीव ! न तू जन्म लेता है न मरता है, न छोटा है न बड़ा है, तुम में न कोई वर्ण है न जात-पांत है, तू न राजा है न रंक है, न साधु है न वेष है, तू सब में है और सबसे न्यारा अलख स्वरूप भी है, तेरा स्वरूप कोई भी वर्णन करने मे समर्थ नहीं है, तू तो अनन्त आनन्दमय तथा शुद्ध स्वरूप है, जहां पर न जन्म है न मौत है, जहां पर किंचित मात्र भी न भय है न कष्ट है, जहां पर न किसी राजा के शासन का भय है; ऐसे दुःख, भय तथा परतन्त्रता रहित जो अनन्त आनन्द का स्थान मोक्ष है वही तेरा अपना देश है। हे जीव ! इस बात को तू सदा-हर समय अपने लक्ष में रख, इस बात को भूल मत—३८७ से ३६०

विनाशिक पुद्गल दशा, अविनाशी तू आप।
आपा आप विचारतां, मिटे पुण्य अरु पाप ॥३६१॥
बेड़ी लोह कनकमयी, पाप पुण्य युग जान।
दोऊ थी न्यारा सदा, निज स्वरूप पिछान ॥३६२॥

अर्थ—जीवात्मा अविनाशी है तथा कर्म मल रूप पुद्गल जो आत्मा से संलग्न है वह नाशवान है। इसलिए अपने शुद्ध स्वरूप का विचार करने से पाप और पुण्य कर्मों का नाश होता है। पुण्य को सोने की बेड़ी तथा पाप को लोहे की बेड़ी जानकर अपने आपको सदा इनसे भिन्न-न्यारा समझ कर निजस्वरूप को पहचानो—३६१-३६२

जुगल गति होय पुण्य सुं, इतर पाप सुं होय।
चारों गति सुं निवारिये, तब पंचम गति होय ॥३६३॥
पंचम गति बिन जीव को, सुख तिहु लोक मंझार।
चिदानन्द नवि जानजो, यह मोटो निरधार ॥३६४॥

अर्थ—चार गतियों में से देव और मनुष्य ये दो गतियां पुण्य के उदय से होती हैं। तथा निर्यंच और नरक ये दोनों गतियां पाप के उदय से होती हैं।

चारों गतियों के नाश से मोक्ष रूप पांचवीं गति प्राप्त होती है । पांचवी गति (मोक्ष) पाये बिना जीव को तीनों लोकों में शाश्वत सुख मिलना सम्भव नहीं है । यही निश्चित सत्य है—३९३-३९४

समाधि का स्वरूप

इम विचार हिरदय करत, ज्ञान ध्यान रस लीन ।
निरविकल्प रस अनुभवी, विकलता होय छीन ।।३९५।।

अर्थ—इस प्रकार जो व्यक्ति मन में विचार करके ज्ञान और ध्यान के रस में लीन रहते हुए निर्विकल्प रस का अनुभव करता है वह सब प्रकार के विकल्पों से रहित हो जाता हैं—३९५

निरविकल्प उपयोग में, होय समाधि रूप ।
अचल ज्योति झलके तिहां, पावे दरस अनूप ।।३९६।।

अर्थ—जब निर्विकल्प उपयोग में समाधि की प्राप्ति होती है । तब जिस आत्मा की उपमा के लिए जगत में एक भी पदार्थ नहीं है उसकी अनन्त ज्योति का प्राणी अपने में प्रकाश कर उसके दर्शन पाता है—३९६

देख दरस अद्भुत महां, काल त्रास मिट जाय ।
ज्ञान योग उत्तम दशा, सद्गुरु दिए बताय ।।३९७।।

अर्थ—उस अद्भुत-अनूपम ज्योति का दर्शन पाने से मृत्यु का महात्रास मिट जाता है ज्ञान योग की ऐसी उत्तम दशा सद्गुरु ने बतलाई है—३९७

ज्ञानालम्ब दृग ग्रही, निरालम्बता भाव ।
चिदानन्द नित आदरो, एहिज मोक्ष उपाव ।३९८।।

अर्थ—बाकी के सब प्रकार के आलम्बनों को छोड़कर ज्ञान का सदा आलम्बन करते हुए वैराग्य रस का अमृतपान करना ही मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र उपाय है अतः आत्मा को निज स्वभाव में रमण करने के उपायों को सदा ग्रहण करो—३९८

थोड़े से में जानजो, कारज रूप विचार ।
कहत सुनत श्रुतज्ञान का, कबहु न आवे पार ।।३९९।।

अर्थ—थोड़े में ही अपने कर्तव्य को समझ कर उसका अपने कल्याण के

लिए आचरण करो। हम कहां तक वर्णन करें, कहने और सुनने मात्र से श्रुत ज्ञान का कभी पार नहीं पा सकते—३९९

मैं मेरा इस जीव को, बन्धन मोटा जाना।
मैं मेरा जाकुं नहीं, सो ही मोक्ष पिछान ॥४००॥

अर्थ—मैं और मेरे पन का ममत्व भाव ही इस जीव को बन्धन का सबसे बड़ा कारण है। जिसमें मैं और मेरे पन का ममत्व भाव मिट गया है ऐसे निर्मोही (मोहनीय कर्म से रहित) ने ही मोक्ष को पहिचाना है—४००

मैं मेरा इह भाव थी, बंध राग अरु रोष।
राग रोष जौलों हिए, तौलों मिटे न दोष ॥४०१॥

अर्थ—मैं और मेरे इस भाव से राग और द्वेष का बन्ध होता है। जब तक मन में राग और द्वेष है तब तक दोष नहीं मिट सकते—४०१

राग द्वेष जाकुं नहीं, ताकुं काल न खाय।
काल जीत जग में रहे, मोटा बिरुद धराय ॥४०२॥

अर्थ—जिसमें राग द्वेष नहीं है, उसे काल नहीं खा सकता अर्थात् वह जन्म और मृत्यु से रहित होकर अजर अमर हो जाता है सर्वथा[७१] दोष रहित होकर बहुत बड़ी पदवी पाकर जगत में वास करता है—४०२

७१—यह जीवात्मा राग द्वेष को जीतकर चार घातिया कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान पाता है, जीवन मुक्त हो जाता है। उस समय इसके अठारह दोष सर्वथा नाश हो जाते हैं। मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्म हैं। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से 'अज्ञान' दोष का नाश होता है। दर्शनावरणीयकर्म के नाश से 'निद्रा' दोष नाश होता है। अन्तराय कर्म के नाश होने से दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यांतराय इन पांच दोषों का नाश हो जाता है। तथा मोहनीय कर्म के नाश होने से मिथ्यात्व, अविरत, काम, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, दुर्गंच्छा; ये ग्यारह दोष नाश हो जाते हैं। कुल मिलाकर अठारह दोषों से रहित श्री अरिहंत प्रभु के सिवाय अन्य कोई नहीं होता। उपर्युक्त लक्षण युक्त समाधि को प्राप्त करने से ही वीतराग भाव उत्पन्न होकर यह जीव मोक्ष प्राप्ति कर

चिदानन्द नित कीजिए, समरण श्वासोश्वास।
वृथा अमूलक जात है, श्वास खबर नहीं तास ॥४०३॥

अर्थ—इसलिए हे चिदानन्द ! सदा श्वासोश्वास का ख्याल रख। इन अमूल्य श्वासोश्वास रूप आयु को व्यर्थ में मत खो। यह मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलेगा, इसलिए इस जीवन का एक क्षण भी प्रमाद में मत जाने दे। न जाने ये श्वासोश्वास कब समाप्त हो जाएंगे और तेरी मृत्यु हो जावेगी-४०३

श्वासोश्वास की गति

एक महूर्त मांहि नर, सुर में श्वास विचार।
तिहुतर अधिका सात सौ, चालत तीन हजार ॥४०४॥
एक दिवस में एक लख, सहस त्रयोदश धार।
एक शत नव्वे जात है, श्वासोश्वास विचार ॥४०५॥
सात शत सहस पचानवे भाख तेत्रीस लाख।
एक मास में श्वास इम, ऐसी प्रवचन साख ॥४०६॥
चउ शत अडताली सहस, सप्त लक्ष सुर माहिं।
चार क्रोड़ इक बरस में, चालत संशय नांहि ॥४०७॥
चार अबज क्रोडी सप्त, फुनि अड़ताली लाख।
स्वास सहस चाली सुधी, सौ बरसों में भाख ॥४०८॥

अर्थ—एक महूर्त (४८ मिनटों) में स्वस्थ मनुष्य ३७७३ श्वासोश्वास लेता है। एक दिन और रात (चौबीस घंटों) में स्वस्थ मनुष्य ११३१९० श्वासोश्वास लेता है। एक मास में (तीस दिन रात) में स्वस्थ मनुष्य ३३९५७०० श्वासोश्वास लेता है। एक वर्ष (बारह मास) में स्वस्थ मनुष्य ४०७४८४०० श्वासोश्वास लेता है। सौ वर्षों में स्वस्थ मनुष्य

सकता है। अतः शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए अजपा जाप "अर्हम्" का करना सर्वश्रेष्ठ है। अर्हम् शब्द अरिहत का पर्यायवाची है। जिन्होंने स्वयं योगातीत अवस्था प्राप्त कर सर्व कर्म बन्धनों से बन्धन मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त किया है योगाभ्यासी के लिए इनके सिवाय और कोई उत्तम आदर्श नहीं है। सोऽहं शब्द में भी अर्हम् का लक्ष्य ही होना चाहिए।

४०७४८४०००० श्वासोश्वास लेता है—४०८

वर्त्तमान इह काल में, उत्कृष्टी स्थिति जोय।
इक शत सोलस वर्ष नी, अधिक न जीवे कोय ॥४०६॥

अर्थ—वर्त्तमान इस काल में मनुष्य की उत्कृष्ट आयु ११६ वर्ष की है इससे अधिक कोई नहीं जीवित रहता—४०४ से ४०६

सोपक्रम आयु कह्यो, पंचम काल मंझार।
सोपक्रम[७२] आयु विषय, घात अनेक विचार ॥४१०॥

अर्थ—तथापि इस पंचम काल में सोपक्रम आयु कही है। अनेक प्रकार के घातों में से किसी भी घात के होने से इस आयु का शीघ्र क्षय होना सम्भव है—४१०

मन्द स्वास सुर में चलत, अल्प उमर होय खीन।
अधिक स्वास चालत अधिक, हीन होत परवीन ॥ ४११ ॥

अर्थ—स्वर में धीरे-धीरे श्वास चलने से अल्प (कम) आयु क्षय होती है अर्थात् दीर्घ श्वासोश्वास से आयु लम्बी होती है, तथा अधिक शीघ्रता से स्वर चलने से आयु जल्दी क्षीण होती है—४११

चार समाधि लीन नर, षट शुभ ध्यान मंझार।
तुष्णी भाव बैठा ज्युं दस, बोलत द्वादश धार ॥ ४१२ ॥
चालत सोलस सोवतां, चलत स्वास बावीस।
नारी भोगत जानजो, घटत स्वास छतीस ॥ ४१३ ॥

अर्थ—समाधि में लीन मनुष्य जितने समय में चार श्वासोश्वास लेता है

७२—शास्त्रों में आयु दो प्रकार की कही है। (१) अपवर्तनीय तथा (२) अनपर्वतनीय। अनपर्वतनीय आयु उसे कहते हैं जो बाहर के किसी भी आघात के कारण मृत्यु सम्भव न हो। अपनी आयु को पूरे समय भोगकर ही इस आयुवाले प्राणी की मृत्यु होती है। तथा दूसरी आयु अपवर्तनीय है। यह आयु विष के प्रयोग से अथवा अन्य शस्त्रास्त्र आदि के आघात लगने से आयु कर्म एकदम क्षय होकर मृत्यु हो जाती है। इसी आयु का दूसरा नाम सोपक्रम आयु है।

उतने समय में शुभ ध्यान में लीन मनुष्य छः श्वासोश्वास, चुप बैठे हुए दस श्वासोश्वास, बोलते हुए बारह श्वासोश्वास, सोते हुए सोलह श्वासोश्वास, चलते समय बाईस श्वासोश्वास तथा नारी को भोगते हुए छत्तीस श्वासोश्वास लेता है—४१२-४१३

थोड़ी बेला मांहि जस, बहत अधिक सुर श्वास।
आयु छीजे बल घटे, रोग होय तन तास॥ ४१४॥

अर्थ—थोड़े समय में जिसके स्वर में अधिक श्वासोश्वास बहते हों उसकी आयु उतनी ही जल्दी क्षीण होती है तथा उतना ही बल घटता है—४१४

अधिका नांहि बोलीये, नहीं रहिये पड़ सोय।
अति शीघ्र नांहि चालिये, जो विवेक मन होय॥ ४१५॥

अर्थ—यदि तुम्हारे मन में विवेक है तो अधिक नहीं बोलना चाहिये, अधिक समय तक सोते भी नहीं रहना चाहिये तथा बहुत तेज़ी से चलना भी नहीं चाहिये—४१५

जान गति मन पवन की, करे स्वास थिर रूप।
सो ही प्राणायाम को, पावे भेद अनूप॥ ४१६॥

अर्थ - मन में पवन की गति को जानकर जो मनुष्य श्वास को स्थिर करता है वही व्यक्ति प्राणायाम के अनुपम भेद को पा सकता है—४१६

मेरु रुचक प्रदेश थी, सूरत डोर कुं पोय।
कमल बन्द छोड़या थकां, अजपा स्मरण होय॥ ४१७।

अर्थ—मेरु रूचक प्रदेश से सूरत डोर को पिरोकर कमल बन्ध को छोड़ने से अजपाजाप होता है—४१७

भमर गुफा में जायके, करे अनिल कुं पान।
पिछे हुताशन तेहने, मिले दसम[७३] अस्थान॥ ४१८॥

७३—इस शरीर में शिराओं के जाल रूप तार लगे हुए हैं। इन शिराओं अथवा नाड़ियों में इडा और पिंगला ये दो नाड़ियां मुख्य हैं। ये मेरुदण्ड के उभय पार्श्व में हैं। इनके अतिरिक्त एक भीतर से पोली नली और है जो सुषुम्ना कहलाती है और मेरुदण्ड के भीतर होकर गई है। इस नली के नीचे के सिरे

अर्थ—भ्रमर गुफा में जाकर वायु को अन्दर खेंच कर पूरक करने के बाद दसवें स्थान में दीप शिखा के समान ज्योति के दर्शन योगी को होते हैं—४१८

मारग में जातां थकां, जो जो अचरिज होय।
शांत दशा में वर्ततां, मुख से कही न जोय॥ ४१९॥

से लगा हुआ मूलाधार चक्र है जहां कुंडलिनी शक्ति निवास करती है और ऊपर के सिरे से सटा हुआ सहस्रार चक्र है। प्राण शक्ति सदा इड़ा और पिंगला नाड़ियों में से होकर प्रवाहित होती रहती है। योगी यदि किसी साधन विशेष से प्राण को सुषुम्ना को नाड़ी नीचे के द्वार में से निकाल ले जाये जो मुंदा हुआ है तो उसकी कुंडलिनी शक्ति जो सदा सोयी रहती है जागृत होकर धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ता के साथ जीवन के ध्येय की ओर अग्रसर होती है और योगी सहस्रार में जाकर अग्नि शिखा के समान ज्योति के दर्शन करता है। इस स्थिति में साधक को बहुत से विचित्र अध्यात्मिक अनुभव होते हैं। इस परम ध्येय को प्राप्त करने के लिए योगी प्राणायाम का अभ्यास करता है जिसका प्रारम्भिक स्वरूप पूरक अर्थात् श्वास को भीतर ले जाना, कुंभक अर्थात् श्वास को रोकना और रेचक अर्थात् श्वास को बाहर निकालना है। क्रमशः श्वास नाड़ी और विचार के प्रवाह को संयत कर अन्त में सूक्ष्म प्राण को अधीन करने में समर्थ होता है और इस वश में किये हुए प्राण की सहायता से वह जगत के माया रूप भ्रम जाल को छिन्न-भिन्न कर देता है। परन्तु प्राणायाम के इस विशिष्ट साधन को प्रारम्भ करने के पूर्व साधक के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह योग के चार मुख्य अंगों की पूर्ति कर ले। यम तथा नियमों का पालन किसी योगी गुरु के तत्त्वावधान में रहना तथा आसन की दृढ़ता। इन प्रारम्भिक नियमों का पालन न होने पर साधक को भयंकर हानि उठानी पड़ती है, जो हृदोग, श्वास और इसी प्रकार के अन्य दुष्ट रोगों के रूप में प्रकट हो सकती है। प्राणायाम का विधिपूर्वक अभ्यास करने से तो कुंडिलनी शक्ति जागृत होती ही हैं किन्तु प्राणायाम के अतिरिक्त बहुत से अन्य उपाय भी हैं जो मनुष्य की सुप्त शक्ति को जगाने में निसर्गतः समर्थ है। दार्शनिकों की सूक्ष्म संकल्प शक्ति से तथा गुणस्थान क्रमारोह से उत्तम प्रकार से आत्मा का कल्याण होता है। (टिप्पणी नं० ११ में देखें)

अर्थ—शांत[७४] दशा में रह कर समाधि मार्ग प्राप्त करने तक जो अनेकों सिद्धियां प्राप्त होकर आश्चर्य होते हैं उनका वर्णन नहीं किया जा सकता । वे तो अनुभवगम्य ही हैं—४१९

वधे भावना शांत में, तन मन वचन अतीत ।।
तिम तिम सुख सायर तणी, उठे लहर सुन मीत ।। ४२० ।।

अर्थ—हे मित्र जैसे-जैसे उपशम (शांत) भावना बढ़ती जाती हैं तथा मन, वचन और काया के योग का निरोध होता जाता है । वैसे-वैसे आत्मा अनन्त सुख रूप समुद्र की लहरों में गोते खाने लगता है । अन्त में जीव योगातीत[७५]

७४—समाधि मार्ग में अनेकों विघ्न भी हैं । इसमें सबसे बड़ा विघ्न सिद्धियों की प्राप्ति है, जिनका लुभावना और चित्ताकर्षक रूप साधक को चौंधिया देता है सच्चे साधक को चाहिये कि वह इन सिद्धियों के जाल में न फंस जावे और अपने आध्यात्मिक जीवन की नौका को निर्वाण के सुखद एवं निरापद तीर पर ही ले जाकर विश्राम ले ।

७५—केवल उन ज्ञानी योगियों को जिन्हें जीवन मुक्त कहते हैं मोक्ष स्थिति प्राप्त करने के पूर्व मन, वाणी और शरीर को समस्त क्रियाओं का निरोध (संक्षय) करना पड़ता है यथा—

तत्रानिवृत्तिशब्दान्तं समुच्छिन्न क्रियात्मकम् ।
चतुर्थं भवति ध्यानमयागिपरमेष्ठिनः ।। १०५ ।।
समुच्छिन्ना क्रिया यत्र सूक्ष्म योगात्मकापि च ।
समुच्छिन्न क्रियं प्रोक्तं तद् द्वारं मुक्तिवेश्मनः ।। १०६ ।।

गुणस्थान क्रमारोह

सभी बाह्य पदार्थों का त्याग अर्थात् सर्व सन्यास करना पड़ता है । मोक्ष प्राप्त करने में जब पांच ह्रस्व अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) उच्चारण मात्र समय शेष रहता है उस समय का जो शुक्लध्यान है वही सच्चा मोक्ष साधन अर्थात् योग है । इस अवस्था में स्थित योगी ही सच्चा योगी है । उसके संकल्प विकल्प विलीन हो जाते हैं । उसके विचारों का रज, तम या सत्व गुण से भी स्पर्श नहीं होता । अन्त में वह योगातीत होकर मोक्ष प्राप्त करता है ।

अवस्था में पहुंच कर शाश्वत सुख रूप मोक्ष प्राप्त करता है—४२०

इन्द्र तरणा सुख भोगतां, जो तृप्ति नहीं होय ।
तो सुख सुन छिन एक में, मिले ध्यान में जोय ।। ४२१ ।।

अर्थ—इन्द्र का सुख भोगते हुए भी जो तृप्ति नहीं अर्थात् इन्द्र का सुख भोगने के बाद फिर उस सुख का नाश है किन्तु ध्यान के योग में एक क्षण में शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है जिससे सदा के लिये तृप्ति प्राप्त हो जाती है—४२१

ध्यान बिना न लखी सके, मन कल्लोल स्वरूप ।
लख्या बिना किम उपशमे ? येहू भेद अनूप ।। ४२२ ।।

अर्थ—ध्यान के बिना मन की चंचलता को नहीं जान सकता और मन की चंचलता को जाने बिना उसका निरोध कैसे सम्भव हो सकता है ? मन का निरोध किये बिना शांति प्राप्त होना असम्भव है। इसलिए चित्त वृत्ति निरोध के लिये इस ध्यान के अनुपम स्वरूप को समझना चाहिए—४२२

ध्यान करने की विधि

आसन पद्म लगाय के, मूलबन्ध दृढ़ लाय ।
मेरुदण्ड सीधा करे, भेद द्वार कु पाय ।। ४२३ ।।
करे श्वास संचार तब, विकल्प भाव निवार ।
जिम जिम स्थिरता उपजे, तिम तिम प्रेम वधार ।। ४२४ ।।

अर्थ—पद्मासन लगाकर मूलबन्ध को दृढ़ करें और मेरुदण्ड को सीधा करके नासाग्र दृष्टि रखकर निश्चल मन से बैठें तथा भेद द्वार को पाकर श्वास का संचार करें। सब प्रकार के विकल्प भावों का त्याग कर अपनी आतमा की स्थिरता को बढ़ाते जावें जैसे-जैसे स्थिरता बढ़ती जावे वैसे-वैसे निजात्म स्वभाव को प्रगट करने की तरफ प्रेम बढ़ाते जावें—४२३-४२४

प्रेम बिना नवि पाइये, करतां जतन अपार ।
प्रेम प्रतीते है निकट, चिदानन्द चित्तधार ।। ४२५ ।।

अर्थ—जब तक निजात्म स्वभाव को प्रकट करने के लिए प्रीति नहीं होगी तब तक अपार प्रयत्न (असंख्य उपाय) करने पर भी स्थिरता प्राप्त नहीं हो

सकती। प्रेम करने से मन वास्तविक आनन्द को प्राप्त करने के लिए निकटतम हो जाता है : यह बात निःसंदेह मन में समझो—४२५

जो रचना तिहुं लोक में, सो नर तन में जान।
अनुभव बिन होवे नहीं, अन्तर तास पिछान ॥ ४२६ ॥

अर्थ—तीन लोक में जितनी रचना है वह सब मनुष्य के शरीर में मौजूद हैं। अपने अन्तर में इसका अनुभव ज्ञान के बिना नहीं हो सकता—४२६

अन्तर भाव विचारतां, मन वायु थिर थाय।
तिम तिम नाभि कमल में, पूरक थई समाय ॥ ४२७ ॥

अर्थ—जैसे-जैसे अन्तर भाव में लीन होने से मन वायु स्थिर होती है वैसे-वैसे पूरक होकर वायु समाती जाती है—४२७

नाभि स्वास समाय के, उर्द्ध रेचसी होय।
अजप जाप तिहां होत है, विरला जाने कोय ॥ ४२८ ॥

अर्थ—पूरक द्वारा खींचा हुआ वायु नाभि में जाकर स्थिर होता है उसे कुम्भक कहते हैं फिर वहां से वायु ऊपर की तरफ होकर निश्वास रूप से बाहर निकलता है उसे रेचक कहते हैं। पूरक, कुम्भक तथा रेचक करते समय अपने आप अजपाजाप[७६] होता है इस भेद को कोई बिरला ही जान सकता है।

हंकारे सुर उठत है, थई सकार समाय।
अजप जाप तिहां होत है, दीनों भेद बताय ॥ ४२९ ॥

अर्थ—श्वास लेते समय 'सो' का शब्द तथा निश्वास छोड़ते समय 'हं' का शब्द प्रगट होता है। इससे स्वयमेव ही अजपाजाप होता है। इसका भेद हम पहले बतला चुके हैं—४२९

ज्ञानार्णव थी जानजो, अधिक भाव चित्तलाय।
थाय ग्रंथ गौरव घणों, तामें कह्या न जाय ॥ ४३० ॥

७६—अजपाजाप का स्वरूप हम पहले बतला चुके हैं। सोऽहं के समान "अर्हम" का भी अजपाजाप होता है। श्वास लेते समय "अर्" का शब्द तथा श्वास छोड़ते समय हं" का शब्द इस प्रकार "अर्हम्" का शब्द स्वतः प्रगट होता है। ओम् का भी अजपाजाप होता है।

अर्थ—विस्तारपूर्वक जानने के इच्छुक ज्ञानार्णव नामक ग्रन्थ से इसका स्वरूप जान सकते हैं। यहां पर विस्तारपूर्वक लिखने से बहुत बड़ा ग्रन्थ हो जायेगा। अतः हमने संक्षेप से ही वर्णन किया है—४३०

शरीर में नाड़ियां

देही मध्य नाड़ी तणो, बहु रूप विस्तार।
पिंड स्वरूप निहारवा, जानो तास विचार॥ ४३१॥
वट शाखा जिम विस्तरी, नाभि कन्द थी जेह।
भेद हुताशन जानजो, पान निसा तिम तेह॥ ४३२॥
है भुजंगाकार ते, वलइ अढाई तास।
जान कुंडली नाड़ी ते, नाभि मांहि निवास॥ ४३३॥

अर्थ—इस देह में नाड़ियों का खूब विस्तार है। देह का स्वरूप जानने के लिए उन नाड़ियों को जानना परमावश्यक है—४३१

नाभि के मूल में से वट शाखाओं के समान फैली हुई बहुत-सी नाड़ियों (७२००० नाड़ियों) को जानना चाहिये। उन नाड़ियों के मूल में सोई हुई अग्नि रूप शक्ति है—४३२

वह शक्ति नाभि में भुजंगाकार (सर्पाकार)[७७] कुंडलिनी नाम की नाड़ी है जो कि अढ़ाई आंटे देकर सोई हुई है। नाभि उसका निवास स्थान है—४३३

७७—कुंडलिनी सर्पाकार या वलयाकार शक्ति कही जाती है, क्योंकि इसकी गति वलयाकार सर्प की सी है। योगाभ्यासी यति के शरीर में यह चक्राकार चलती है और उसमें शक्ति बढ़ाती है। यह एक वैद्युत अग्निमय गुप्त शक्ति है। इस कुंडलिनी की गति प्रकाश की गति की अपेक्षा भी अधिक तेज है। मैडम ब्लैवेट्स्की ने कहा है—'Light travels at the rate of 185000 miles a second, Kundalini at 345000 miles a second.' अर्थात् प्रकाश १८५००० मील प्रति सेकिण्ड की गति से चलता है और कुंडलिनी ३४५००० मील प्रति सेकिण्ड की चाल से चलती है। पाश्चात्य लोग इस कुंडलिनी को Serpent-fire (सर्पवत् वलयान्विता अग्नि) कहते हैं। तथा Cosmic Electri-

उर्ध्वगामिनी तेह थी, नाड़ी दस तन मांहि।
अधो गामिनी दस सगुण, लघु गिनत कछु नांहि ॥ ४३४ ॥
दो दो तिरछी सहु मिली, चतुर्विंशति इम जान।
दस वायु प्रवाहिका, प्रधान ये मन आन ॥ ४३५ ॥

अर्थ—कुंडलिनी नाड़ी में से निकलकर दस बड़ी नाड़ियां ऊपर की ओर गयी हैं और दस बड़ी नाड़ियां इस कुंडलिनी में से निकल कर नीचे की ओर गई हैं। यहां पर छोटी नाड़ियों में से शाखा रूप निकली हुई हैं—४३४

दो-दो नाड़ियां इसी कुंडलिनी में से तिरछी (दो दायीं तरफ और दो बांयी तरफ) निकली हुई हैं कुल मिलाकर चौबीस बड़ी नाड़ियां जाननी चाहिए। इन चौबीस नाड़ियों में से दस नाड़िया वायु प्रवाहिका हैं—४३५

---

city (विश्व व्यापी विद्युत शक्ति) भी कहते हैं। प्रकृति के निगूढ़ विधान के अनुसार यह प्रचंड शक्ति शरीरस्थ मूलाधार चक्र में सोयी हुई रहती है। असंयमी साधकों को जो Passion proof (मनोविकार का प्रभाव जिस पर न पड़ता हो ऐसा) नहीं हुआ है—सावधानी के साथ तथा सद्गुरु का सानिध्य प्राप्त हुए बिना इस शक्ति को जागृत करने की चेष्टा न करनी चाहिए। इसलिए अष्टांग योग का प्रथम भाग यम नियम—सत्य, संयम, संतोष, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह इत्यादि—रखा गया है। इस कुंडलिनी की प्रचंड शक्ति को जगाने का काम इस गुप्त विद्या के सद्गुरु के ही तत्वावधान में होना चाहिये। नहीं तो लाभ की बजाय हानि होना ही संभव है। मूलाधार चक्र इस कुंडलिनी का सुषुप्ति स्थान है। मनुष्य की पिंड देह में (जिसे Etheric body कहते हैं) स्थूल शरीर के विशेष-विशेष प्रत्यंगों से सम्बद्ध जो छः चक्राकार घूमने वाले शक्ति केन्द्र हैं, मूलाधार उन्हीं षट् चक्रों में से एक है। मूलाधार (मेरुदण्ड के निम्न भाग में अवस्थित है। उसी चक्र के अन्तः स्तल में सर्पाकार अग्नि—कुंडलिनी शक्ति ढाई वलयाकार में सुषुप्त रहती है। इस शक्ति को जागृत करने की विधि विस्तारभय से तथा सद्गुरु के तत्त्वावधान के बिना जागरित करने से हानि की संभावना से नहीं दी है। विशेष जानकारी के लिए सद्गुरु के पास जावे। अनुसंधान के लिए देखें टिप्पणी नं० ७३।

इंगला पिंगला सुखमना, गांधारी कहवाय।
हस्तिजिह्वा पंचमी सुधी, षष्टि पूषा बताय॥ ४३६॥
सप्तम जान यशस्विनी, मन अलम्बुषा धार॥
कुहू संखनी नारियां, दस के नाम विचार॥ ४३७॥

अर्थ—(१) इंगला, (२) पिंगला, (३) सुखमना, (४) गांधारी, (५) हस्तिजिह्वा, (६) पूषा, (७) यशस्विनी, (८) अलम्बुषा, (९) कुहू, (१०) शंखिनी—ये नाम उपर्युक्त प्रधान दस नाड़ियों के हैं—४३६-४३७

मुख्य नाड़ियों के स्थान

वाम भाग से इंगला, पिंगला दक्षिण धार।
नासा पुट में संचरत, सुखमन मध्य निहार॥ ४३८॥
वाम चक्षु गंधारिका, दक्षिण नयन मंझार।
हस्तिजिह्वा पूषा सुधी, दक्षिण कान प्रचार॥ ४३९॥
वामे कान यशस्विनी, अलम्बुषा मुख थान।
कुहू लिंग अस्थान है, गुदा शंखिणी जान॥ ४४०॥

अर्थ—मेरुदण्ड से वाम (बायें) भाग में इंगला, दक्षिण (दाहिने) भाग में पिंगला, नासापुट (मध्य देश) में सुखमना, वाम नेत्र में गांधरी, दक्षिण नेत्र में हस्तिजिह्वा (हस्तिनी), बायें कान में यशस्विनी, दायें कान में पूषा, मुख में अलम्बुषा, लिंग में कुहू (किरकल) तथा गुदा में संखिनी का वास स्थान है। इस प्रकार शरीर के दस द्वारों में दस नाड़ियां है। योगाभ्यासियों के लिये इनका ज्ञान करना परमावश्यक है—४३८-४३९-४४०

दिग धमनी ये काय में, प्राणाश्रित नित जान।
वायु आश्रित जो रही, ते दस कहूं बखान॥ ४४१॥

अर्थ—इन उपर्युक्त दस नाड़ियों में किस-किस वायु का वास है अब उस दस प्रकार की वायु का वर्णन करते हैं—४४१

नाड़ियों में वायु

प्राण[७८] अपान समान जे, उदान व्यान विचार।

७८—इनका स्वरूप देखें पद्य नं० ६२-६३-६४ के अर्थ में।

ये प्रधान वायु धमन, पंच अनुक्रम धार ।। ४४२ ।।
नाग कूर्म अरु किरकिल, देवदत्त कहवाय ।
नाड़ी धनंजय पांचमीं, गवरिण दीन बतलाय ।। ४४३ ।।

अर्थ—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये दस वायु अनुक्रम से उपर्युक्त दस नाड़ियों के आश्रित हैं अर्थात् इंगला नाड़ी में प्राण वायु, पिंगला में अपान, सुखमना में समान, गांधारी में उदान, हस्तजिह्वा में व्यान, पूषा में नाग, यशस्विनी में कूर्म, अलम्बुषा में कृकल, कुहू में देवदत्त तथा शंखिनी में धनंजय वायु आश्रित हैं । हमने ये सब बतला दी हैं—४४२-४४३

दस प्रकार वायु का वास स्थान

हिया गुदा नाभि गला, तन संधि चित्त धार ।
प्राणादिक नी इणि परे, अनुक्रम वास विचार ।।४४४।।
नाग वायु प्रकाश थी, प्रगट होय उद्गार ।
कूर्म वायु नाड़ी उदय, उन्मीलन चित्त धार ।।४४५।।
छींक किरकला थी हुये, देवदत्त परकाश ।
जंभाई आवे सकल जान धनंजय वास ।।४४६।।
इत्यादिक नाड़ी तणो, कह्यो अल्प विचार ।
अधिक हिये में धारजो, गुरुगम थी ते विचार ।।४४७।।

अर्थ—प्राण वायु हृदय में, अपान वायु गुदा में, समान वायु नाभि में, उदान वायु गले में, व्यान वायु सब शरीर में रहता है । इन प्राणादि पांचों वायु का निवास स्थान अनुक्रम से जानना चाहिए—४४४

अब पांच प्रकार की नाग आदि वायु द्वारा जो-जो वस्तु प्रगट होती है उस का अनुक्रम से वर्णन करते हैं । नाग वायु के प्रकाश से डकार प्रगट होता है । नाड़ी में कूर्म वायु के उदय से आंखों का खोलना होता है । कृकल वायु से छींक प्रगट होती है । देवदत्त वायु से जंभाई आती है तथा धनंजय वायु का वास सारे शरीर में है—४४५-४४६

इत्यादि नाड़ियों के विषय में संक्षेप से वर्णन कर दिया है । इनके विशेष

ज्ञान के अभिलाषी सद्गुरु से कर लेवें—४४७

जब सुर बाहिर कुं चले, तब कोई पूछे आय ।
कोटि जतन सुं तेहनो, कारज सिद्धि न थाय ।।४४८।।
सुर[७९] भीतर कुं चालती, आवी पूछे कोय ।
कोटि भांति करि तेहनो, कारज सिद्धि होय ।।४४९।।

अर्थ—सारांश यह है कि यह बात विशेष रूप से लक्ष्य में रखने की है कि जब स्वर बाहर को निकलता हो तो उस समय कोई प्रश्न पूछे, प्रयान करे अथवा कार्य प्रारम्भ करे तो क्रोड़ों प्रयत्न[८०] करने पर भी उसे सफलता प्राप्त नहीं होगी—४४८

और जब स्वर भीतर को जाता हो अर्थात् स्वर नाक में प्रवेश करता हो उस समय यदि कोई आकर प्रश्न आदि करे तो उसे अवश्य सिद्धि हो । किसी भी प्रकार की विघ्न बाधाएं उसके कार्य में बाधक नहीं हो सकती—४४९

पंचतत्त्व जो ये कहे, ते तो संज्ञा रूप ।
इन ऊपर जे मन ग्रह्यो, ते तो मिथ्या कूप ।।४५०।।
आमनाय ये है सुधी, सुर विचार के काज ।
सम्यग् दृग थी जो ग्रहे, सो लहे सुख समाज ।।४५१।।

अर्थ—ये जो पांच तत्त्व कहे हैं वे तो संज्ञा रूप हैं मात्र इन पर ही मन

७९—स्वर के बल से शत्रु से लड़े, मित्र से मिले, लक्ष्मी और कीर्ति की प्राप्ति करे । विवाह, राजा का दर्शन, देवता की सिद्धि और राजा अथवा राज्य कर्मचारियों को वश में करना ये सब कार्य स्वर के बल से होते हैं स्वर के बल से ही देश विदेश में घूमना होता है ।

८० (क) जिस दिन प्रातःकाल से विपरीत स्वरों का उदय हो अर्थात् चन्द्रमा के स्थान में सूर्य और सूर्य के स्थान में चन्द्रमा बहे उस समय ये नीचे लिखे अनुसार फल जानना चाहिए—पहिले दिन में मन का उद्वेग, दूसरे में धन की हानि, तीसरे में गमन और चौथे में इष्ट का नाश होता है। पांचवें में राज्य का विध्वंस, छठे में सब अर्थों का नाश, सातवें में व्याधि और दुःख, आठवें में मृत्यु कहा है ।

लगाये रखना अध्यात्म दृष्टि से उपयोगी नहीं है। इसलिए उन अध्यात्म योगियों के लिए तो ये मिथ्या कुच के समान हैं—४५०

हे महानुभावो ! जैन आम्नाय ऐसी है कि मात्र स्वर विचार के लिए ही इसको सम्यग् प्रकार से ग्रहण करने अर्थात् स्वरों द्वारा शुभाशुभ फल को समझने के लिए और सम्यग् प्रकार से समझ कर उसके अनुसार कार्य करने से

(ख) प्रात:काल, मध्यान्ह और सायंकाल इन तीनों कालों में यदि स्वरों का उदय पहले कहे हुए से उल्टा आठ दिन तक बराबर चले तो उससे दुष्ट फल कहा है।

(ग) जिस दिन प्रात:काल और मध्यान्ह में चंद्रमा का स्वर और सायंकाल से सूर्य का स्वर चले उस दिन जय और लाभ कहा है और यदि उल्टा चले तो शुभ काम करना छोड़ दे अर्थात् अनिष्ट फल होता है।

(घ) जिस अंग का स्वर चलता हो उसी अंग के हाथ की हथेली से सोकर उठा हुआ मनुष्य मुख का स्पर्श करे तो अपने अभिष्ट फल को पाता है।

(ङ) दूसरे को दान देने में, ग्रहण करने में, या घर से बाहर जाने में जिस अंग की नाड़ी चलती हो उसी हाथ या पांव को आगे करके वस्तु को ग्रहण करे तो इस प्रकार फल जानें। ऐसा करने से न हानि हो, न कलह हो, न कण्टक (शत्रु) से विधे और वह सुख पूर्वक सब उपद्रवों से बचकर घर लौट आवे गुरु, बन्धु, राजा, मंत्री, आदि मान्य लोगों से अपनी कार्य सिद्धि के लिए पूर्णांगों से मिलने से मनोरथ सिद्ध होता है।

(च) अग्नि का दाह, चोरी, अधर्म, घर्षण, वादि को निग्रह करना हो तो खाली नाड़ी की तरफ के हाथ से ही जय, लाभ और सुख की अभिलाषा मनुष्य करे।

जो जीव (पूर्ण) स्वर में शस्त्र को बांधे और जीव स्वर में ही शस्त्र को खोले उसी हाथ से शस्त्र को धारण करे, उसी हाथ से शस्त्र को फैंके वह मनुष्य युद्ध में हमेशा जीतता है।

(छ) प्राण वायु खींचते हुए यदि सवारी पर चढ़े और पवन को निकालते हुए उतरे तो वह सर्व कार्यों को सिद्ध करेगा। (शिवस्वरोदय)

मनुष्य सब प्रकार के इसमें वर्णन किये गये सुखों को प्राप्त कर सकता है—४५१

कह्यो एह संक्षेपथी, ग्रन्थ सुरोदय सार ।
भणे गुणे ते जीवकुं, चिदानन्द सुखकार ॥४५२॥

अर्थ—मैं (चिदानन्द) ने स्वरोदय सार ग्रन्थ संक्षेप से कहा है । इस ग्रन्थ को पढ़ने और समझने वाले मनुष्यों को यह सुख देने वाला है—४५२

कृष्णासाडी दसमी दिन शुक्रवार सुखकार ।
निधि इंदु सर पूर्णता[८१] चिदानन्द चित्त धार ॥४५३॥

अर्थ—मिति आसाढ़ वदि दसमी शुक्रवार विक्रम संवत् १९०५को चिदानन्द ने इस ग्रन्थ की रचना की—४५३

नोट—जैन श्रावक पंडित हीरालाल दूगड़ ने विक्रम संवत् २०३० में स्वरोदय सार का अर्थ-विवेचन आदि कर दिल्ली में प्रकाशित किया ।

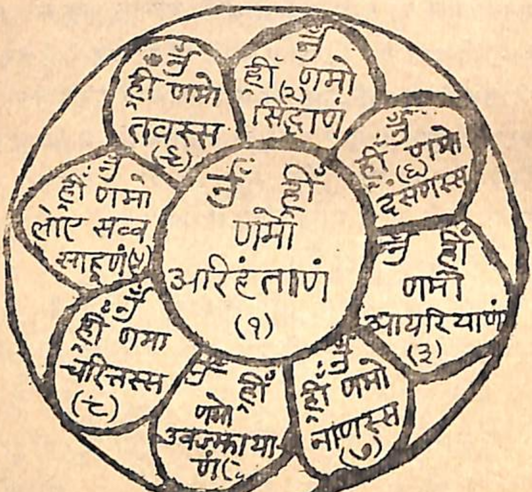

८१—संवतसर मुनि पूर्णता, नंद चन्द चित्तधार । अर्थात् संवत् १९०७ को यह ग्रन्थ समाप्त किया । ऐसा पाठांतर है ।